श्रीरामचरितमानस

अयोध्या काण्ड

(हि० सा० स० की प्रथमा व हाई स्कूल के छात्रों के लिये)

टीकाकार

स्व० रामनाथ पाण्डेय

प्रकाशक

आधुनिक पुस्तक भवन

२०।३१ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रकाशक —
परमानन्द पोद्दार
आधुनिक पुस्तक भवन
३०-३१, कलाकर स्ट्रीट,
कलकत्ता ।

मुद्रक —
युनाइटेड कमर्सियल प्रेस, लि०
३२, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट
कलकत्ता ।

महात्मा तुलसीदास

हिन्दी-जगत, प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीका सदैव ऋणी रहेगा। रामचरितमानसकी रचना करके उन्होंने हिन्दू-धर्म, जाति, सभ्यता और संस्कृति को अत्यन्त प्रभावित कर दिया। भगवान रामके चरित्रका वर्णन करके उन्होंने मानवके हृदयमें भक्ति, आदर्श और कर्तव्य कूट-कूट कर भर दिया। रामचरित-मानसका पाठ शायद ही ऐसा कोई हिन्दू-गृह होगा जहां न होता हो। साधारण पढ़े-लिखे लोगोंसे लेकर अच्छेसे अच्छे विद्वान् तक रामचरितमानसका पाठकर आनन्दसे झूम उठते हैं। सबको अपनी-अपनी रुचिके अनुसार रस प्राप्त होता है। उसमें साहित्यिकके लिए अच्छासे अच्छा साहित्य है, तो राजनीतिज्ञके लिए उच्च कोटिकी राजनीति है। भगवानके भक्तोंके लिए भक्ति-रसका तो कहना ही क्या है। हिन्दू जातिको महात्मा तुलसीदासके ऊपर सदैव गर्व रहेगा।

तुलसीदासजीके जीवन-चरितके सम्बन्धमें लोगोंको बहुत ही कम विदित है। उनकी रचनाओं, विद्वानोंकी खोजों और जनश्रुतियोंके द्वारा जो कुछ भी मालूम हो सका है, उसमें भी विद्वानोंकी भिन्न-भिन्न राय है। अधिकांश विद्वान् उनका जन्म सं० १५८९ के लगभग मानते हैं। उत्तर प्रदेशके बांदा जिलेमें राजा-पुर नामक गांव इनकी जन्म-भूमि मानी जाती है। पिताका नाम आत्माराम और माताका नाम हुलसी था। पाराशर-गोत्रके सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ऐसी जनश्रुति है कि तुलसीदासजीके मुखसे जन्मते ही 'राम' शब्द निकला। जन्मते

ही माता-पिताको बच्चेमें कुछ ऐसी अस्वाभाविक बातें दिखलाई पड़ीं कि उन्होंने उससे अमंगलकी कल्पना कर किसी दासीको दे दिया। जो कुछ भी हो, तुलसीदासजीका जन्मके थोड़े ही दिन बाद मां-बापसे साथ छूट गया।

बचपन साधुओंके साथ बीता। छोटी अवस्थासे ही हनुमानके उपासक थे। अपने गुरुसे सर्व प्रथम भगवान रामकी कथा शूकर-क्षेत्रमें सुनी। जैसा कि नीचेके दोहेसे प्रकट है।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

गुरुसे बार-बार वही कथा सुननेपर समझ गये। इनके गुरुजी काशीमें रहते थे और वहीं उनसे इन्होंने संस्कृत पढ़ी। काशीमें वेद आदि अन्य ग्रन्थोंका अध्ययन करनेके बाद वे पुनः राजापुर चले गये और उनका विवाह रत्ना नामकी एक सुन्दरी कन्यासे हुआ। रत्ना दीनबन्धु पाठककी लड़की थी। तुलसीदासजी रत्नाके रूप-गुणपर मुग्ध होकर अन्य कार्य्योंसे विमुख हो गये। स्त्रीके प्रति अपनी इस आसक्तिके कारण उन्हें एक दिन अपनी पत्नीके व्यंग वचन सुनने पड़े। रत्नाने इन्हें फटकारते हुए कहा कि, जैसी प्रीति इस हाड़-मांसके शरीरसे है, उसकी आधी भी यदि भगवान रामसे होती तो संसारके दुःखोंसे छुटकारा मिल जाता।

तुलसीदासजीको स्त्रीके वचन लग गये और वे पुनः काशी चले आये। यहां अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। पुराणों और सभी धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनके बाद उनकी वुद्धि पूर्ण रूपसे विकसित हुई। सं० १६३१ में वह काशीसे अयोध्या चले गये। 'श्रीरामचरितमानस' की रचना अयोध्यामें ही प्रारम्भ हुई। अयोध्यामें कुछ अंश तैयार होनेके बाद वह काशी आ गये। इस प्रकार कुछ अंश अयोध्या और कुछ काशीमें होकर 'मानस' पूर्ण हुआ। काशीमें कुछ पण्डितोंने ईर्ष्या-वश उन्हें तंग किया किन्तु तुलसीदासजीके व्यक्तित्वके आगे उनको मुंहकी खानी

पड़ी। तुलसीदासजीके समकालीन प्रसिद्ध लोगोंमें मधुसूदन सरस्वती, रहीम, सम्राट अकबर, और राजा मानसिंहके नाम उल्लेखनीय हैं। इनके मित्रोंमें टोडर और गंगाराम ज्योतिषी थे।

श्रीरामचरितमानसके अतिरिक्त तुलसीदासजीके निम्नलिखित अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ विनय-पत्रिका, दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न, वरवै रामायण, रामलला-नहछू, कृष्ण-गीतावली, वैराग्य संदीपनी, पार्वती-मंगल और जानकी-मंगल हैं। कवितावलीका दूसरा नाम कवित्त रामायण है। इसके छन्द घनाक्षरी, कवित्त, सवैया आदिमें हैं। गीतावलीकी रचना रामकथाके आधार पर मुक्तक गीतोंमें की गई है। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थ भी राम-चरित्र और कथाके अंशोंसे सम्बन्धित हैं। केवल कृष्ण-गीतावलीमें कृष्ण-सम्बन्धी पद हैं। तुलसीदासजीका शरीरान्त सं० १६८० में हुआ। नीचे लिखे दोहे से उनकी मृत्युके समयका पता चलता है।

संवत् सोरह सौ असी, असी गंगके तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

अयोध्याकाण्ड की विशेषताएं

तुलसीदासजीकी रचनाओंमें श्रीरामचरितमानसका स्थान सर्व प्रथम है। 'श्रीरामचरितमानसमें' सात काण्ड हैं। 'अयोध्याकाण्ड' द्वितीय काण्ड है। वैसे तो श्रीरामचरितमानसके सभी स्थल सरस और भक्ति-भावके अतिरिक्त सब दिशाओंमें पूर्ण हैं किन्तु अयोध्याकाण्डका महत्व उन सबसे बढ़-चढ़कर है। इस काण्डमें भगवान रामकी कथाके साथ तुलसीदासजीने लोक-नीति, मर्यादा-वाद, शिष्टाचार और शील तथा भक्ति आदिका जो चित्रण किया है, वह सर्वोपरि है। रामचरितमानसमें जो भी स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं, वे प्रायः सब अयोध्या-काण्डके ही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'रामचरितमानस' में परिवार और समाजकी ऊँची-नीची श्रेणियोंके बीचके सम्बन्धका उत्कर्ष बतलाते हुए जिन घट-नाओंको, गोस्वामी तुलसीदासजीके सम्बन्धमें लिखे गये एक लेखमें, लिखा है, वह सब अयोध्याकाण्डके ही अन्तर्गत हैं। आचार्यजीके लेखका वह अंश इस प्रकार है–

(१) राजा और प्रजाका सम्बन्ध लीजिए। अयोध्याकी सारी प्रजा अपना सब काम-धन्धा छोड़ भरतके पीछे रामके प्रेममें उन्हींके दर्शन से आह्लादित होकर चाहती है कि चौदह वर्ष यहीं काट दें।

(२) भरतका अपने बड़े भाईके प्रति जो अलौकिक स्नेह और भक्ति-भाव यहांसे वहां तक झलकता है, वह तो सबका आधार ही है।

(३) ऋषि या आचार्यके सम्मुख प्रगल्भता प्रकट होनेके भयसे भरत और राम अपना मत प्रकट करते सकुचाते हैं।

(४) राम सब माताओंसे जिस प्रकार प्रेम-भावसे मिले वह उनकी शिष्टता का ही सूचक नहीं है, उनके अन्तःकरणकी कोमलता और शुद्धता भी प्रकट करता है।

(५) विवाहित कन्याको पतिकी अनुगामिनी देख जनक जो हर्ष प्रकट करते हैं—

पुत्रि ! पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ ॥

वह धर्म-भावपर मुग्ध होकर ही।

(६) भरत और राम दोनों जनकको पिताके स्थानपर कहकर सब भार उन्हीं पर छोड़ते हैं।

(७) सीताजी अपने पिताके डेरे पर जाकर माताके पास बैठी हैं। इतनेमें रात हो जाती है और वे असमंजसमें पड़ती हैं—

कहत न सीय सकुचि मन माहीं। इहां बसब रजनी भल नाहीं ॥

पति तपस्वीके वेशमें भूशय्या पर रात काटें और पत्नी उनसे अलग राजसी ठाट-बाटके बीच रहे, यही असमंजसकी बात है।

(८) जबसे कौशल्या आदि आई हैं, तबसे सीता बराबर उनकी सेवामें लगी रहती हैं।

(९) ब्राह्मण-वर्गके प्रति राज-वर्गके आदर और सम्मानका जैसा मनोहर स्वरूप दिखाई पड़ता है, वैसी ही ब्राह्मण-वर्गमें राज्य और लोकके हित-साधन की तत्परता झलक रही है।

(१०) केवटके दूरसे ऋषिको प्रणाम करने और ऋषिके उसे आलिंगन करनेमें उभय पक्षका व्यवहार-सौष्ठव प्रकाशित हो रहा है।

(११) वन्य कोल-किरातोंके प्रति सबका कैसा मृदुल और सुशील व्यवहार है।

लोकमतका एक बड़ा ही सुन्दर उदाहरण अयोध्याकाण्डके प्रारम्भमें मिलता है। तुलसीदासजीने यह दिखला दिया है कि राजाकी इच्छाके साथ किसी भी कार्यके होने या करनेमें प्रजाकी इच्छाका होना भी आवश्यक है। उसमें अन्य लोगोंकी क्या राय है, यह भी राजा समझ लेता है। राजा दशरथ वृद्ध हो गये हैं, उनके मनमें रामको राजतिलक कर देनेका विचार आ गया है। वे इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि रामके रूप, गुण, शील और स्वभाव पर सभी मुग्ध हैं। रामके तिलकका समाचार पाकर सभी प्रसन्न होंगे, फिर भी वे गुरु वशिष्ठसे परामर्श करते हैं और इतना ही नहीं अपने सेवकों और मंत्रियों आदिको बुलाकर कहते हैं—

जौं पांचहिं मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका॥

इस प्रकार तुलसीदासजी का यह वर्णन प्रकट करता है कि राजाकी इच्छा और उनके शब्द नियम-कानून नहीं हैं। वहां तो किसी भी कामके लिये प्रजाके भी विचारोंका ध्यान रखना होगा। यह उनके गणतन्त्रवादके समर्थक होनेका परिचय देता है।

रामके राजतिलककी तैयारी हो गई है। सर्वत्र आनन्द और उत्सव मनाया जा रहा है। लोग रामके लिए मंगल कामना कर रहे हैं और देवी-देवताओंसे प्रार्थना कर रहे हैं। इसी समय रामको गुरु वशिष्ठसे युवराज-पद पानेकी सूचना मिलती है। राम सोचते हैं—उन्हें ही क्यों युवराज-पद मिल रहा है ? सभी भाई तो एक साथ जन्मे, खेले,-कूदे, खाये-पिये और सबके साथ ही संस्कार भी हुए किन्तु उन्हें ही क्यों युवराज पद हो रहा है ? अपने छोटे भाइयोंके लिये वह इस प्रकार प्रेम-पूर्ण ढंगसे पश्चात्ताप करते हैं—

विमल वंश यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू ॥

उन्हें यह बात निर्मल वंशमें अनुचित प्रतीत हो रही है। ऐसे अनेक स्थल रामायणमें आते हैं जहां रामके हृदयमें छोटे भाइयोंके लिये अपार प्रेम उमड़ रहा है।

पारिवारिक जीवनका चित्रण करते समय एक सुन्दर चित्र उस समय सामने आता है जब कुटिल दासी मंथरा रामके युवराज-पद पानेका समाचार पाकर उनकी सौतेली माता कैकेयीके पास जाती है। कैकेयी मंथराकी कुबुद्धिमें पड़कर बहुत बड़ा अनर्थकर देती है, किन्तु पहले उसकी जो बातें मन्थरासे होती हैं वे वास्तवमें एक सौतेली मांके लिये आदर्श हैं। मंथराके मुंहसे रामके तिलकका समाचार पाकर कैकेयीको बड़ी प्रसन्नता होती है, उस समय रामके प्रति उसके हृदयमें कोई बुरा विचार नहीं है। मंथराकी कुटिलता-पूर्ण बातें सुन वह उसे बुरी तरह फटकारती है–

पुनि अस कबहु कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

पुनः उसे रामके युवराज-पदका औचित्य समझाती है–

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥

रामके स्नेह और उनके सरल स्वभाव पर कैकेयीको इतना विश्वास है कि वह मंथरासे कहती है–

जौं विधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पतोहू ॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें ॥

इस प्रकार मर्यादाकी रक्षा, बड़े-छोटेके परस्पर-प्रेमभाव, पारिवारिक और व्यावहारिक जीवनके आदर्श की पराकाष्ठा है। रामको यह विदित हो जाता है कि माता कैकेयीकी इच्छानुसार उन्हें चौदह वर्ष वनमें रहना है। राजा दशरथ प्रेमके वश कुछ नहीं कह पाते, ऐसा जानकर राम उन्हें अनेक प्रकारसे समझाते हैं।

वे चौदह वर्षके बनवासको तुच्छ बताते हुए सान्त्वना देते हैं। राम अपनी माता कौशल्याके पास जाते हैं और उनसे सारी बातें कहते हैं, भला कौन माता चाहेगी कि उसका पुत्र बनमें रहे, किन्तु कौशल्या तो उन सामान्य माताओंमें नहीं हैं, जो स्नेहके वशमें हो अपना कर्त्तव्य भूल जायँ। बुद्धिमती कौशल्याजी पातिव्रत-धर्मको समझती हैं। राम और भरतमें उन्हें कोई अन्तर नहीं देख पड़ता है। वे कहती हैं–

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

सीताको रामके बनवासका समाचार मिलता है। वह व्याकुल हो उठती हैं। उनके नेत्रोंसे आंसू बहने लगते हैं। कुछ कह नहीं पाती हैं। ऐसी दशामें सब लोगोंके साथ राम उन्हें हर प्रकारसे घर रहनेके लिए समझा रहे हैं। बनके अनेक कष्टोंकी बातें बतलाकर और घरमें सास-ससुरकी सेवाका महत्व समझा-कर भी सीताको राम अपनेसे विलग नहीं कर पा रहे हैं। सीताके आगे पति-चरणको छोड़कर अन्य कोई भी मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता। रामके बिना उन्हें न सुख है न शांति। वे कहती हैं–

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।

नाथ साथ सुर सदन सम परनसाल सुख मूल॥

सीताने यहां दाम्पत्य-प्रेमका अपूर्व उदाहरण दिया है। सीताको पति-सेवा में और उनके चरणोंमें ही सब कुछ दिखलायी पड़ता है। राम वनमें रहें फिर उन्हें सुख कहांसे हो सकता है?

लक्ष्मणको जब राम-वनवासका समाचार मिलता है तो वह भी बहुत दुखी होते हैं और रामके अनेक प्रकारसे समझाने पर भी नहीं मानते। उनके सामने स्वामीकी सेवासे बढ़ कर दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है। अन्तमें राम अपने साथ लक्ष्मणको चलनेकी अनुमति दे देते हैं।

लक्ष्मणकी माता सुमित्राने अपने प्रिय पुत्रको राम तथा सीताके साथ वन जानेकी अनुमति जिस प्रसन्नताके साथ दी है, वह मननीय तथा उनकी विशाल हृदयता, रामके प्रति ममत्व और वंश-मर्यादाके अत्यन्त अनुकूल है। इसकी उपमा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। उन्होंने कहा–

तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भांति सनेही॥

× × × ×

जो पैं राम सीय वन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

उन्होंने फिर कहा है–

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

आह! कैसी उदारता और निःस्वार्थपरता है।

राम वन जा रहे हैं। साथमें सीताजी और लक्ष्मण हैं। इस स्थल पर जो वर्णन है, उसमें तुलसीदासजीकी भावुकता पूर्णरूपसे निखर आई है। तपस्वियोंका वेष होने पर भी राम-सीता और लक्ष्मणका रूप लोगोंको मोहित कर लेता है। लोग तरह-तरहकी कल्पना करने लगते हैं। कोई राजा दशरथको दोष देता है तो कोई कैकेयीकी कुटिलताकी निन्दा कर उसे अनेक प्रकारसे कोसता है। उनकी सुन्दरतासे प्रभावित होकर ग्राम-वधुएँ कहती हैं–

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठये वन बालक ऐसे॥

जिस गांवके पाससे निकल जाते हैं, वहांके बालक-बूढ़े-स्त्री-पुरुष सभी, कार्य छोड़कर, उन्हें देखने के लिये दौड़ पड़ते हैं। उनकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो जाते हैं और सौन्दर्य्यके प्रभावसे उनमें शिथिलता आ जाती है। वे अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं।

ग्रामीण स्त्रियां सीताजीसे राम और लक्ष्मणकी प्रशंसा करते हुये उनका परिचय प्राप्त करना चाहती हैं–

राजकुवँर दोउ सहज सलोने। इन्हते लहि दुति मरकत सोने॥

स्यामल गौर किशोर बर सुन्दर सुषमा ऐन।

सरद सर्वरी नाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥

कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

इस समय सीताजीके उत्तर देनेका ढंग वास्तवमें एक उच्च कुलकी वधूके ही योग्य है, जो प्रत्येक भारतीय नारीके लिए अनुकरणीय है। सीताजी रामको स्पष्ट अपना पति कहनेमें संकोच कर रही हैं, साथ ही उन्हें यह भी भय हो रहा है कि कहीं ये स्त्रियां मेरे मौन हो जाने पर मुझे अभिमानिनी न समझ लें और अपने मनमें दुखी न हों। ऐसे समय जिस निपुणताके साथ गोस्वामीजीने उनके उत्तर-का वर्णन किया है, उसे पढ़कर एक अनुपम चित्र सामने उपस्थित हो जाता है और कविकी भावुकता पर हृदय गद्गद हो जाता है—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

बहुरि बदन विधु अंचल ढांकी। पिय तन चितय भौंह करि बांकी॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेयु तिन्हहि सिय सयननि॥

भातृ-प्रेमका जो आदर्श भरतने रखा है, वह अद्वितीय है। अयोध्याकांडका आधेसे अधिक अंश तो भरतके भ्रातृ-प्रेम वर्णनसे ही भरा है। भरत ननिहालसे अयोध्यामें पहुँचते हैं। उन्हें पिताकी मृत्युका समाचार पहले मिलता है फिर राम-वन गमनका, जो उनके लिए इतना कष्टदायक होता है कि पिताकी मृत्यु भी भूल जाती है और वह सन्न रह जाते हैं।

भरतहि विसरेउ पितु मरन सुनत राम वन गौनु।

हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥

वह इन सारे अनर्थोंकी जड़ अपनेको ही समझते हैं। उनके हृदयमें बहुत ही ग्लानि होती है। इसमें सब अपराध अपना ही समझ रहे हैं। इस संतापसे विकल

होकर वह कौशल्याके पास जाते हैं और उनसे अपने निर्दोष होनेकी सफाईमें जो कुछ भी कहते हैं वह एक सच्चे स्वाभाविक हृदय से ही निकल सकता है। अपनी निर्दोषिता प्रकट करते समय कौशल्या से कहते हैं—

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाय-गोठ महिसुर पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
जे पातक उप पातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं॥
ते पातक मोंहि होहु विधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥

इतने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। किन्तु उन्हें रामकी प्रीति पर पूर्ण विश्वास है। वह जानते हैं कि संसारकी दृष्टिमें भले ही दोषी होऊँ किन्तु राम मुझे कभी दोषी नहीं समझेंगे। कितना विश्वास है भरतको रामके शीलका !

परिहरि राम सीय जग माहीं। कोउ न कहहि मोर मत नाहीं॥

भरतके भ्रातृ-प्रेमका जितना वर्णन किया जाय थोड़ा है। महात्मा तुलसी-दासजीने यहां तक कह दिया है कि—

अगम सनेह भरत रघुवरको। जहं न जाइ मनु विधि हरि हरको॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भांती। बाज सुराग कि गांडर तांती॥

भरतके भ्रातृ-प्रेमके सम्बन्धमें तुलसीदासजीने जिन-जिन स्थलों पर लिखा है वहां प्रीतिकी धारा बहा दी है।

गुरु वशिष्ठ, मंत्री, माताओं तथा अयोध्यावासियोंके साथ भरत रामको वनसे लौटाने के लिए चले हैं। राम पैदल वन गये हैं, इसलिये भरत भी नंगे पांव पैदल जा रहे हैं। रास्तेमें रामने जिन-जिन जगहोंमें विश्राम किया उन-उन स्थानों को देखकर भरतकी आखें भर आती हैं और वह राम का स्मरण करते चले रहे हैं। उनके चरित्रमें जितना विनय और शील तुलसीदासजीने दिखलाया है वह अकथनीय है।

अयोध्याकाण्डमें भरतके चरित्रका जो चित्रण हमें मिलता है [illegible]
निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भरतको रामकी तरफसे प्रीतिमें कोई भी सन्देह नहीं था उन्हें वास्तवमें सांसारिक दृष्टिसे अपनेको निर्दोष दिखलाना था। उन्होंने बराबर इस बातका ध्यान रखा कि लोककी दृष्टिमें उनसे कोई अनुचित बात नहीं होनी चाहिए। वह अच्छी तरह जानते थे कि राज्य पर उनका अधिकार नहीं और इसको दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने चित्रकूटसे लौटते समय रामसे अपने सहारे के लिए उनकी पादुका ले ही ली। उन्होंने लोकको दिखला दिया कि राज्य-सिंहासन के वास्तविक अधिकारी राम ही हैं और मैं उनका सेवक हूँ। चौदह वर्ष राज्य-सिंहासन पर पादुका ही रही और आप राज्य का कार्य-भार सेवककी भांति संभालते रहे।

भगवान राम-का तो कहना ही क्या है वे तो विनय और शीलके घर हैं ही, और इसीलिये तो उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। उन्हें तो न युवराज पद पानेकी प्रसन्नता हुई न वनवासका दुख ही हुआ। किन्तु लक्ष्मणके स्वभावमें जहां-तहां उग्रता पायी जाती है। राम वन-यात्राके प्रारम्भमें सुमन्त्रको शृंगवेरपुर पहुँचने के बाद जब लौटाने लगे तो लक्ष्मणने वहां कुछ कड़वी बातें कहीं किन्तु रामने अत्यन्त संकोचके साथ लक्ष्मण की वे बातें किसीसे भी न कहनेके लिए उनको (सुमंत्रको) अपनी सौगन्ध दिलाई। लक्ष्मणको उन्होंने मना किया और हर प्रकारसे सुमन्त्रको वही करनेके लिए कहा जिससे पिता (दशरथजी) को कष्ट न हो।

भरतके साथ अयोध्यावासियोंका दल आते देख लक्ष्मण आपेसे बाहर हो जाते हैं। वह इसमें भरतकी कुटिलता समझ तुरत युद्ध करनेका विचार रामसे प्रकट करते हैं—

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेंहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥

परन्तु राम तो शील और दयाके निधान हैं। भरतकी सुशीलता रामसे छिपी नहीं है। वे भरतके स्वभावको जानते हैं और लक्ष्मणको भरतके विनय और शीलकी बड़ाई कर समझाते हैं।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि-प्रपंच मह सुना न दीसा॥

कैसे चला जाऊँ । मुझे तो इसे कुछ न कुछ देकर ही जाना है । उस २८७ ु स.१ मजदूरी मिलती है । काम कराकर टालने वाला हिसाब रामके साथ नहीं हैं। वह समझ जाते हैं कि इतनी सस्ती मजदूरीमें यह पिंड नहीं छोड़ेगा और अन्त में–

विदा कीन्ह करुणा यतन भगति विमल वरु देइ ॥

राम और वाल्मीकिजीके वार्तालापके समय तुलसीदासजी ने रामके जिस स्वरूप का वर्णन किया है वह उनके मर्यादा रक्षक परम ब्रह्म परमेश्वर होने का पूर्ण परिचय देता है–

राम सरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥
चिदानन्दमय देह तुम्हारी । विगत विकार जान अधिकारी ॥

× × × ×

वन में कुछ समयके निवास-योग्य स्थानके विषयमें राम द्वारा पूछे जाने पर वाल्मीकिजी ने जो उत्तर दिया है वह मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामके रहस्य को खोल देता है । वे निवास के बारे में कहते हैं–

जिन्हके श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहि निरन्तर होहि न पूरे । तिन्हके हियँ तुम कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक । बसहु वन्धु सिय सह रघुनायक ॥
जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ॥

× × × ×

इस प्रकार इसके आगे दोहा नंबर १३१ तक यह प्रकरण चला गया है जो बहुत ही शिक्षाप्रद और भगवद्भक्ति से परिपूर्ण है । विद्यार्थियों को इस अंश को कंठस्थ कर लेना चाहिये ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

अयोध्या काण्ड

मंगलाचरण

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ–वाम+अङ्के = वाम भाग में । च = और । विभाति = सुशोभित हैं । भूधरसुता = (पर्वतराज) हिमालय की कन्या, पार्वती जी । देवापगा = देवताओं की नदी, गंगाजी । भाले = ललाट में । बालविधुः = द्वितीया का चन्द्रमा । गले = कण्ठ में । गरलं = हलाहल, विष । यस्य+उरसि = जिसके वक्षःस्थल पर । व्याल+राट् = सर्पराज, शेषनाग । सोऽयं = वही । भूति+विभूषणः = भस्म (राख) से भूषित । सुरवरः = देवताओं में प्रधान । सर्व+अधिपः = सबके स्वामी, सर्वेश्वर । सर्वदा = अविनाशी । शर्वः = संहारकर्त्ता । सर्वगतः = सबमें व्याप्त, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी । शिवः = कल्याणस्वरूप । शशिनिभः = चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण । निभः = चमक-दमक, समान । पातु = रक्षा करें । माम् = मुझको, मेरी ।

अर्थ–जिनके वाम भाग में पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, ललाट पर द्वितीया का चन्द्र, कण्ठ में हलाहल (विष) और वक्षःस्थल में सर्पराज सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, अविनाशी, सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप, चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण श्रीशंकरजी मेरी रक्षा करें ॥१॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥२॥

शब्दार्थ—प्रसन्नतां = प्रसन्नता को । या = जो । गता+अभिषेकतः+तथा—गता = गयी (प्राप्त हुई); अभिषेकतः = राजतिलक (राज पद पर निर्वाचित होने) से; तथा = और । मम्ले = मलीनता को (प्राप्त हुई) । वनवास+दुःखतः = वनवास के दुःख से । मुख+अम्बुज = मुखकमल । श्री = शोभा । रघुनन्दनस्य = रामचन्द्र जी की । मे = मेरे लिये । सदा = हमेशा । अस्तु = हो । सा = वह । मञ्जुल मंगल-प्रदा = सुन्दर मंगल देनेवाली ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के मुखकमल की जो शोभा राज्याभिषेक (के निश्चय) से न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास (की आज्ञा) के दुःख से मलिन ही हुई, वह (शोभा) सदा मेरे लिए सुन्दर मंगल को देनेवाली हो ॥२॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥३॥

शब्दार्थ—नील+अम्वुज—श्यामल = नील कमल के सदृश श्याम (सांवला) । कोमल+अंगं = कोमल शरीर को । सीता+सम्+आरोपित = सीता से सुशोभित । पाणौ = (दोनों) हाथों में । महासायक = बड़ा (तीखा, अचूक) वाण । चारु-चापं = सुन्दर धनुष । नमामि = नमस्कार करता हूं । रघुवंश+नाथम् = रघुवंशियों के स्वामी को ।

अर्थ—जिनका शरीर नील कमल के सदृश श्याम और कोमल है, जिनके वाम भाग में श्रीजानकीजी सुशोभित (विराजमान) हैं और जिनके हाथों में सुन्दर धनुष और अमोघ वाण हैं, उन रघुवंशियों के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी को (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥३॥

टिप्पणी—इस श्लोक के पहले चरण के विशेषण से वाल, दूसरे से विवाहित, तीसरे से वनवासी तथा चौथे से राज्य प्राप्त श्रीरामचन्द्रजी की वन्दना की गयी है ।

दो०—श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि ।
वरनउँ रघुवर विमल जसु जो दायकु फल चारि ॥१॥

शब्दार्थ—चरन-सरोज-रज = कमल रूपी चरणों की धूलि । मन = मन

(रूपी)। मुकुरु=दर्पण, शीशा। सुधारि=साफ करके। जसु=यश, चरित्र। दायकु=देनेवाला। फल चारि=चारों फल—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

अर्थ—श्रीगुरुजी के चरण कमलों की धूलि से अपने मन रूपी दर्पण को साफ करके (मैं) श्रीरामचन्द्रजी के निर्मल यश का वर्णन करता हूँ; जो चारों फलों का दाता है ॥१॥

जब तें रामु ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरसहिं सुख बारी॥

शब्दार्थ—तें=से। नव मंगल=नये मंगल। मोद=आनन्द, हर्ष, खुशी। बधायें=उत्सव। भुवन=लोक। चारिदस=४+१०=१४ चौदह। चौदह भुवन—(सात ऊपर) भुर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, (सात नीचे) अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल। भूधर भारी=बड़े पर्वत। सुकृत=पुण्य (रूपी)। सुखबारी=सुख (रूपी) जल।

अर्थ—जब से श्रीरामचन्द्रजी व्याह करके घर (अयोध्या में) आये हैं, तब से हमेशा नये मंगल-कार्य और आनन्द-उत्सव हो रहे हैं। चौदहों लोक रूपी बड़े पर्वतों पर पुण्य रूपी मेघ सुख रूपी जल बरसा रहे हैं। अर्थात् सम्पूर्ण लोकों में पुण्य-कार्य हो रहे हैं और सर्वत्र सुख-शान्ति विराज रही है।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भांती॥

शब्दार्थ—रिधि-सिधि (ऋद्धि-सिद्धि)=समृद्धि (सब प्रकार की उन्नति या सम्पन्नता) और सफलता जो गणेशजी की दासियां मानी जाती हैं। सिद्धियां ८ हैं-अणिमा (बहुत छोटा बन जाने की शक्ति), महिमा (बहुत बड़ा बन जाने की शक्ति) लघिमा (हल्का बन जाने की शक्ति), गरिमा (बहुत भारी बन जाने की शक्ति), प्राप्ति (दूर की चीज पा जाने की शक्ति), प्राकाम्य (मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेने की शक्ति), ईशित्व (प्रभुत्व जमाने की शक्ति), वशित्व (औरों को वश में कर लेने की शक्ति)। उमगि=उमड़कर। अबुधि=समुद्र। कहुं=पास मनिगन (मणि गण) मणियों का समूह। सुजाती=उत्तम श्रेणी की, सुचि=(शुचि) पवित्र।

अर्थ--ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियां उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष (अयोध्या रूपी समुद्र की) उत्तम श्रेणी की मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुन्दर हैं।

कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु येतनिअँ बिरंचि करतूती॥
सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचन्द्र मुख चंदु निहारी॥

शब्दार्थ--विभूती=ऐश्वर्य, वृद्धि। येतनिअँ=इतना ही। विरंचि=ब्रह्मा। करतूती=गुण, हुनर, कारीगरी। मुख-चंदु=मुख रूपी चन्द्रमा।

अर्थ--नगर का ऐश्वर्य (शोभा) कुछ कहा नहीं जाता। (ऐसा जान पड़ता है) मानो ब्रह्मा की कारीगरी बस इतनी ही है। सभी नगर निवासी श्रीरामचन्द्रजी के मुख रूपी चन्द्रमा को देखकर सब प्रकार सुखी हैं।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

शब्दार्थ--मुदित=प्रसन्न। सखी=वह स्त्री जो सदा साथ में रहती हो और दोनों के मन-प्राण एक हों। फलित=फली हुई। बेली=लता। सील=(शील) चाल, व्यवहार, आचरण।

अर्थ--सब माताएँ तथा सखी और सहेलियां अपनी इच्छा रूपी लता को फली हुई देखकर प्रसन्न हैं। (और) महाराज दशरथ भी श्रीरामचन्द्रजी के रूप-गुण-शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं।

दो०--सब के उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज पदु रामहिं देउ नरेसु॥२॥

शब्दार्थ--अछत=जीते जी, रहते ही।

अर्थ--सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब शकरजी को मनाकर यही कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्रीरामचन्द्रजी को युवराज का पद दे दें॥२॥

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज बिराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥

शब्दार्थ--समाजा=मन्त्री आदि दरबारी लोग। रघुराज=श्रीदशरथजी। विराजा=विराजमान थे, बैठे थे। सुकृत=पुण्य। नर-नाहू (नाथू)=मनुष्यों के स्वामी, राजा। उछाहू=आनन्दित (हो रहे हैं)।

अर्थ—एक समय महाराज दशरथजी अपने सब समाज सहित राजसभा में बैठे थे। समस्त पुण्यों की मूर्ति महाराज, श्रीरामचन्द्रजी का सुन्दर यश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हैं।

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे ॥
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग दशरथ सम नाहीं ॥

शब्दार्थ—लोकप=लोकों के राजा अथवा दिशाओं के स्वामी—(पूर्व) इन्द्र, (आग्नेय) अग्नि, (दक्षिण) यमराज, (नैऋत्य) नैऋत् (पश्चिम) वरुण, (वायव्य) वायु, (उत्तर) कुवेर, (ईशान) शंकर (आकाश) ब्रह्मा, (पाताल) विष्णु। रुख=मन का भाव, मर्जी। रुख राखे-अनुकूल होकर। तीनि काल=भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्। भूरि=बड़ा, बहुत।

अर्थ—सब राजा (उनकी) कृपा चाहते रहते हैं। (और) लोकपाल उनकी इच्छा को रखते हुए (अनुकूल होकर उनसे) प्रेम रखते हैं। (इस प्रकार) तीनों लोकों और तीनों कालों में दशरथजी के समान अत्यन्त भाग्यवान (और) कोई नहीं है।

मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥

शब्दार्थ—मंगलमूल=कल्याण का आधार। तासू=उसको, उसके लिए। वदनु=मुख।

अर्थ—मंगलों के मूल श्रीरामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ भी कहा जाय सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ में दर्पण लिया और उसमें मुख देखकर मुकुट को सीधा किया।

स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुं जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुवराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

शब्दार्थ—स्रवन=कान। सित=सफेद। जरठपनु=बुढ़ापा। लाहु=लाभ।

अर्थ—(राजा ने देखा कि) कानों के पास बाल सफेद हो गये हैं। मानों बुढ़ापा ऐसा उपदेश दे रहा है, कि हे राजा! रामचन्द्र को युवराज-पद देकर अपने और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते।

दो०–यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसर पाइ ।
प्रेम पुलकि तनु मुदित मन गुरहि सुनायेउ जाइ ॥३॥

शव्दार्थ–आनि = लाकर । पुलकि = रोमांच युक्त, गद्गद ।

अर्थ–राजा ने हृदय में यह विचार लाकर और शुभ दिन तथा सुन्दर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो और प्रसन्न मन से (वह विचार) गुरु वशिष्ठजी को जा सुनाया ॥३॥

कहइ भुआल सुनिअ मुनिनायक । भये रामु सब विधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥

शव्दार्थ–उदासी = उदासीन अर्थात् जो न मित्र हैं और न शत्रु ।

अर्थ–राजा ने कहा–हे मुनियों में श्रेष्ठ ! सुनिये, श्रीरामचन्द्रजी सव प्रकार से सब (कार्यों के) योग्य हो गये हैं। (क्योंकि) सेवक, मन्त्री, समस्त नगरनिवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं–

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोहीं । प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही ॥
बिप्र सहित परिवार गोसाईं । करहिं छोहु सब रउरेहिं नाईं ॥

शव्दार्थ–सोही = शोभा देता है। गोसाईं = स्वामी। छोहु = स्नेह, प्रेम। रउरेहि= आपके ही ।

अर्थ–रामचन्द्रजी सबको उतने ही प्रिय हैं जितना मुझे। (उनके रूप में) मानों आपका आशीर्वाद शरीर धारण कर शोभा दे रहा है। हे स्वामी ! परिवार के साथ सभी ब्राह्मण आपके ही समान उनसे स्नेह रखते हैं।

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ॥
मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सब पायउँ रज पावनि पूजें ॥

शव्दार्थ–रेनु (रेणु) = धलि। वस = अधीन। अनुभयउ = जाना, अनुभव किया। दूजे = दूसरा।

अर्थ–जो लोग गुरु के चरणों की धूलि को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान और किसी ने नहीं किया। आपके पवित्र (चरणों की) रज की पूजा करके मैंने सब कुछ पाया है।

अब अभिलाषु एकु मन मोरे । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू । कहेउ नरेस रजायसु देहू ॥

शब्दार्थ—पूजहि = पूरा होगा । अनुग्रह = कृपा । सहज = स्वाभाविक । रजायसु = आज्ञा ।

अर्थ—(किन्तु) मेरे मन में अब एक अभिलाषा और है; वह, हे स्वामी ! आपकी ही कृपा से पूरी होगी । राजा का स्वाभाविक स्नेह देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा—हे राजन् ! आज्ञा दीजिये (अपनी अभिलाषा कहिये) ।

दो०—राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाषु तुम्हार ॥४॥

शब्दार्थ—अभिमत = चाही हुई वस्तु, मनोरथ । दातार = देनेवाला । अनुगामी = पीछे चलने वाले । महिपमनि = राजाओं में मणि के समान ।

अर्थ—(वशिष्ठजी ने कहा) हे राजन् ! आपका नाम और यश सब चाही ई वस्तुओं को देनेवाला है । हे राजाओं में श्रेष्ठ, सब फल आपके मन की अभिलाषा के पीछे-पीछे चलते हैं ॥४॥

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ रहसि मृदुबानी ॥
नाथ रामु करिअहिं जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥

शब्दार्थ—रहसि = प्रसन्न होकर, हर्षित हो, । समाजू = तैयारी, सामान ।

अर्थ—(अपने) जी में गुरु को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित हो राजा मीठी वाणी से बोले—हे नाथ ! (अब आप) श्रीरामचन्द्रजी को युवराज के पद पर सुशोभित करें । कृपाकर कहिये तो तैयारी की जाय ॥

मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । अेह लालसा एक मन माहीं ॥

शब्दार्थ—उछाहू = उत्सव । लोचन = नेत्र, आंख । प्रसाद = कृपा । निबाहीं = पूरा किया ।

अर्थ—मेरे जीते जी यह उत्सव हो जाय, (जिससे) सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त कर लें । प्रभु की (आपकी) कृपा से शिवजी ने मेरी सब इच्छायें पूर्ण कर दीं । (अब केवल) यही एक इच्छा मन में रह गयी है ।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछें पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए । मंगल मोद मूल मन भाए ॥

शब्दार्थ—पुनि = फिर । जेहि = जिससे । मोद = आनन्द । भाए = अच्छे लगे, प्रसन्न हुए ।

अर्थ—(इसके पूर्ण हो जाने पर) फिर चाहे शरीर रहे या चला जाय, (इसकी) चिन्ता नहीं; जिससे पीछे पछतावा न हो । दशरथजी के मंगल और आनन्द के मूल सुन्दर वचनों को सुनकर मुनि मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयेउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥

शब्दार्थ—बिमुख = प्रतिकूल, अलग, उल्टा । जरनि = हृदय का कष्ट, जी की जलन । तनय = पुत्र । सोइ स्वामी = वही प्रभु अर्थात् समस्त संसार के स्वामी ।

अर्थ—(वशिष्ठ जी ने कहा) हे राजन् ! सुनिये, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन बिना जी का ताप नहीं जाता, वही प्रभु तुम्हारे पुत्र हुए हैं । श्रीरामजी पवित्र प्रेम के पीछे चलने वाले हैं ।

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ॥५॥

शब्दार्थ—बेगि = जल्दी, शीघ्र । साजिअ = सजाइये, ठीक कीजिए ।

अर्थ—हे राजन् ! अब देर न कीजिये, सब सामान सजाइये । शुभ दिन और सुन्दर मंगल मय समय तभी है जब श्रीरामचन्द्रजी युवराज हो जायँ अर्थात् उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मङ्गलमय हैं ॥५॥

मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक सचिव सुमंत्र बोलाए ॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥

शब्दार्थ—महीपति = राजा । मंदिर = महल । सीस नाए = प्रणाम किया । तिन्ह = उन लोगों ने ।

अर्थ—प्रसन्न होकर राजा महल में आये और उन्होंने सेवकों और मंत्री सुमंत्र को बुलवाया । उन लोगों ने 'जय-जीव' कहकर प्रणाम किया । तब राजा ने सुन्दर मंगलमय वचन (श्रीरामचन्द्रजी को युवराज पद देने का प्रस्ताव) सुनाया ।

प्रमुदित मोहि कहेउ गुर आजू । रामहि राय देहु जुबराजू ॥
जौं पांचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥

अर्थ—प्रसन्न होकर गुरु ने आज मुझसे कहा है, कि हे राजन् ! आप श्री-

रामचन्द्रजी को युवराज पद दें। यदि आप पंचों को यह राय अच्छी लगे तो प्रसन्न मन से आप लोग श्रीरामचन्द्रजी का राजतिलक करें।

मंत्री मुदित सुनत प्रियबानी। अभिमत बिरव परेउ जनुपानी ॥
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जियहु जगत पति बरिस करोरी ॥

अर्थ—इस प्रिय वाणी को सुनते ही मंत्री ऐसे आनन्दित हुए मानो उनके मनोरथ रूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो। मंत्री हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हे जगतपति! आप करोड़ों वर्ष जियें।

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥
नृपहिं मोदु सुनि सचिव सुभाखा। बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥

शब्दार्थ—बेगिअ = जल्दी कीजिये। बारा = विलम्ब, देर। सुभाखा = सुन्दर वाणी। बौंड़ = लता, बेल।

अर्थ—आपने संसार का कल्याण करने वाला अच्छा काम सोचा है। हे नाथ! शीघ्रता कीजिये, देर न लगाइये। मंत्री की सुन्दर वाणी को सुनकर राजा को ऐसा आनन्द हुआ, मानो बढ़ती हुई लता सुन्दर डाल का सहारा पा गयी हो।

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ ॥६॥

अर्थ—राजा ने कहा—श्री रामचन्द्रजी के राजतिलक के लिये मुनिराज वशिष्ठजी की जो-जो आज्ञा हो, वह आप लोग शीघ्र कर डालें ॥६॥

हरषि मुनीस कहेउ मृदुबानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना ॥

शब्दार्थ—आनहु = लाओ। पाना = ताम्बूल, पत्ता। गनि = गिनकर। नाना = अनेक।

अर्थ—मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि सभी श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ। फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल तथा पत्र आदि अनेकों मांगलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताये।

चामर चरम बसन बहु भांती। रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥

शब्दार्थ—चामर = चँवर, जो गाय की पूंछ के बालों का बनता है। चरम = मृगचर्म। रोम = ऊनी। पाट = रेशमी। पट = वस्त्र। जोगु = योग्य।

अर्थ—चँवर, मृगचर्म, बहुत तरह के वस्त्र, असंख्य भांति के ऊनी और रेशमी कपड़े, नाना प्रकार की मणियां तथा और भी मांगलिक द्रव्य जो संसार में राज्याभिषेक के योग्य होते हैं–(मंगाने की आज्ञा दी)।

बेद बिहित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥
सफल रसाल पूंगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥

शब्दार्थ—बेदबिहित = वेदों में वर्णित (कहा हुआ)। विधाना = क्रिया, नियम, व्यवस्था। रचहु = बनाओ, सजाओ। विविध = भांति-भांति के। बिताना मंडप, चंदोवा। सफल = फल सहित। रसाल = आम। पूँगफल = सुपारी। केरा = केला। रोपहु = लगाओ, रोपो। बीथिन्ह = गलियां। फेरा = ओर, तरफ,। पुर = नगर।

अर्थ—वेदों में कहे हुए सम्पूर्ण नियमों को बताते हुए वशिष्ठजी ने कहा कि नगर में भांति-भांति के मण्डप बनाओ। फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू। कहहु बनावनि बेगि बजारू॥
पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥

शब्दार्थ—मंजु = सुन्दर। चौकइ = चौका, आटे आदि की लकीरों से बना चौखूंटा चित्र। चारु = सुन्दर। भूमिसुर = पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण।

अर्थ—सुन्दर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार बनाने के लिए शीघ्र ही आज्ञा दो। श्रीगणेशजी, गुरु तथा कुलदेवता की पूजा करो और भूसुर ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो।

दो०–ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर वचन सबु निज निज काजहिं लाग॥७॥

शब्दार्थ—ध्वज = झण्डा। पताका = झंडा। तोरन (तोरण) = वन्दनवार। तुरंग = घोड़ा। नाग = हाथी। लाग = लग गये। सिरधरि = मानकर, शिरोधार्य कर।

अर्थ—ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको

सजाओ। श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी के वचनों को शिरोधार्य कर सब लोग अपने-अपने काम में लग गये ॥७॥

जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा। सो तेंहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
विप्र साधु सुर पजत राजा। करत राम हित मंगल काजा ॥

शब्दार्थ—सुर = देवता। रामहित = श्रीरामचन्द्रजी के कल्याण के लिए। काजा = कार्य।

अर्थ—मुनीश्वर ने जिसको जो आज्ञा दी, वह कार्य उसने (इतनी शीघ्रता से कर डाला कि) मानो पहले से ही कर रखा हो। राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओं की पूजा कर रहे हैं तथा श्रीरामचन्द्रजी के कल्याण के लिए सब मंगल कार्य कर रहे हैं।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा ॥
राम सीय तन सगुन जनाये। फरकहिं मंगल अंग सुहाये ॥

शब्दार्थ—गहागह = धमाधम, धूमधाम से, आनन्दपूर्ण। सगुन = शुभाशुभ लक्षण (यहां शुभ लक्षण से तात्पर्य है)। मंगल अंग = स्त्री का बायां और पुरुष का दाहिना अंग शुभजनक है।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के राज़तिलक की सुन्दर खबर सुनते ही, अयोध्या में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे। श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजी के शरीर में भी शुभ शकुन मालूम हुए। उनके सुन्दर शुभ अंग फड़कने लगे।

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं ॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥

शब्दार्थ—सूचक = प्रकट करनेवाला, बतलाने वाला। अहहीं = हैं। अवसेरी = चिन्ता, व्याकुलता।

अर्थ—पुलकित होकर दोनों प्रेम से एक दूसरे से कहते हैं कि यह शुभ शकुन भरत के आने की सूचना दे रहे हैं। (उनको ननिहाल गये) बहुत दिन हो गये, अत्यन्त चिन्ता हो रही है। इन शकुनों से प्रिय (भरत) के मिलने का विश्वास हो रहा है।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहिं बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भांती ॥

शब्दार्थ—इहइ = यही। अंडन्हि = अंडों का। कमठ = कछुआ।

अर्थ—भरत के समान इस संसार में (हमें) और कौन प्यारा है! शकुन का फल बस यही है, दूसरा नहीं। श्रीरामचन्द्रजी को भाई का सोच दिन-रात इस प्रकार रहता है जैसे कछुए के मन में अपने अंडों का।

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीच बिलासु ॥८॥

शब्दार्थ—रहसेउ = हर्षित, आनन्दित हुआ। बिधु = चन्द्रमा। बीचि = लहर। बिलासु = आनन्द, हिलना, डुलना। रनिवास = अन्तःपुर, रानियों के रहने का स्थान।

अर्थ—इसी समय यह अत्यन्त मंगलमय समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा, जैसे चन्द्रमा को बढ़ते देख समुद्र में लहरों का आनन्द (हिलना, डुलना) शोभा देता है ॥८॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाये ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागीं ॥

शब्दार्थ—भूषन = गहना, आभूषण। बचन = बात, समाचार। बसन = वस्त्र, कपड़ा। भूरि = बहुत।

अर्थ—सबसे पहले जाकर जिन्होंने ये समाचार कहे उन्होंने बहुत से गहने और कपड़े पाये। प्रेम पुलकित शरीर तथा प्रेम-मग्न मन से सभी रानियां मंगल कलश सजाने लगीं।

चौकइ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भांति अति रूरी ॥
आनंद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी ॥

शब्दार्थ—रूरी = सुन्दर। मगन = मग्न। हँकारी = बुलाकर।

अर्थ—सुमित्राजी ने अत्यन्त सुन्दर मणियों के अनेक प्रकार के सुन्दर चौक पूरे। आनन्द में मग्न श्रीरामचन्द्रजी की माता (कौशल्याजी) ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दिये।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥

शब्दार्थ—नागा = एक प्रकार के देवता जो पाताल में रहते हैं। वहोरी = फिर ॥ बलि = चढ़ावा, भेंट ।

अर्थ—(कौशल्याजी ने) ग्रामदेवी, देवता और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा। और प्रार्थना की कि जिस प्रकार से श्रीरामचन्द्रजी का कल्याण हो (आप लोग) कृपा करके वही वरदान दें।

गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधु बदनी मृग सावक नयनी ॥

शब्दार्थ—विधुवदनी = चन्द्रमा के समान मुखवाली। कोकिल बयनी = कोयल के समान मधुर बोलीवाली। सावक = बच्चा। मृग-सावक-नयनी = मृगा के बच्चे के समान नेत्रवाली।

अर्थ—कोयल के समान मधुर वाणीवाली, चन्द्रमा के समान मुखवाली तथा मृगा के बच्चे के समान नेत्रवाली स्त्रियां मंगल गान करने लगीं।

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल विचारि ॥९॥

शब्दार्थ—हिय = हृदय से। विधि = ब्रह्मा। अनुकूल = प्रसन्न।

अर्थ—श्री रामचन्द्रजी का राजतिलक सुन सभी स्त्री-पुरुष हृदय से प्रसन्न हो उठे और ब्रह्मा को अपने ऊपर प्रसन्न समझ कर सभी सुन्दर मंगल-साज सजाने लगे ॥९॥

तब नरनाह वसिष्ठ बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥

शब्दार्थ—धाम = घर, महल। सिख = शिक्षा। पठाये = भेजा। आगमनु = आना।

अर्थ—तब राजा ने वशिष्ठजी को बुलाया और समयोचित शिक्षा देने के लिए श्रीरामचन्द्रजी के महल में भेजा। गुरुजी का आना सुनते ही श्रीरामचन्द्र जी ने दरवाजे पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भांति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित वहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥

शब्दार्थ—अरघ (अर्घ) = वह जल जो सम्मान प्रकट करने के लिए दिया जाता है। सोलह प्रकार की पूजा = स्वागत, पाद्य (पैर धोने के लि-

आसन, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क (दही और शहद), पुनः आचमन, स्नान, वस्त्राभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य (प्रसाद, देवता का भोग, मीठी वस्तु) वन्दना। गहे = पकड़ा।

अर्थ–(फिर) आदरपूर्वक अर्घ्य देकर (उन्हें) घर में लाये और सोलहो प्रकार से पूजा करके (उनका) सम्मान किया। और फिर सीताजी के साथ उनके चरण छूकर श्रीरामचन्द्रजी कमल के समान (दोनों) हाथों को जोड़कर बोले–

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥

शब्दार्थ–सदन = घर। अमंगल = अशुभ। दमनू = नाश करनेवाला। तदपि = तो भी। जन = दास। बोलि पठइअ = बुला भेजना। सप्रीती = प्रेमपूर्वक। अस = ऐसी।

अर्थ–(यद्यपि) सेवक के गृह पर स्वामी का आगमन सब मङ्गलों का मूल और अमङ्गलों का नाश करनेवाला होता है, तो भी हे नाथ! उचित तो यही था और ऐसी ही नीति भी है, कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु येहु गेहू॥
आयेसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई॥

शब्दार्थ–प्रभुता = प्रधानता, बड़ाई, बड़प्पन। गेहू = गृह, घर। लहइ = पावे

अर्थ–(किन्तु) आपने अपने बड़प्पन को छोड़कर (जो) प्रेम (प्रकट) किया, उससे आज यह घर पवित्र हो गया। हे स्वामी! आपकी जो आज्ञा हो वह मैं करूँ, (जिससे) यह सेवक स्वामी की सेवा को पा जाय।

दो०–सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥१०॥

शब्दार्थ–प्रसंस = प्रशंसा करके। कस = क्यों। हंस = सूर्य। अवतंस = भूषण श्रेष्ठ। हंस-बंस-अवतंस = सूर्य वंश के भूषण।

अर्थ–(श्रीरामचन्द्रजी के) प्रेम में सने हुये वचनों को सुनकर, मुनि वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी की प्रशंसा करते हुए बोले–हे रामचन्द्र! तुम ऐसा क्यों न कहो? तुम सूर्यवंश के भूषण जो हो॥१०॥

बरनि रामगुन सील सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ।।
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू ।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करके मुनिराज प्रेम से पुलकित हो बोले,–(हे रामचन्द्र!) राजा ने राजतिलक का सब सामान सजाया है। वे तुम्हें युवराज पद देना चाहते हैं।

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू ।।
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमउ भयऊ ।।

शब्दार्थ–संजम (संयम) = मन तथा इन्द्रियों को वश में रखते हुये उपवास, हवन आदि कर्म। जौं = यदि। निबाहइ = पूरा कर दे। राय पहिं = राजा के पास। विसमय = आश्चर्य।

अर्थ–इसलिये हे राम! आज तुम सब संयमों को करो, यदि ब्रह्मा कुशल-पूर्वक इस कार्य को पूरा कर दें (तो अच्छा है)। गुरुजी यह उपदेश देकर राजा दशरथ के पास चले गये। इस पर श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में इस प्रकार का आश्चर्य हुआ–

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ।।
करनवेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भयउ उछाहा ।।

शब्दार्थ–सयन = सोना। केलि = खेल-कूद। करन (कर्ण) बेध = एक प्रकार का संस्कार जिसमें लड़कों का कान छेदा जाता है। उपवीत = जनेऊ देने का संस्कार

अर्थ–हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाया, सोया, लड़कपन के खेल खेले; (हमारे) कर्णवेध, यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि उत्सव भी साथ ही साथ हुए।

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ।।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई ।।

शब्दार्थ–बिहाइ = छोड़कर। पछितानि = पश्चाताप, पछतावा। हरउ = दूर करे, हरण करे।

अर्थ–(परन्तु इस) पवित्र वंश में यही एक अनुचित (रीति) है कि (और) भाइयों को छोड़ बड़े का ही राज्याभिषेक होता है। (तुलसीदासजी कहते हैं कि) श्रीरामचन्द्रजी का यह सुन्दर प्रेमसहित पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को दूर करे।

अधिकारी होता है। (इसलिये) आप देवताओं के कल्याण के लिये अयोध्या में (अवश्य) जायँ।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥

शब्दार्थ—सँकोची = संकोच में डाल दिया, खिचाव में डाल दिया। बिबुध = देवता। पोची = नीच, बुरी। निवासु = रहने का स्थान। पराइ = पराई, दूसरे की।

अर्थ—बार-बार चरण को पकड़कर देवताओं ने सरस्वतीजी को संकोच में डाल दिया। तब वह यह विचार करके वहां से चल पड़ीं कि देवताओं की बुद्धि बड़ी नीच है। रहते तो हैं ऊंचे स्थान में, परन्तु कर्म इनके नीच हैं। ये दूसरे के वैभव को देख नहीं सकते।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई॥

शब्दार्थ—आगिल = आगे का, भविष्य का। चाह = कामना, इच्छा। कुसल = चतुर।

अर्थ—किन्तु मेरे भविष्य कर्म का विचार करके (श्रीरामजी के द्वारा राक्षसों का बध और जगत का कल्याण) चतुर कवि मेरी फिर चाह करेंगे। ऐसा विचार कर हृदय में प्रसन्न हो सरस्वतीजी अयोध्या में आयीं, मानो कठिन दुख देनेवाली कोई ग्रहदशा आयी हो।

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥१२॥

शब्दार्थ—चेरी = दासी। पेटारी = छोटी पेटी, मंजूषा। गिरा = सरस्वती। फेरि = बदल कर।

अर्थ—मन्थरा नाम की कैकेयी की एक मन्द बुद्धि दासी थी, सरस्वती उसे ही कलंक की पिटारी बना, उसकी बुद्धि को फेरकर चली गयीं॥१२॥

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥

शब्दार्थः—बनावा = सजावट । काह = क्या, कैसा । भा = हुआ । उर दाहू = हृदय में जलन (पीड़ा) ।

अर्थ—मन्थरा ने शहर की सजावट को देखा । सुन्दर मंगलमय बधावे बज रहे हैं । (उसने) लोगों से पूछा कि कैसा उत्सव है ? श्रीरामचन्द्रजी के राज-तिलक की बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा ।

करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवनि बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भांती ॥

शब्दार्थ—कुजाती = नीच जाति की । अकाजु = कार्य में हानि । कवनि = किस । लागि = लगी हुई । किराती = भीलनी । गवँ = घात, मौका । तकइ = देखना ।

अर्थ—वह दुर्वुद्धि नीच जाति की दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार (आज की) रात में ही इस कार्य में बाधा पड़े; जैसे कोई दुष्ट भीलनी मधु का छत्ता देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरह ले लूं ।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कह हँसि रानी ॥
उतरु देइ न लेइ उसासू । नारि चरित करि ढारइ आंसू ॥

शब्दार्थ—बिलखानी = दुःखी-होकर । अनमनि = उदास । हसि = है । उसासू = लम्बी सांस । नारि चरित = स्त्री-चरित्र । ढारइ = गिराती है ।

अर्थ—वह दुखी होकर भरतजी की माता (कैकेयी) के पास गयी । रानी (कैकेयी) ने हँसकर पूछा—तू उदास क्यों है ? (इसपर) वह कुछ उत्तर नहीं देती (केवल) लम्बी सांस लेती और स्त्री चरित्र करके आंसू वहाती है ।

हँसि कह रानि गाल बड़ तोरें । दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे ॥
तबहुं न बोलि चेरि बड़ि पापिनि । छांड़इ स्वास कारि जनु सापिनि ॥

शब्दार्थ—गालबड़ (बड़ा गाल) = बकबक करने की आदत, बहुत बढ़-बढ़ कर बोलना । कारि = काली । सांपिनि = सर्पिणी, नागिन ।

अर्थ—रानी हँसकर कहने लगी तू बहुत बढ़-बढ़कर बोलनेवाली है । इससे मेरा मन तो कहता है कि लक्ष्मण जी ने तुझे कुछ सीख दी है । तब भी वह महान् पापिनी दासी कुछ भी नहीं बोली और ऐसी लम्बी सांस लेने लगी जैसे काली नागिन हो ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी को सब माताएं सहज स्वभाव से कौशल्या के समान ही प्यारी हैं। (किन्तु) मुझपर वे अधिक प्रेम रखते हैं, मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें॥

शब्दार्थ—विधि = विधाता, ब्रह्मा। छोहू = कृपा। पतोहू = पुत्र-वधू, बहू।

अर्थ—यदि विधाता कृपा करके (फिर) जन्म दें तो (यह भी दें कि) श्रीरामचन्द्र मेरे पुत्र और सीता पतोहू हों। श्री रामचन्द्रजी तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, उनके राजतिलक से तुझे छोभ (विकलता) क्यों है?

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ॥१५॥

शब्दार्थ—परिहरि = छोड़कर। दुराउ = छिपाव, भेद। बिसमउ = विषाद, दुःख।

अर्थ—तुझे भरत की सौगंध है, छल और भेद को छोड़कर सच कह। तुझे खुशी के समय में विषाद क्यों हो रहा है, इसका कारण मुझे सुना॥१५॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥

शब्दार्थ—आस = आशा। पूजी = पूरी हुई। फोरइ = फोड़ने। कपारु = कपाल, सिर, भाग्य।

अर्थ—सभी आशाएं तो एक ही बार कहने में पूरी हो गयीं। अब तो दूसरी जीभ लगाकर ही कुछ कहूंगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहने पर भी आपको दुख लगा।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥

शब्दार्थ—करुइ = कड़वी, अप्रिय। ठकुरसोहाती = स्वामी को अच्छी लगने वाली बात, मुंह देखी बात।

अर्थ—जो झूठी-सच्ची बात बनाकर कहते हैं, हे माई! वे ही तुम्हें प्रिय और मैं कड़वी लगती हूं। अब मैं भी मुंहदेखी बात कहा करूँगी और नहीं तो चुप रहूंगी।

करि कुरूप विधि परबस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥

शब्दार्थ–परवस = दूसरे के अधीन । ववा = वोया । लुनिअ = काटना । लहिअ = पाना ।

अर्थ–ब्रह्मा ने कुरूप बनाकर दूसरे के अधीन कर दिया । (ठीक ही है) जो बोया वह काटती हूँ और जो दिया है वही पाती हूँ । कोई भी राजा हो, हमें कौन सी हानि है । दासी के सिवा अब क्या मैं रानी होऊँगी ?

जारइ जोगु सुभाव हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता तें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ चूक हमारी ॥

शब्दार्थ–जारइ = जलाने । अनभल = बुराई । तातें = इससे । अनुसारी = चला दी ।

अर्थ–हमारा स्वभाव ही जलाने के योग्य है, क्योंकि तुम्हारी बुराई मुझ से देखी नहीं जाती । इसी से कुछ बात चला दी । हे देवि ! क्षमा करो , हमारी बड़ी भूल हुई ।

दो०–गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि ।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

शब्दार्थ–तीय = स्त्री । अधर बुधि = जिसकी बुद्धि होठों पर ही हो, चंचल बुद्धि की । वैरिनिहि = वैरिन को । सुहृद = मित्र । पतिआनि = विश्वास किया । गूढ़ = भेद भरी, रहस्यमयी ।

अर्थ–चचंल बुद्धि की स्त्री और देवताओं की माया के वश होने के कारण (मंथरा के) भेद तथा छल से भरे वचनों को सुनकर रानी कैकेयी ने उसको अपना मित्र (भलाई करने वाली) जान कर उसका विश्वास कर लिया ॥१६॥

सादर पुनि पुनि पूंछति ओही । सबरीं गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥

शब्दार्थ–सबरी = भीलनी । तसि = वैसी ही । अहइ = है । भावी = होनहार । घात = दांव लगना । फ़ाबी = शोभा देना ।

अर्थ–(रानी) बार-बार आदर से उससे पूछ रही है, मानो भीलनी के गान

से मृगी मोहित हो गयी हो। जैसी होनहार है वैसी ही उसकी बुद्धि भी बदल गयी। (यह देख कर) दासी अपना दांव लगा जान कर प्रसन्न हुई।

तुम्ह पूंछहु मैं कहत डेराऊं। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥

शब्दार्थ—सजि = जमाकर, उत्पन्न कर। साढ़साती = शनि की साढ़े सात साल की दशा।

अर्थ—तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ; क्यों कि तुमने मेरा नाम घरफोड़ी रखा है। अनेक प्रकार से गढ़-छोल कर और पूरा विश्वास जमा कर वह अयोध्या के लिये साढ़े सात साल की दशा रूपी मन्थरा बोली—

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरिबानी॥
रहा प्रथम अबते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥

शब्दार्थ—समउ = समय। फिरे = बदलने, पलटने। पिरीते = मित्र, प्रेमी।

अर्थ—हे रानी! तुमने जो यह कहा कि मुझे राम और सीता प्रिय हैं और राम को तुम भी प्रिय हो, यह बात बिल्कुल सत्य है। किन्तु ऐसी बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये; क्योंकि समय के फिरने से मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बर बारी॥

शब्दार्थ—भानु = सूर्य। पोषनिहारा = पालन करने वाला। जर = जल। छारा = भस्म, राख। जर = जड़। बर = श्रेष्ठ। बारी = क्यारी, किनारा, घेरा कमलकुल = कमल के वंश।

अर्थ—सूर्य कमल के वंश का पालन करने वाला है, परन्तु जल के न रहने पर वही उनको जला कर राख कर डालता है। (इसी भांति) सौत कौशल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है, अतः उपाय रूपी उत्तम घेरा देकर उसे रूँध दो।

दो०—तुमहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥१७॥

शब्दार्थ—सोहाग = सौभाग्य, अहिवात। मुह मीठ = मिष्ट भाषी, मीठा बोलने वाला।

अर्थ—तुम्हें अपने सुहाग के बल पर कुछ भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि राजा

को तुम अपने वश में जानती हो। किन्तु राजा तो मुंह के मीठे और मन के मैले हैं और आपका स्वभाव सीधा है ॥१७॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरत भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानब रौरें ॥

शब्दार्थ—बीचु= मौका। पठयें= भेजा।

अर्थ—राम की माता (कौशल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर है। उसने मौका पाकर अपना काम बना लिया है। राजा ने भरत को ननिहाल भेज दिया है। इसमें आप राम की माता की ही सलाह समझिये।

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पीकें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहिं माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥

शब्दार्थ—नीके= अच्छी तरह। गरवित= घमंड किये रहती है। सालु= दुःख।

अर्थ—(कौशल्या जानती है कि) और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं परन्तु एक भरत की माता पति के बल पर घमण्ड किये रहती है। हे माता! कौशल्या को तुम्हारा ही दुःख है और वे चतुर हैं इसलिए उनका कपट मालूम नहीं पड़ता।

राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई ॥

शब्दार्थ—रचि=रचकर। प्रपंचु=प्रपंच, जाल, ढोंग। अपनाई=वश में किया।

अर्थ—राजा का प्रेम तुम पर अधिक है और सौत के स्वभाव से कौशल्या यह देख नहीं सकती (उसे सहन नहीं होता)। इसलिए जाल रचकर उसने राजा को अपने वश में करके राम के राज तिलक के लिए लग्न निश्चय कर लिया है।

येहु कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोंहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डरु मोही। देउ दैव फिरि सो फल ओही ॥

शब्दार्थ—कुल= वंश। टीका= राजतिलक। सुठि= अत्यन्त, बहुत ही। आगिल= भविष्य की, आगे की। दैव= विधाता, ब्रह्मा। ओही= उसे।

अर्थ—वंश की रीति के अनुसार राम को राजतिलक देना उचित ही है; और यह बात सभी को सुहाती है, मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है। किन्तु आगे की बात सोच कर मुझे डर हो रहा है; विधाता इसका फल उलट कर उसे ही दें।

दो०–रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सतु सवति कै जेहि विधि बाढ़ बिरोधु॥ १८॥

शब्दार्थ–रचिपचि= बातें बनाकर, बातें गढ़कर। कुटिलपन= दुष्टता। प्रबोधु =ज्ञान। कपट-प्रबोध= उल्टी सीधी बातें समझाना। बाढ़= बढ़े।

अर्थ–मन्थरा ने करोड़ों प्रकार की दुष्टता भरी बातें गढ़-गढ़कर कैकेयी को छल-भरी बातें समझा दीं और सौतों की सैकड़ों कहानियां कहीं. जिनसे आपस में विरोध बढ़े ॥१८॥

भावीबस प्रतीति उरआई। पूंछु रानि पुनि सपथ देवाई॥
का पूंछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥

शब्दार्थ–भावी बस=होनहार के वश। देवाई=दिलाकर। हित=मित्र। अन हित=शत्रु।

अर्थ–होनहार के वश होने से कैकेयी के हृदय में विश्वास हो गया। रानी (वह) फिर शपथ दिलाकर पूछने लगी। (मन्थरा ने कहा) मुझ से क्या पूछती हो, क्या तुम्हें अबतक नहीं मालूम हुआ? अपने मित्र और शत्रु को तो पशु भी पहचान लेते हैं।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहिसन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहे नहिं दोषु हमारें॥

शब्दार्थ–पाख= (पक्ष) पन्द्रह। सुधि=खबर। सन=से। सजत समाजू=तैयारी करते।

अर्थ–तैयारी करते पूरे पन्द्रह दिन बीत गये और तुमने खबर आज मुझसे पायी है। मैं तुम्हारे राज में खाती-पहनती हूँ (पालन-पोषण होता है), इसलिए सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहव बनाई। तौ विधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयेऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयेऊ॥

शब्दार्थ–कहव=कहूँगी। जौं=यदि। कहुँ=को। बयऊ=वो दिया॥

अर्थ–यदि मैं कुछ भी बनाकर झूठ बोलूंगी तो ब्रह्मा मुझे दण्ड देंगे। यदि कल राम को राजतिलक हो गया, तो (समझ रखो कि) विधाता ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज वो दिया।

रेख खँचाइ कहउँ वल भाखी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

शब्दार्थ—रेख खँचाइ=लकीर खींचकर, जोर देकर (कहना)। वल भाखी (भाषी)=जवरदस्त वात, गम्भीर वात, । भामिनि=स्त्री । दूध कइ माखी=दूध की मक्खी, तुच्छ और तिरस्कृत । आन=दूसरा ।

अर्थ—(१) मैं लकीर खींच कर वलपूर्वक कहती हूँ कि हे भामिनी ! अव तुम दूध की मक्खी हो गयी । पुत्र के साथ-साथ यदि तुम (कौशल्या की) सेवा करो तो घर पर रहो नहीं तो कोई दूसरा उपाय नहीं है ।

(२) मैं जोर देकर और (वड़ी) गम्भीर वात कहती हूँ कि............ ।

दो०—कद्रू विनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहिं कौसिला देव ।
भरतु वंदि गृह सेइहहिं, लखन रामु के नेव ॥१९॥

शब्दार्थ—देव=देगी । वन्दिगृह=कैदखाना । नेव=नायव, मन्त्री ।

अर्थ—कद्रू ने (जैसे) विनता को दुःख दिया था, (वैसे ही) तुम्हें कौशल्या देगी । भरत कैदखाने का सेवन करेंगे और लक्ष्मण राम के नायव होंगे ॥१९॥

(नोट—कद्रू—विनता—महर्षि कश्यप भी एक दूसरे ब्रह्मा ही माने जाते हैं । उनके कद्रू और विनता दो स्त्रियां थीं । कद्रू से सर्पों की उत्पत्ति हुई थी और विनता से पक्षियों की । एक दिन दोनों में इस वात को लेकर वहस हो गयी कि सूर्य के घोड़े सफेद हैं या काले । विनता वोली-सफेद हैं और कद्रू ने कहा कि काले हैं । अन्त में यह ठहरी कि जिसकी वात गलत हो वह दासी वनकर रहे । यह निश्चय करने के लिए कि सूर्य के घोड़े की पूँछ किस रंग की है, दोनों चलीं । पर कद्रू ने अपने लड़के सर्पों को पहले ही से यह कह कर भेज दिया था कि वे उसकी पूँछ में लपटे रहें जिससे उसका रंग काला जान पड़े । जव कद्रू ने वहां जाकर दिखाई तो दूर से काला ही रंग दीख पड़ा और विनता ने चुपचाप दासी भाव स्वीकार कर लिया ।)

कैकय सुता सुनत कटुवानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि कांपी । कुवरी दसन जीभ तव चांपी ॥

शब्दार्थ—कैकय सुता=कैकय की पुत्री, कैकयी । कटु=कड़वी, कठोर, अप्रिय । सहमि=डरकर । पसेउ (प्रस्वेद)=पसीना । कदली=केला । दसन (दशन =दांत चांपी=दवाया । दांत तले जीभ दवाना=अपनी वात वनते देख

अर्थ—कैकेयी—मन्थरा की अप्रिय बात सुनते ही डरकर सूख गयी, कुछ वोल न सकी। शरीर में पसीना आ गया और केले की तरह कांपने लगी। यह देख कर कुबरी ने दांतों तले जीभ दवायी।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी॥
कीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि सकठि कुकाठू॥

शव्दार्थ—प्रबोधिसि=समझाया। कुपाठू=वुरा पाठ, वुरी सलाह (शिक्षा)। नवइ=झुके। उकठ=सूखी हुई। कुकाठू=वुरी लकड़ी।

अर्थ—करोड़ों कपट की कहानियां कह-कहकर उसने रानी को खूव समझाया कि धीरज रखो। वुरी शिक्षा देकर उसने कैकेयी को इस प्रकार कड़ा (दृढ़) कर दिया जिस प्रकार सूखी हुई वुरी लकड़ी फिर नहीं झुकती।

फिरा करमु प्रिय लागी कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आंखि नित फरकइ मोरी॥

शव्दार्थ—करमु (कर्म)=भाग्य। फिरा=पलटा खाया। कुचाली=दुष्ट, वुरी वात। बकिहि=वगुली। सराहइ=प्रशंसा करने लगी। मराली=हंसिनी। फुरि=सच। नित=रोज, हमेशा। दहिनि आंख फरकइ=स्त्रीका दाहिना और पुरुष का वायां अंग का फड़कना अशुभ सूचक होता है।

अर्थ—भाग्य ने पलटा खाया और कैकेयी को कुचाल प्रिय लगी (अथवा वह दुष्ट मन्थरा उसे अव प्रिय लगने लगी) और कैकेयी उस वगुली मंथरा को हंसिनी मानकर उसकी प्रशंसा करने लगी। हे मन्थरा सुन, तेरी वात विल्कुल सत्य है, मेरी दाहिनी आंख नित्य फड़का करती है।

दिन प्रति देखहुं राति कुसपनें। कहउं न तोहि मोह बस अपनें॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउं काऊ॥

शव्दार्थ—मोहवस=अज्ञान वश। काह=क्या। सूध=सीधा। दाहिन=अनुकल, मित्र, भला। वाम=प्रतिकूल, शत्रु वुरा। काऊ=कुछ भी।

अर्थ—मैं प्रतिदिन रात को वुरे स्वप्न देखती हूँ, किन्तु अपने अज्ञान वश मैंने तुझसे नहीं कहा। हे सखी, क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है, मैं भला और वुरा (मित्र-शत्रु) कुछ भी नहीं जानती।

दो०—अपने चलत न आजु लगि अनभल काहु क कीन्ह ।
केहि अघ एकहिं वार मोहि दैऊँ दुसह दुख दीन्ह ॥२०॥

शब्दार्थ—चलत=वश चलते, वल भर। लगि=तक। अनभल=वुराई। क=की। अघ=पाप। दैअं=ब्रह्मा, भाग्य। एकहि वार=हठात्, एक वारगी ही।

अर्थ—अपना वश चलते आज तक मैंने कभी किसी का वुरा नहीं किया। किन्तु नहीं मालूम कि ब्रह्माने किस पापसे मुझे एक वारगी यह कठिन दुःख दिया ॥२०॥

नैहर जनमु भरव वरु जाई। जियत न करव सवति सेवकाई ॥
अरिवस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही ॥

शब्दार्थ—नैहर=माता-पिता का घर। जनमु भरव=जीवन विताऊँगी, जिन्दगी काट लूंगी। भरना=विताना, काटना। वरु=वल्कि, वरन, भले ही। जियत=जीते जी। अरिवस=शत्रु के वश। जीव=जीना।

अर्थ—में नैहर जाकर अपनी जिन्दगी भले ही काट लूंगी, किन्तु जीते जी कभी सौत की सेवा नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रख कर जिलाता है, उसके लिये तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।

दीन वचन कह वहु विधि रानी। सुनि कुब्री तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥

शब्दार्थ—ऊना=न्यून, कम, तुच्छ। दूना=दुगना, अधिक।

अर्थ—रानी वहुत प्रकार के दीन वचन कहने लगी, यह सुन कर कुब्री मन्थरा ने स्त्री चरित्र की माया फैलायी। वह वोली—तुम मन में दुःख मान कर ऐसा क्यों कहती हो? तुम्हारा सुख और सौभाग्य दिन दिन दूना होगा।

जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जवतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न वासर नींद न जामिनि ॥

शब्दार्थ—ताका=देखा, चाही। पाइहिं=पायगा। परिपाका=उत्तर काल, पीछे, परिणाम, पूरा, दृढ़। कुमत=वुरी सलाह, वुरा विचार। वासर=दिन। जामिनि=रात।

अर्थ—जिसने आपकी यह वुराई चाही है, वह परिणाम (अन्त) में यही (वुराई रूप) फल पावेगी। हे स्वामिनि! जव से मैंने इस वुरे विचार की वात सुनी है, तव से दिन में न भूख लगती है और न रात में नींद आती है।

पूछेउं गुनिन्ह रेख तिन्ह खांची । भरत भुआल होंहि यह सांची ॥
भामिनि करहु त कहउ उपाऊ । हइ तुम्हरीं सेवा वस राऊ ॥

शब्दार्थ–गुनिन्ह=गुणियों, विशेषज्ञों, झाड़ फूंक करने वालों, ज्योतिषियों। रेख खींची=रेखा खींचकर, निश्चय पूर्वक । भुआल (भूपाल)=राजा । भामिनि= क्रोधित स्त्री ।

अर्थ–मैंने ज्योतिषियों से पूछा, तो उन्होंने कहा कि भरत अवश्य राजा होंगे, यह सत्य है । हे भामिनी ! यदि तुम करो तो मैं एक उपाय बताऊं । राजा तुम्हारी सेवा के वश हैं ।

दो०–परउँ कूप तुअ बचन पर सकौं पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि ॥२१॥

अर्थ–(कैकेयी ने कहा) तेरे कहने से मैं कुएँ में गिर सकती हूँ और अपने पुत्र और पति को भी छोड़ सकती हूँ । तू मेरा भारी दुःख देख कर ही तो कह रही है, फिर अपने भले के लिये उसे मैं क्यों नहीं करूँगी ।२१॥

कुबरी करि कबुली कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हरित त्रिन बलि पसु जैसे ॥

शब्दार्थ–कबुलि = स्वीकार । उर पाहन = हृदय रूपी पत्थर । टेई = धार, तेज किया । लखइ = देखती । निकट= पास का, शीघ्र आने वाला । तृन = घास ।

अर्थ–मन्थरा ने (अपना कहना करने पर) कैकेयी को सब तरह से तैयार करके, कैकेयी के हृदय रूपी पत्थर पर अपनी कपट रूपी छुरी की धार को तेज किया । रानी निकट के दुःख को किस प्रकार नहीं देख रही है जैसे (देवता को) बलि दिया जाने वाला पशु हरी घास चरता है ।

सुनत बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोंहि पाहीं ॥

शब्दार्थ–मृदु = कोमल । अंत = परिणाम । माहुर = जहर । घोरी=घोलकर, मिलाकर । पाहीं = पास, से ।

अर्थ–मन्थरा की बात सुनने में तो कोमल है, परन्तु परिणाम (फल) अत्यन्त कठोर है । दासी मन्थरा कहती है–हे स्वामिनी ! तुमने मुझसे एक बात कही थी, वह तुम्हें याद है या नहीं ?

दुइ वरदान भूप सन थाती । मांगहु आज जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि वनबासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

शब्दार्थ—सन = पास । थाती = धरोहर । जुड़ावहु = ठंढी करो । हुलासू = हर्ष, उत्साह, आनन्द ।

अर्थ—तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर (रखे हुए) हैं । आज उन्हें ही मांग कर अपनी छाती ठंढी करो । पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो और (इस प्रकार) सौत (कौशल्या) के सारे आनन्द को ले लो (धूल में [illegible] दो) ।

भूपति राम सपथ जब करई । तब मांगेहु जेहि वचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निस बीतें । वचनु मोर प्रिय मानेहु जी [illegible]

शब्दार्थ—टरई = टले । अकाजु होइ = काम बिगड़ जायगा । जी = [illegible]

अर्थ—राजा जब श्रीरामचन्द्रजी की सौगन्ध खा लें तब [illegible] व फिर अपने वचन से टल न सकें । यदि आज की रात बीत [illegible] जायगा, मेरी इस बात को प्राणों से भी प्यारी समझो ।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोप गृह [illegible]
काज संवारेहु सजग सब, सहसा जनि [illegible]

शब्दार्थ—कुघात = बुरा दांव । कोप गृह = कोप [illegible] सजग = सावधान होकर । सहसा = यकायक । [illegible] कोप गृह = वह घर जिसमें नाराज होने पर [illegible]

अर्थ—पापिनी (मन्थरा) ने बुरा दांव [illegible] चली जाओ । सब काम सावधान होकर [illegible] करना ॥२२॥

जौं बिधि पुरव मनोरथु काली । करौं तोहि चषपूतरि आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ॥

शव्दार्थ—पुरव = पूरा करेंगे । काली = कल । चषपूतरि = आँखों की पुतली अत्यन्त प्रिय । आली = सखी । गवनी = गयी ।

अर्थ—यदि विधाता ने मेरे मनोरथ को कल पूरा कर दिया तो हे सखी मैं तुझे आंखों की पुतली वना लूंगी । (इस भांति) कैकेयी दासी को वहुत तरह से आदर देकर कोप-भवन में चली गयी ।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी । भुइं भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुरु जामा । बर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥

शव्दार्थ—भुइँ = पृथ्वी । केरी = की । जामा = उगा । दल = पत्ता ।

अर्थ—विपत्ति वीज है, दासी मन्थरा वर्षा ऋतु है और कैकेयी की दुर्वुद्धि पृथ्वी हुई, जिसमें कपट रूपी जल पड़ने से (वह विपत्ति रूपी बीज का) अंकुर उगा; दोनों वर रूपी जिसके दो पत्ते हैं और अन्तिम फल दुःख है ।

कोप समाजु साजि सबु सोई । राजु करति निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहलु होई । यहु कुचालि कछु जान न कोई ॥

शव्दार्थ—विगोई = नष्ट किया । राउर = अन्तःपुर, महल । कोलाहल = धूम शोर ।

अर्थ—कैकेयी क्रोध का सव सामान सज कर (कोप भवन में) जा सोई । राज्य करती हुई उसने अपनी दुर्वुद्धि से सव नष्ट कर दिया । महल और अयोध्या भर में सर्वत्र धूम मची थी, इस कुचाल की खवर किसी को कुछ भी नहीं थी ।

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार ।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरवार ॥२३॥

शव्दार्थ—प्रमुदित = प्रसन्न । चार = आचार, रस्म, रीति । प्रविसहि = घुसते हैं निर्गमहिं = निकलते हैं, वाहर होते हैं । भीर = भीड़ । दरवार = द्वार, राज सभा ।

अर्थ—नगर के सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर मगंलाचार के साज सज रहे हैं । एक अन्दर जाता है तो दूसरा वाहर निकलता है इस प्रकार राजद्वार पर वड़ी भीड़ हो रही है ॥ २३ ॥

वालसखा सुनि हिय हरषाहीं । मिलिदस पांच राम पहिं जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी । पूंछहिं कुसल खेम मृदु वानी ॥

शब्दार्थ—वाल सखा = वचपन के मित्र। आदरहिं = आदर करते हैं। षेम = क्षेम।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के वचपन के मित्र यह समाचार सुनकर हृदय से प्रसन्न होते हैं और दस-पांच एक साथ होकर श्रीरामजी के निकट जाते हैं। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उनका प्रेम पहचान कर उनका आदर करते हैं और कोमल वाणी से कुशल-क्षेम पूछते हैं।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥

शब्दार्थ—सरिस (सदृश) = समान। सीलु = संकोच। निवाहनिहारा = पूरा करने वाला, वनाये रखनेवाला।

अर्थ—वे सव अपने प्रिय सखा की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं और आपस में श्रीरामचन्द्रजी की इस भांति प्रशंसा करते हैं कि-इस संसार में श्रीरामचन्द्रजी के समान शील और स्नेह को निवाहनेवाला और कौन है।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात येहु ओर निबाहू॥

शब्दार्थ—भ्रमहीं = घूमना पड़े, जन्म ले। सियनाहू = सीतापति, श्रीरामचन्द्रजी। नात = सम्वन्ध, नाता, रिश्ता। ओर = अन्त। जोनि (योनि) = पशु और प्राणी आदि जीवों की श्रेणियां, योनियां ८४ लाख हैं।

अर्थ—अपने कर्मों के वश होकर हम जिस-जिस योनि में जन्म लें, वहां-वहां ईश्वर हमें यही दे कि हम दास हों और श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों, और (हमारा उनका) यह नाता अन्त तक निभ जाय।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई॥

शब्दार्थ—सब काहू = सब किसी को। दाहू = जलन, पीड़ा। नीचमते = नीच की बुद्धि में।

अर्थ—नगर भर में सव किसी की ऐसी ही अभिलाषा है, किन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। (सच है) बुरे संग को पाकर कौन नष्ट नहीं हुआ? नीच की बुद्धि में पड़ने से चतुरता रह नहीं जाती।

दो०—सांझ समय सानन्द नृप गयेउ कैकई गेह ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेह ॥२४॥

अर्थ—राजा दशरथ सन्ध्या के समय आनन्दपूर्वक कैकेयी के भवन में गये; मानों स्नेह साक्षात् शरीर धारण कर निष्ठुरता के समीप गया ॥२४॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ । भय वस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बांहबल जाकें । नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥

शब्दार्थ—सकुचेउ = सहम गये, डर गये । अगहुड़ = आगे को । पाऊ = पांव, पैर । सुरपति = देवताओं का स्वामी, इन्द्र । रुख = कृपा दृष्टि । नरपति = राजा ।

अर्थ—कोप भवन का नाम सुनते ही राजा सहम गये । डर के मारे उनके पैर आगे को नहीं पड़ते । देवताओं का राजा इन्द्र जिसकी भुजाओं के बलपर बसता है और समस्त राजा लोग जिसकी कृपा दृष्टि को अपने ऊपर बनाये रखते हैं—

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥

शब्दार्थ—रिस = क्रोध । सूल (शूल) = त्रिशूल, भाला । कुलिस (श) = वज्र । असि = तलवार । अँगवनिहारे = सहने वाले । ते = उनको । रतिनाथ = रति के पति कामदेव । सुमन=पुष्प, फूल । सर=वाण ।

अर्थ—वही दशरथजी स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये । कामदेव का प्रताप और महिमा देखिये । जो त्रिशूल, वज्र और तलवार की (चोट को) सह लेने वाले हैं उन्ही राजा दशरथ को कामदेव ने पुष्पवाण से मारा ।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ । देखि दसा दुखु दारुन भयेऊ ॥
भूमि सयन पट मोट पुराना । दिये डारि तन भूषन नाना ॥

शब्दार्थ—सभय = डरते हुए । नरेसु = राजा । प्रिया = स्त्री, कैकेयी । दारुन = (दारुण) भयानक, कठोर । सयन = सोना । पट = वस्त्र । दिये डारि = उतार डाले हैं ।

अर्थ—राजा डरते-डरते कैकेयी के निकट गये । उसकी दशा देख उन्हें भयानक कष्ट हुआ । वह पृथ्वी पर सोयी हुई है, पुराना मोटा वस्त्र पहने हुई है और उसने शरीर के तरह-तरह के गहनों को उतार डाला है ।

कुमतिहि कसि कुवेषता फावी । अनअहिवातुसूच जनु भावी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु वानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥

शब्दार्थ—कुवेषता = बुरा वेष। फाबी = शोभा देना। अनअहिवात = विधवापन। सूच=सूचना। भावी=आगे आने वाली, होने वाली। हेतु=कारण। रिसानी=क्रोध किया, रूठी।

अर्थ—उस दुर्बुद्धि को वह बुरा वेष किस प्रकार शोभा दे रहा है मानों भावी विधवापन की सूचना दे रहा है। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से कहते हैं, कि हे प्राण प्यारी ! किस कारण से तुमने क्रोध किया है ?

छंद—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि विषम भांति निहारई॥
दोउ वासना रसना दसन वर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता बस काम कौतुक लेखई॥

शब्दार्थ—परसत = छूते हैं, छूने पर। पानि (पाणि) = हाथ। निवारई = रोकती है, हटाती है। सरोष = क्रोध भरी। भुअंग = सर्प। भुअंग-भागिनि = सर्पिणी, नागिन। विषम = टेढ़ी, क्रूर। निहारई = देखती है। वासना = वरदान, इच्छा। रसना = जीभ। दसन = दांत। ठाहरु = स्थान। मरम ठाहरु = मर्मस्थल, हृदय। भवितव्यता= होनहार। कौतुक = खेल, क्रीड़ा। लेखई = समझते हैं, मानते हैं। वर = वरदान।

अर्थ—हे रानी ! तुमने किस कारण से क्रोध किया है ? यह कहते हुए राजा उसे हाथ से छूते हैं और वह उनके हाथ को हटा देती है तथा क्रोध भरी नागिन की तरह टेढ़ी दृष्टि से उनको देखती है। दोनों वरदान की वासनाएँ तो उस (कैकेयी रूपी) नागिन की दो जीभें हैं, दोनों वरदान दांत हैं और वह काटने के लिए मर्मस्थल को देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहार के वश होकर इसे कामदेव का खेल समझ रहे हैं।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥२५॥

शब्दार्थ—सुमुखि = सुन्दर मुखवाली। सुलोचनि = सुन्दर नेत्रवाली। पिक= कोयल। गजगामिनी = हाथी के समान चलनेवाली। कर = का।

अर्थ—राजा बार-बार कहते हैं कि हे सुन्दर मुखवाली, सुन्दर नेत्रवाली, कोयल जैसी (मधुर) बोलनेवाली और हाथी के समान चाल चलनेवाली ! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुनाओ॥२५॥

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहिं करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥

शब्दार्थ—अनहित=बुराई, अनिष्ट। केइ=किसने । रंकहि=कंगाल, दरिद्र। निकासउँ=निकाल दूँ ।

अर्थ—हे प्रिये ! तेरा बुरा किसने किया ? किसके दो सिर हैं ? और किसको यमराज लेना चाहते हैं ? कहो, किस कंगाल को राजा बना दूँ अथवा किस राजा को देश से निकाल दूँ ?

सकौं तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मनु तव आनन चंद चकोरू ॥

शब्दार्थ—अरि=शत्रु । अमरउ=देवता को भी । काह=क्या हैं, किस गिनती में हैं । कीट=कीड़ा-मकोड़ा । बपुरे=बेचारे। बरोरू (बर+उरु)=सुन्दर जंघों वाली। आनन=मुख । चकोरू=चकोर पक्षी जो चन्द्रमा का बड़ा प्रेमी होता है ।

अर्थ—तेरा शत्रु यदि देवता भी हो, तो उसे मैं मार सकता हूँ । कीड़े-मकोड़े के समान बेचारे स्त्री-पुरुष क्या हैं ? हे सुन्दर जंघोवाली ! तुम तो मेरे स्वभाव को जानती ही हो कि मेरा मन तुम्हारे मुख रूपी चन्द्रमा का सदा चकोर बना रहता है ।

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें । परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
जौं कछु कहउँ कपटुकरि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥

शब्दार्थ—सरबसु=सब कुछ, सारी सम्पत्ति । परिजन=कुटुम्ब के लोग । बस=अधीन ।

अर्थ—हे प्यारी ! मेरे प्राण, पुत्र, समस्त सम्पत्ति, कुटुम्बी और प्रजा को सभी तेरे वश में हैं । यदि मैं तुझसे कुछ भी कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनि ! मुझे रामचन्द्र की सौ सौगन्ध है ।

बिहसि मांगु मनभावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समझि जिय देखू । बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू ॥

शब्दार्थ—गाता (गात्र)=शरीर । घरी-कुघरी=अच्छे बुरे अवसर । परिहरहि=छोड़ो ।

अर्थ—जो बात तेरे मन को अच्छी लगे वह प्रसन्नतापूर्वक (हँसकर) माँग

ले और सुन्दर शरीर को आभूषणों से सजा। मन में समय और असमय का तो विचार कर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेष को हटा दे।

दो०—यह सुनि मन गुनिसपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥२६॥

शब्दार्थ—गुनि=समझकर। किरातिनि=भीलनी।

अर्थ—यह सुनकर और श्रीरामचन्द्रजी की सौगन्ध को बड़ा मानकर वह मन्द बुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी जैसे कोई भीलनी मृगा के लिए फन्दा तैयार करती हो ॥२६॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
भामिनि भयेउतोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा ॥

शब्दार्थ—सुहृद=मित्र, हितू। पुलकि=गद्‌गद होकर। मंजुल=सुन्दर।

अर्थ—कैकेयी को अपना हितू समझ कर राजा प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणी से कहने लगे, कि हे भामिनी! तेरी मन चाही हो गयी; अयोध्या नगर में घर-घर आनन्द बधावे बज रहे हैं।

रामहि देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयेउ पाक बरतोरू ॥

शब्दार्थ—दलकि=दहल, कांप। पाक=पका हुआ। बरतोरू=बलतोड़, बाल टूटने से जो फोड़ा हो जाता है वह अत्यन्त पीड़ा पहुँचाता है।

अर्थ—मैं कल राम को युवराज-पद देने जा रहा हूँ, इसलिए हे सुन्दर नेत्रों वाली तुम अब मंगल साज सजो। यह सुनते ही कैकेयी का कठोर हृदय कांप उठा, मानो पका हुआ बलतोड़ फोड़ा छू गया हो।

ऐसिउ पीर बिहसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥

शब्दार्थ—पीर=पीड़ा। तेइ=उसने। गोई=छिपा लिया। मनि=शिरोमणि।

अर्थ—ऐसी पीड़ा को भी उसने मुस्कुरा कर छिपा लिया, जिस प्रकार चोर की स्त्री प्रकट रूप से नहीं रोती। राजा ने उसकी इस कपट भरी चतुरता को नहीं देखा, क्योंकि उसको करोड़ों दुष्टों की शिरोमणि गुरु मन्थरा ने अच्छी तरह पढ़ा दिया था।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुंह मोरी ॥

शब्दार्थ—निपुन=निपुण, चतुर । जलनिधि=समुद्र । अवगाहू=अथाह । बहो फिर । मोरी=मोड़कर ।

अर्थ—राजा यद्यपि नीति में निपुण हैं, तथापि स्त्री का चरित्र रूपी समुद्र अ होता है । कैकेयी फिर कपट पूर्ण प्रेम को बढ़ाकर आंख और मुख को मोड़ हँसती हुई बोली—

दो०—मांगु मांगु पै कहहु पिय कबहुं न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

शब्दार्थ—परन्तु ।

अर्थ—हे स्वामी ! आप तो बार-बार मांगो, मांगो कहा करते हैं, परन्तु क कुछ देते हैं और न लेते हैं । आपने तो दो वरदान देने को कहा था अब उनके मि में भी सन्देह ही है ॥२७॥

जानेउ मरमु राउ हंसि कहई । तुम्हहि कोहाव परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न मांगेहु काऊ । बिसरि गयेउ मोहिं भोर सुभाऊ ॥

शब्दार्थ—मरमु=मर्म, भेद, मतलब । कोहाव=रूठना, मान करना । था धरोहर । काऊ=कभी । बिसरि=भूल । भोर=भोला, सीधा, भूलनेवाला ।

अर्थ—राजा ने हँसकर कहा—मैं तुम्हारा मतलब अब समझ गया, तुम्हें रूठ बहुत ही प्रिय है । तुमने उन वरों को धरोहर रखकर कभी मांगा नहीं और मैं उ बात को भूल ही गया क्योंकि मेरा स्वभाव ही ऐसा है (भूल जाने वाला है)

झूठेहुँ हमहि दोसु जनि देहू । दुइ कै चारि मांगि किन लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु बरु बचनु न जाई ॥

शब्दार्थ—कै=का । चारि=चार । किन=क्यों नहीं, भले ही ।

अर्थ—मुझे झूठ-मूठ (व्यर्थ ही) दोष मत दो, दो के बदले चार भले ही म लो । रघुवंश की यह रीति हमेशा से चली आती है कि प्राण जायँ किन्तु बात न जाने पाती ।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये । बेद पुरान बिदित मुनि गाये ॥

शब्दार्थ—पुंजा=ढेर, समूह। गुंजा=घुंघची। सुकृत=पुण्य, सत्कर्म। विदित=प्रसिद्ध। गाये=कहे।

अर्थ—झूठ के समान पापों का समूह कोई दूसरा नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियां मिलकर कभी पर्वत के समान हो सकती हैं? वेद और पुराणों में यह प्रसिद्ध है और मुनियों ने भी कहा है कि सत्य ही सब सुन्दर पुण्यों (सत्कर्मों) की जड़ है।

तेहिपर राम सपथ करिआई। सुकृत-सनेह-अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति हंसि बोली। कुमत-कुबिहंग-कुलह जनु खोली॥

शब्दार्थ—करि आई=कर चुका, खा चुका। अवधि=सीमा। कुविहंग=बुरा (दुष्ट) पक्षी। कुलह=आँखों पर की टोपी।

अर्थ—उस पर मैं राम की सौगन्ध खा चुका। श्रीरामचन्द्र मेरे पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की करा कर, वह दुर्बुद्धि कैकेयी हँस कर बोली, मानो उसने बुरे विचार रूपी दुष्ट पक्षी (शिकार करने के लिए छोड़ने को) की आंखों की पट्टी खोल दी।

दो०—भूप मनोरथ सुभग बन सुख सु-बिहंग-समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति, बचन भयंकर बाजु॥२८॥

शब्दार्थ—सुभग=सुन्दर। समाजु=दल, समूह। बाजु=बाज (शिकारी) पक्षी।

अर्थ—राजा का मनोरथ सुन्दर वन है, सुख सुन्दर पक्षियों का दल है। उस (पक्षि समूह) पर कैकेयी रूपी भीलनी मानो वचन रूपी भयानक बाज छोड़ना चाहती है। ॥२८॥

सुनहु प्रान प्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
मागउं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥

शब्दार्थ—भावत जी का=मन को अच्छी लगने वाली बात, मन चाही बात। टीका=तिलक, राज तिलक। पुरवहु=पूरा कीजिये। मोरी=मेरा।

अर्थ—कैकेयी बोली हे प्राण प्रिय! मेरे जी को अच्छी लगनेवाली बात सुनिये, एक वर में तो आप भरत को राज्याभिषेक कीजिये और दूसरा वर हाथ जोड़ कर मांगती हूँ, हे नाथ! मेरी इस इच्छा को भी आप पूरा करें—

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

शब्दार्थ—तापस = तपस्वी । उदासी = वैरागी, त्यागी, सांसारिक सुखों से विमुख बरिस = वर्ष । ससि-कर = चन्द्रमा की किरण (रोशनी) कोकू = चकवा ।

अर्थ—(वह यह है कि) तपस्वी के वेष में सांसारिक समस्त सुखों से विरक्त मुनियों के समान चौदह वर्ष तक रामचन्द्र वन में रहें । (कैकेयी के) यह कोमल वचन सुनते ही राजा दशरथ जी के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के छूते ही चकवा व्याकुल हो उठता है ।

गयेउ सहमि नहिं कछु कहिआवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयेउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥

शब्दार्थ—कहि आवा = कहते बना । सचान = बाज पक्षी । लावा = बटेर पक्षी । बिबरन (विवरण) = रंग उड़ना, कान्तिहीन । दामिनि = बिजली । तालू = ताड़ का पेड़ ।

अर्थ—राजा डर गये, उनसे कुछ कहते नहीं बना; मानों बाज वन में बटेर पर झपटा हो । राजा के मुंह का रंग बिलकुल उड़ गया, मानो बिजली ने ताड़ के पेड़ को मारा हो ।

माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुर-तरु-फूला । फरत करिनि जिमिहतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेई । दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ॥

शब्दार्थ—तनुधरि = शरीर धारण कर । सोचु लाग = सोचने लगा । सोचन = सोच, चिन्ता । करिनि = हथिनी । उजारि = उजाड़ । नेई = नींव ।

अर्थ—सिर पर हाथ रखकर और दोनों आँखें वन्द कर राजा दशरथ इस प्रकार सोच करने लगे मानो सोच (चिन्ता) ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो । (वे सोचते हैं कि) मेरा मनोरथ रूपी कल्प वृक्ष फूल चुका था और वह फलने ही वाला था कि (कैकेयी रूपी) हथिनी ने उसे जड़ से उखाड़ फेंका । कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया । इसने अचल विपत्ति की नींव डाल दी ।

दो०—कवनेउ अवसर का भयेउ, गयेउ नारि विश्वास ।
जोग सिद्धि-फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥२९॥

अर्थ—किस अवसर पर क्या हो गया (क्या होना था और क्या हो गया) स्त्री

का विश्वास मेरा वैसे ही नाश हुआ जैसे योग की सिद्धि का फल मिलते समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है ॥२९॥

एहि विधि राउ मनहिं मनझांखा। देखि कुभांति कुमति मनु मांखा ॥
भरत कि राउर पूत न होंहीं । आनेहु मोल वेसाहि कि मोहीं ॥

शब्दार्थ—झांखा = पछताने लगे, हाथ मलने लगे । कुभांति = बुरा ढंग (रंग), बदला हुआ रूप । मांखा = क्रोध किया, क्रोधित हुई । होहीं = है। वेसाहि = खरीदा ।

अर्थ—राजा इस प्रकार मन-ही -मन पश्चाताप करने लगे । उनका यह बदला हुआ रूप (कुढंग) देखकर दुर्वुद्धि कैकेयी मन में अत्यन्त कुपित हुई । वह बोली— क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या मुझे आप मोल खरीद लाये हैं ? अर्थात् मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ ?

जो सुनि सर असलाग तुम्हारे । काहे न बोलहु वचन सँभारे ॥
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं । सत्य संध तुम्ह रघुकुल माहीं ॥

शब्दार्थ—सर = वाण। अरु = अब । सत्य संध = प्रतिज्ञा पूरी करनेवाले, सच्चा ।

अर्थ—(कि) जो वात सुनते ही आपको वाण ऐसी लगी, तो फिर आप सम्हाल कर (सोच-समझ कर) वात क्यों नहीं बोलते ? अव उत्तर दो या नहीं (इनकार) कर दो । तुम तो रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हो (न) ।

देन कहेहु अव जनि वर देहू । तजहु सत्य जग अपजस लेहू ॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि मांगि चवेना ॥

शब्दार्थ—जनि=नहीं, मत । सराहि=प्रशंसा करके । जानेहि=समझा था ।

अर्थ—वर देने को कहा था, अव मत दो । सत्य को छोड़ दो और संसार में कलंक लो (भागी वनो) । सत्य की तो वड़ी प्रशंसा करके वर देने को कहा था और समझा था कि चवेना ही मांग लेगी ।

सिवि दधीचि वलि जोकछु भाषा । तनु धनु तजेउ वचनुपनुराखा ॥
अति कटु-वचन कहति कैकेई । मानहुं लोन जरे पर देई ॥

शब्दार्थ—भाषा=कहा । पनु=प्रण, प्रतिज्ञा । कटु=कड़वी, कठोर । लोन=नमक । जले पर नमक देना (छिड़कना)=दुखी को और दुखी करना,

अर्थ—शिवि, दधीचि, वलि (आदि राजाओं ने) जो कुछ कहा, उन्होंने शरीर

और धन दोनों को छोड़ दिया किन्तु बात की प्रतिज्ञा को रखा। (इस प्रकार) कैकेयी अत्यन्त कड़वी बात कह रही है मानों जले पर नमक छिड़क रही है।

नोट–राजा शिबि–ये काशी के राजा बड़े ही दयालु और धर्मात्मा थे। एक बार इन्होंने १०० यज्ञ करने का निश्चय किया। जब ये १२ यज्ञ पूरा कर चुके, तब देवराज इन्द्र को भय हुआ कि यह कहीं मेरे ही पद का अधिकारी न बन जाये। अतः वे अग्नि को कबूतर और स्वयं बाज बन यज्ञ में विघ्न डालने गये। कबूतर 'रक्षा करो-रक्षा करो' कहता हुआ राजा की गोद में जा गिरा। बाज भी पीछे ही लगा आया और कहा,–राजन्! यह मेरा आहार है; आप इसे मुझे दे दीजिये नहीं तो मैं भूखा मर जाऊँगा और आपको पाप लगेगा। इसपर राजा ने शरणागत के बदले अपने शरीर का मांस देना स्वीकार किया किन्तु कबूतर को बाज के हवाले नहीं किया। राजा कबूतर को तराजू के एक पलड़े पर रख दूसरे पर अपना मांस काट काट कर रखने लगे, परन्तु कबूतर का पलड़ा बराबर भारी होता गया। इस पर वे स्वयं पलड़े पर जा बैठे। बस, उसी समय विष्णु भगवान ने प्रकट होकर उनकी बांह पकड़ ली और उन्हें अपने लोक को भेज दिया।

राजर्षि दधीचि–इन्द्र ने जब त्वष्टा के पुत्र विश्व रूप का निधन किया, तब त्वष्टा ने क्रोधित हो वृत्र नामक असुर को उत्पन्न किया। उसमें अपार बल-विक्रम था। वह देवताओं को युद्ध में हरा ने और नाना प्रकार से प्रपीड़ित करने लगा। देवता इकट्ठा हो नारायण के पास जा उनकी स्तुति करने लगे। नारायण ने दर्शन दिया और कहा–तुम लोग घबराओ मत। मैं एक युक्ति बताता हूँ जिसके अनुकूल कार्य करने से तुम उस असुर को मार सकोगे। दधीचि मुनि बड़े तपस्वी और धर्मात्मा पुरुष हैं। वे शुद्ध और निर्विकार ब्रह्म को जान चुके हैं। उनसे उनका शरीर मांगो; और जब वे अपना शरीर दे दें, तब विश्वकर्मा उनकी हड्डी से वज्र नामक एक शस्त्र बना देंगे, जिससे तुम वृत्रासुर का शिरश्छेदन करने में सर्वथा समर्थ हो सकोगे। देवताओं ने वैसा ही किया और दधीचि मुनि की हड्डी से बने वज्र द्वारा वृत्रासुर मारा गया।

बलि–यह प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र थे। यह असुर कुल में उत्पन्न होकर भी बड़े ही धर्मात्मा और दानी थे। इनके अतुल ऐश्वर्य और प्रबल प्रताप के आगे इन्द्र का रंग फीका पड़ गया। इन्द्र भयभीत हुए कि यह कहीं मेरे ही

पद को न ले ले । अतः सब देवताओं को साथ ले नारायण की शरण में जा स्तुति करने लगे । नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—हे देवताओ, मैं कश्यप की स्त्री अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर शीघ्र ही तुम्हारा कष्ट दूर करूँगा । नारायण ने बौना रूप में जन्म ले बलि की यज्ञशाला में जा तीन पग भूमि मांगी । बलि और अधिक देना चाहता था, किन्तु जब उन्होंने तीन ही पग भूमि लेने का हठ किया तब उसने उन्हें तीन पग भूमि संकल्प कर दी । इसके बाद तो भगवान वामन से विराट् हो गये । दो पग में तो उनका सारा साम्राज्य नाप लिये और तीसरे के लिए स्थान ही न रहा; तब बलि ने अपना शरीर नपवा दिया । इस प्रकार बलि से समस्त पृथ्वी ले, इन्द्र को देकर, भगवान ने उसे पाताल का राजा बनाया और आप रोज उसे इसी रूप में दर्शन देने का वचन दे अन्तर्द्धान हो गये ।

दो०—धरम-धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राय ।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहिं कुठाय ॥३०॥

शब्दार्थ—धुरंधर = धुरी को धारण करने वाला, भार उठाने वाला । उघारे = खोला । उसास = लम्बी सांस । कुठाय = बुरा स्थान । असि = इस प्रकार ।

अर्थ—धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धर कर आंखें खोलीं और सिर धुनकर तथा लम्बी सांस लेकर कहा कि इसने इस प्रकार मुझे कुठौर मारा ॥३०॥

आगे दीखि जरति रिस भारी । मनहु रोष तरवारि उघारी ॥
मूठ कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरी सान बनाई ॥

शब्दार्थ—रिसि = क्रोध । रोष = क्रोध । उघारी = नंगा, म्यान से बाहर । बनाई = अच्छी तरह । सान = सिल्ली, जिस पर अस्त्र तेज किये जाते हैं ।

अर्थ—राजा ने कैकेयी को सामने ही अत्यन्त क्रोध से जलते हुए देखा, मानों क्रोध रूपी नंगी तलवार हो । उसकी (तलवार की) मूठ तो कुबुद्धि है, निठुरता धार है और वह कुबरी रूपी सान पर अच्छी तरह तेज की हुई है ।

लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीव नु लेइहि मोरा ॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती । बानी सविनय तासु सोहाती ॥

शब्दार्थ—लखी = देखा । महीप = राजा । छाती = हृदय । बानी = वाणी, बात । सविनय = नम्रता के साथ । सोहाती = अच्छा लगनेवाली ।

अर्थ—राजा ने उसे अत्यन्त भयानक और कठोर देखा और सोचा कि क्य यह सचमुच ही मेरा प्राण लेगी ? राजा अपना हृदय कड़ा कर नम्रता पूर्वक उं अच्छी लगने वाली वात वोले—

प्रिया वचन कस कहसि कुभांती । भीरु प्रतीति प्रीति करि हांती ॥
मोरें भरत राम दुइ आंखी । सत्य कहउं करि संकर साखी ॥

शव्दार्थ—हांती = नष्ट, दूर । संकर = शंकरजी । साखी = साक्षी, गवाह ।

अर्थ—हे प्यारी ! डर, विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे वुरे वचन किस प्रकार कह रही हो । मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आंखें (एक समान) हैं, यह मैं शंकरजी को साक्षी कर सत्य कह रहा हूँ ।

अवसि दूत मैं पठउब प्राता । ऐहहिं बेगिसुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई । देउं भरत कहँ राजु बजाई ॥

शव्दार्थ—दोउ भ्राता = भरत और शत्रुघ्न । सोधि = खोज, निश्चय कर ।

अर्थ—मैं सवेरा होते ही अवश्य दूत भेजूंगा । दोनों भाई (मेरा बुलावा) सुनते ही शीघ्र आ जायेंगे । फिर शुभ दिन निश्चय कर, सब तैयारी करके मैं डंका वजा कर भरत को राज्य दे दूंगा ।

दो०—लोभु न रामहिं राजु कर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं वड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ—राम को राज्य का (तनिक भी) लोभ नहीं है और उसका प्रेम भरत पर बहुत है । मैं तो वड़े छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था ।

राम-सपथ-सतकहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥
मैं सव कीन्ह तोहि बिनु पूछे । तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे ॥

शव्दार्थ—सत = सौ । काऊ = कभी । छूछे = खाली, व्यर्थ ।

अर्थ—मैं रामचन्द्र की सौ सौगन्ध खाकर स्वभाव से ही (छल-कपट से नहीं) कहता हूँ, कि राम की माता ने मुझ से कभी कुछ नहीं कहा । मैंने तुझ से विना पूछे ही यह सव किया, इसी से मेरा मनोरथ खाली गया ।

रिस परिहरु अब मंगल साजू । कछु दिन गये भरत जुवराजू ॥
एकहि वात मोहिं दुख लागा । वर दूसर असमंजस मांगा ॥

अर्थ—अव क्रोध छोड़ दो और मंगल साज सजो, कुछ ही दिनों वाद भरत

युवराज हो जायेंगे। किन्तु तुम्हारी एक वात का मुझे अत्यन्त दुःख है, कि दूसरा वर तुमने वड़े ही असमंजस का मांगा है।

अजहूँ हृदय जरत तेहि आंचा । रिस परिहासिकि सांचेहु सांचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सवकोउ कहइ राम सुठि साधू ॥

शब्दार्थ—आंचा = गर्मी, ताप। कि = अथवा। सुठि = सुन्दर, अच्छा।

अर्थ—उसकी आंच से मेरा हृदय अभीतक जल रहा है। तुम्हारा यह हँसी का क्रोध है या सचमुच ही सत्य है? क्रोध छोड़ कर रामचन्द्र का अपराध तो वताओ; राम को तो सभी सुन्दर साधु पुरुष कहते हैं।

तुहूं सराहसि करसि सनेहू । अव सुनि मोहि भयेउ संदेहू ॥
जासु सुभाऊ अरिहिं अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥

अर्थ—तूभी तो उनकी प्रशंसा करती तथा उनपर स्नेह करती है, किन्तु अव तुम्हारी वातें सुनकर मुझे सन्देह हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल है, वह माता के प्रतिकूल कार्य कैसे कर सकता है।

दो०—प्रिया हास रिस परिहरिहि मांगु विचारि विवेकु ।
जेहि देखेउं अव नयनभरि भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

शब्दार्थ—विवेक = भले-वुरे का ज्ञान। जेहि = जिससे।

अर्थ—हे प्यारी! यह हँसी का क्रोध छोड़ कर विवेक पूर्ण सोच समझ कर (वर) मांगो; जिससे मैं भी अव भरत का राजतिलक आंख भर देख सकूं।

जिअइ मीन वरु वारि विहीना । मनि विनु फनिक जिअइ दुख दीना ॥
कहउं सुभाउ न छलमन माहीं । जीवन मोर राम विनु नाहीं ॥

शब्दार्थ—मीन = मछली। वारि = जल। विहीना = विना। मनि = मणि। फनिक = सर्प, सांप। वरु = चाहे, भले ही।

अर्थ—मछली विना जल के चाहे जीती रहे और सांप भी विना मणि के भले ही दुखी और दीन होकर जीता रहे, किन्तु मैं निष्कपट मन से और स्वभाव से कह रहा हूँ कि मेरा जीना राम के विना नहीं हो सकता।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना । जीवन राम-दरस-आधीना ॥
सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई । मनहुं अनल आहुति घृत परई ॥

शब्दार्थ—प्रवीना = चतुर । अनल = आग । आहुति = हवन, हवन में छोड़ने की सामग्री ।

अर्थ—हे चतुर प्रिये ! तुम अपने हृदय में विचार कर देख लो, मेरा जीवन राम के दर्शन के ही अधीन है । यह कोमल वचन सुन कर वह दुर्बुद्धि अत्यन्त जल (और भी क्रोधित हो) रही है । मानों अग्नि में घी की आहुति पड़ रही है ।

कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहां न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥

शब्दार्थ—किन = क्यों नहीं । माया = धोखा-धड़ी, चाल बाजी । प्रपंच = ढोंग, बखेड़ा ।

अर्थ—कैकेयी कहती है कि—तुम करोड़ों उपाय क्यों न करो, तुम्हारी माया यहां लगने वाली नहीं । दोनों वरदान दो या नहीं करके कलंक लो, मुझे बहुत प्रपंच अच्छा नहीं लगता ।

राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहि देउ करि साका ॥

शब्दार्थ—सयाने = चतुर । ताका = सोचा ।

अर्थ—राम साधु हैं और आप चतुर साधु हैं तथा राम की माता भी अच्छी हैं; मैंने सब को पहचान लिया । कौशल्या ने जैसी मेरी भलाई सोची है, वैसा ही फल मैं उन्हें साका करके दूंगी ।

दो०—होत प्रात मुनिवेष धरि जौं न राम बन जाहिं ।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिय मनमाहिं ॥३३॥

अर्थ—सवेरा होते ही मुनि का वेश धारण कर यदि राम वन को नहीं जाते, तो हे राजन् ! आप अपने मनमें यह निश्चय समझ लें कि मेरा मरण और आपको कलंक दोनों साथ ही होंगे ॥३३॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुं रोष तरंगिनी बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥

शब्दार्थ—तरंगिनि = नदी । पहार = पहाड़, पर्वत । जोई = देखी ।

अर्थ—ऐसा कह कर वह दुष्ट कैकेयी उठ खड़ी हुई, मानो क्रोध की नदी उमड़

र्या हो। वह नदी पाप के पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी हुई है, जिसे देखे नहीं बनता।

दोउबर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा॥
ढाहत भूप रूप तरुमूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥

शब्दार्थ—कूल = किनारा। भवँर = पानी का चक्कर। ढाहत = गिराती है। बारिधि = समुद्र। अनुकूला = ओर, तरफ। प्रचारा = व्यापकता, प्रेरणा।

अर्थ—दोनों वरदान तो उसके दोनों किनारे हैं और (कैकेयी का) कठिन हठ उसकी धारा है तथा कुबरी की बातों की प्रेरणा भवँर है; वह (क्रोध रूपी नदी) राजा रूपी वृक्ष को जड़ से नष्ट करती हुई विपत्ति रूपी समुद्र की ओर चली जाती है।

लखी नरेस बात सब सांची। तिय मिसु मीच सीस पर नांची॥
गहिपद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिन-कर-कुल होसि कुठारी॥

शब्दार्थ—मिसु = बहाने। मीच = मृत्यु, मौत। जनि = नहीं, मत। दिनकर कुल = सूर्य वंश। कुठारी = कुल्हाड़ी।

अर्थ—राजा ने देखा कि (इसकी) सब बातें सत्य हैं और स्त्री के बहाने मृत्यु सिर पर नाच रही है। तब उन्होंने चरण पकड़ कर उसे बैठाया और कहा कि, सूर्य वंश (रूपी वृक्ष) के लिये कुल्हाड़ी न बन।

मांगु मांथ अबहीं देउँ तोहीं। राम बिरह जनि मारसि मोहीं॥
राखु राम कहुं जेहि तेहि भांती। नाहित जरिहि जनम भरि छाती॥

अर्थ—मेरा सिर मांग, मैं तुझे अभी दे दूं; किन्तु राम के वियोग में मुझे मत मार। जिस किस प्रकार से हो राम को (अयोध्या में) रख ले, नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलती रहेगी।

दो०—देखी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥३४॥

शब्दार्थ—ब्याधि = रोग। असाधि = असाध्य, अच्छा न होने वाला।

अर्थ—राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त दुःख पूर्ण वचनों से हा राम! हा राम! हा रघुनाथ! कहते हुए सिर पीट कर पृथ्वी पर गिर पड़े॥३४॥

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुं निपाता ॥
कंठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीन बिनु पानी ॥

शब्दार्थ–सिथिल (शिथिल) = सुस्त, ढीला । गाता = शरीर । नियाता = गि
दिया, नष्ट कर दिया । पाठीन = एक मछली ।

अर्थ–राजा व्याकुल हो गये, उनका समस्त शरीर सुस्त पड़ गया, मानो हथि
ने कल्प वृक्ष को नष्ट कर दिया हो । गला सूख गया , मुंह से बात नहीं निकल
मानो पानी के बिना पाठीन नामक मछली दुखी हो गयी हो (तड़प रही हो)

पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुँ घाय महुँ माहुर देई ॥
जौं अंतहुं अस करतब रहेऊ । मांगु मांगु तुम्ह केहि बलकहेऊ ॥

शब्दार्थ–घाय = घाव । महुँ = में । माहुर = विष, जहर । अन्तहु = अन्त में

अर्थ–फिर कैकेयी कड़वे और कठोर वचन कहने लगी, मानो घाव में ज
भर रही हो । यदि अन्त में तुम्हें ऐसा ही करना था, तो तुमने 'मांग, मांग' कि
बल पर कहा था ?

दुइ कि होइ एक समय भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ॥

शब्दार्थ–ठठाइ = ठहाका मार कर, जोर से । कृपनाई = कृपणता, कंजूसी
षेम (क्षेम) कुसल = कल्याण, क्षेम = कुशल । रौताई = स्वामित्व, युद्ध ।

अर्थ–हे राजन् ! ठहाका मार कर हँसना और गाल भी फुलाये रखना क्या
ये दोनों कार्य एक ही साथ हो सकते हैं ? दानी भी कहलाना और कंजूसी भी करना !
क्या स्वामित्व में भी क्षेम-कुशल रह सकती है (स्वामी अर्थात् मालिक हर हालत
में निन्दा और शत्रुता का पात्र बना रहता है) ? अथवा युद्ध में कभी भी क्षेम-
कुशल रह सकती है (हर हालत में चोट खानी ही पड़ेगी) ?

छांड़हु वचन कि धीरज धरहू । जनि अबला जिमि करुना करहूं ॥
तनुतियतनयधाम धनु धरनी । सत्यसंध कहँ तृन सम बरनी ॥

शब्दार्थ–अबला = स्त्री । करुना = विलाप, रोना-पीटना । तृन सम = अत्यन्त
तुच्छ । बरनी = कहा गया । वचन = प्रण, प्रतिज्ञा ।

अर्थ–या तो बात को छोड़ दो या धीरज धरो । स्त्री के समान विलाप मत

करो । शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी ये सब सत्य प्रतिज्ञ के लिये अत्यन्त तुच्छ कहे गये हैं ।

दो०—मरम वचन सुनि राउ कह कहु कछु दोष न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर ॥३५॥

शब्दार्थ—मरम = चुभने वाला, मर्म भेदी । पिसाच (पिशाच) = भूत । काल = मृत्यु ।

अर्थ—कैकेयी के हृदय विदारक वचन सुनकर राजा ने कहा कि इसमें तेरा कुछ दोष नहीं है । मेरा काल भूत होकर तुझे लग गया है और वही तुझसे यह सब कहला रहा है ॥३५॥

चहत न भरत भुपतिहि भोरे । विधि बस कुमति बसीजियतोरे ॥
सो सब मोर पाप परिनामू । भयेउ कुठाहर जेहि विधि वामू ॥

शब्दार्थ—भूपतहि = राजपद । भोरे = भूल कर भी । विधि = होनहार । कुठाहर = कुसमय, अनुपयुक्त अवसर । वामू = उल्टा, विपरीत ।

अर्थ—भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते । होनहार वश तेरे ही हृदय में यह दुर्बुद्धि आ बसी है । यह सब मेरे पापों का फल है, जिसके कारण कुसमय में ब्रह्मा टेढ़ा (उल्टा) हो गया ।

सुबसबसिंहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम-प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकलसेवकाई । होइहि तिहु पुर रामबड़ाई ॥

शब्दार्थ—सुबस = स्वेच्छा से, अपने आप । प्रभुताई = आधिपत्य, राजत्व । तिहुँ पुर = तीनों लोग, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ।

अर्थ—(तुम्हारी उजाड़ी हुई) सुन्दर अयोध्या नगरी स्वेच्छा से फिर बस जायगी और समस्त गुणों के घर श्रीरामचन्द्रजी का उस पर आधिपत्य होगा । सभी भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोक में राम की बड़ाई होगी ।

तोर कलंक मोर पछिताऊ । मुयेहु न मिटिहिनजाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहँ गोई ॥

शब्दार्थ—मुयेहु = मरने पर भी । काऊ = किसी प्रकार । गोई = छिपा कर ।

अर्थ—किन्तु तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा और

जवलगि जिअउं कहउँ करजोरी । तवलगि जनि कछु कहसि वहोरी ॥
फिर पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारू लागी ॥

शब्दार्थ—नहारू (नाहरू) = सिंह । लागी = लिए ।

अर्थ—मैं हाथ जोड़ कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ मत कह । अरी अभागिनी ! अन्त में फिर तू पछतायगी, सिंह के लिए जो तू गा को मार रही है ।

नोट—(सिंह दूसरे का दिया हुआ आहार कभी ग्रहण नहीं करता । इसलिये भरत सिंह हैं वे तेरे दिये हुए राज्य का उपभोग कदापि न करेंगे और इसके लिए तुझे पछताना होगा । यहां यही भाव है ।)

दो०—परेउ राउ कहि कोटि विधि काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुं मसानु ॥३६॥

शब्दार्थ—निदान = अन्त, नाश । मसान जगाना = मुरदा सिद्ध करना ।

अर्थ—राजा करोड़ों प्रकार से समझा कर और यह कह कर कि तू क्यों सर्वन कर रही है पृथ्वी पर गिर पड़े । किन्तु कपट करने में चतुर कैकेयी कुछ बोल नहीं मानों शव सिद्ध कर रही हो ॥३६॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ॥
हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहिं जाइ कहइ जनि कोई ॥

शब्दार्थ—वेहालू = व्याकुल, वेचैन । भोरु = सवेरा, सुवह ।

अर्थ—राजा राम राम रटते हुए ऐसे व्याकुल हैं जैसे विना पंख का कोई पक्षी । वे मन-ही-मन मना रहे हैं कि सवेरा न हो और कोई जाकर श्रीरामचन्द्रजी से यह वात न कहे ।

उदय करहु जनि रवि रघुकुल गुरु । अवध विलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥

शब्दार्थ—रवि = सूर्य । सूल (शूल) = पीड़ा, कष्ट । उभय = दोनों । अवधि = सीमा । रची = वनाया । वनाई = भली-भांति ।

अर्थ—हे रघुवंश के गुरु सूर्य भगवान ! आप अपना उदय न करें क

अयोध्या को देख कर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी । राजा का प्रेम और कैकेयी की कठोरता दोनों ही को विधाता ने हद तक भली भाँति बना दिया है ।

विलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा । बीना-बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढ़हिं भाटगुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥

शब्दार्थ—भिनुसारा= सवेरा । बीना= वीणा । बेनु= वांसुरी । संख= शंख । धुनि= शब्द, आवाज । गुन= गुण, यश । गायक= गवैया । सायक= वाण ।

अर्थ—राजा को इस प्रकार विलाप करते हुए सवेरा हो गया । उधर राजद्वार पर वीणा, वांसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी । भाट विरदावली पढ़ने और गवैया गुण गान करने लगे । यह सब सुनते ही राजा को वाण जैसे लगते हैं ।

मंगल सकल सुहाहिं न कैसे । सहगामिनिहिं विभूषन जैसे ॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू । रामदरस लालसा उछाहू ॥

शब्दार्थ—सहगामिनी= स्त्री, पति के साथ सती होने वाली स्त्री । काऊ= किसी को । लालसा= चाह । उछाहु= उत्साह ।

अर्थ—ये सब मंगल के कार्य राजा को किस प्रकार अच्छे नहीं लगते जैसे [illegible] के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण । श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की [illegible] और उत्साह से उस रात को किसी को भी नींद नहीं आयी ।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि ।
जागे अजहुं न अवध पति कारन कवन विसेखि ॥[illegible]

अर्थ—राजद्वार पर सेवकों, मन्त्रियों की भीड़ लगी हुई है । वे सूर्य को [illegible] देख परस्पर कहते हैं कि कौन-सा विशेष कारण है कि महाराज [illegible] नहीं [illegible] ।

पछिले पहर भूप नित जागा । आजु हमहिं बड़ [illegible] ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई । कीजिअ काजु [illegible] ॥

शब्दार्थ—पछिले पहर= एक प्रहर रात रहने [illegible] = [illegible] ।

अर्थ—राजा नित्य रात्रि के अन्तिम पहर में [illegible] किन्तु [illegible] बड़ा आश्चर्य हो रहा है । हे सुमंत्र ! जाओ [illegible] [illegible] हम सब कार्य करें ।

गये सुमंत्र तब राउर [illegible] [illegible]
[illegible] जनु जाइ न [illegible] [illegible]

शब्दार्थ–राउर=राजा। हेरा=देखा। बसेरा=डेरा, निवास।

अर्थ–तब सुमंत्र राजा के पास गये। पर महल ऐसा भयावना हो रहा है कि जाते डर रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे दौड़ कर खा जायगा। उसकी ओर देख नहीं जाता, मानो विपत्ति और शोक ने डेरा डाल दिया है।

पूछें कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयेउ सुखाई॥

अर्थ–पूछने पर कोई उत्तर नहीं देता। सुमंत्र उस भवन में गये जहां कैकेयी और राजा थे। 'जय जीव' कह और सिर नवा कर (प्रणाम करके) बैठ गये और राजा की दशा देख सूख गये।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुं कमल मूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी॥

शब्दार्थ–सोच=चिन्ता। सुभछूछी=शुभ रहित, शुभ से शून्य।

अर्थ–राजा चिन्ता से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है और पृथ्वी पर ऐसे पड़े हुए हैं जैसे जड़ से उखाड़ा हुआ कमल। मन्त्री मारे डर के कुछ पूछते नहीं। इस पर वह अशुभ से भरी शुभ रहित कैकेयी बोली।

दो०–परी न राजहिं नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोर किय कहइ न मरमु महीसु॥३८॥

शब्दार्थ–हेतु=कारण। मरमु=भेद। महीसु (महीश)=राजा।

अर्थ–राजा को आज रात भर नींद नहीं आयी, इसका कारण भगवान जानें। इन्होंने राम राम रटते हुए सवेरा किया है और इसका भेद कुछ नहीं बतलाते।

आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

अर्थ–राम को जल्दी बुला लाओ और तब आकर समाचार पूछना। राजा की इच्छा जानकर सुमंत्र चले और समझ गये कि रानी ने कुछ कुचाल की है।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ॥
उर धरि धीरज गयउ दुआरें। पूछहिं सकल देखि मनमारें॥

अर्थ–शोच के वश होने से सुमंत्र व्याकुल हैं, रास्ते में उनके पैर ही आगे क

नहीं पड़ते और सोचते हैं कि राम को बुला कर राजा क्या कहेंगे। फिर धीरज धारण कर द्वार पर गये। सब लोग उन्हें उदास देख कर पूछने लगे।

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहां दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमंत्रहिं आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥

शब्दार्थ—समाधान= बोध, तसल्ली, समझा बुझा कर। दिनकर= सूर्य। टीका= शिरोमणि। लेखा= मान कर, समझा।

अर्थ—सुमंत्र सब को बोध देकर (समझा बुझा कर) सूर्य वंश के शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी जहां थे, वहां गये। राम ने सुमंत्र को आते देख पिता तुल्य समझ उनका सम्मान किया।

निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघु-कुल-दीपहिं चलेउ लेवाई ॥
राम कुभांति सचिव संग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥

शब्दार्थ—निरखि= देख कर। बदन= मुख। रजाई= आज्ञा। दीपहिं= उजाला, दीपक। बिलखाहीं= व्याकुल होते हैं, दुखी होते हैं।

अर्थ—सुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजी का मुख देख कर और राजा की आज्ञा सुना कर रघुवंश के दीपक श्रीरामचन्द्रजी को अपने साथ लिवा ले चले। श्रीरामचन्द्रजी मन्त्री के संग बुरी तरह से जा रहे हैं, यह देख कर लोग जहाँ तहाँ व्याकुल हो रहे हैं।

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहिं मनहुँ वृद्ध गजराजु ॥३९॥

शब्दार्थ—निपट= अत्यन्त, बिलकुल। कुसाजु= बुरा वेष, बुरी दशा, बेढंगा। सहमि= डर कर। गजराज= हाथियों का राजा।

अर्थ—रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्रजी ने जाकर देखा कि राजा बिलकुल ही बुरी दशा में पड़े हैं; मानों सिंहनी को देख कर बूढ़ा गजराज पृथ्वी पर गिर पड़ा हो ॥३९॥

सूखहिं अधर जरहि सब अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू ॥
सरुष समीप देखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥

शब्दार्थ—अधर= होंठ। मनिहीन= मणि के बिना। भुअंगू= सांप। सरुष= सक्रोध, क्रोध युक्त। घरी गिनना= मृत्यु की इन्तजारी करना।

अर्थ—राजा के होंट सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है, मानो मणि के बिना सर्प दीन हो रहा हो। और पास ही कैकेयी को क्रोधयुक्त देखा, मानों मौत (बैठी राज के जीवन की) घड़ियां गिन रही है।

करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूछी मधुर बचन महतारी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव दयालु तथा कोमल है। उन्होंने यह पहले ही पहल दुःख देखा, इसके पूर्व कभी दुःख का नाम तक नहीं सुना था। तो भी समय का विचार करके, धीरज धारण कर मीठे वचनों से माता (कैकेयी) से पूछा—

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिय जतन जिहि होई निबारन॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुमपर बहुत सनेहू॥

शब्दार्थ—तात= पिता। जतन (यत्न)= उपाय। निवारन होइ= दूर हो।

अर्थ—हे माता! मुझ से पिता के दुःख का कारण कहो, ताकि वैसा यत्न किया जाय जिससे वह दूर हो? कैकेयी बोली—हे राम! सुनो, सब कारण यही है कि राजा का तुम पर वहुत अधिक स्नेह है।

देन कहन्हि मोहिं दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहिं सुहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू॥

अर्थ—राजा ने मुझे दो वरदान देने को कहा था और मुझे जो कुछ अच्छा लगा मैंने मांग लिया। वह सुनकर राजा के हृदय में शोक हो गया है, क्योंकि वे तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते।

दो०—सुत सनेह इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥४०॥

शब्दार्थ—इत= इधर। उत= उधर। मेटहु= दूर करो, मिटाओ।

अर्थ—इधर तो पुत्र-प्रेम और उधर प्रतिज्ञा, राजा इसी धर्म-संकट में पड़े हुए हैं। यदि तुम से हो सके तो इनकी आज्ञा शिरोधार्य करके इनके कठिन कष्ट को दूर करो॥४०॥

निधरक बैठि कहै कछु वानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
जीभ कमान वचन सर नाना। मनहु महिप मृदु लच्छ समाना॥

शब्दार्थ—निधरक= वेधड़क, निःसंकोच। अकुलानी= व्याकुल हो उठी।

मान= धनुष । नाना= अनेक, बहुत । महिप= राजा । लच्छ (लक्ष्य)= निशाना ।

अर्थ—कैकेयी बैठी हुई बेधड़क कड़वी बातें कह रही है, जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी । उसकी जीभ धनुष है तथा वचन अनेक प्रकार के तीर हैं और राजा मानों कोमल निशाने के समान हैं ।

जनु कठोरपनु धरे सरीरू । सिखइ धनुष विद्या बरबीरू ॥
सब प्रसंगु रघुपतिहिं सुनाई । बैठि मनहुं तनु धरि निठुराई ॥

शब्दार्थ—सिखइ=सीख रहा है । बर बीरू=श्रेष्ठ वीर । प्रसंग=बात, हाल ।

अर्थ—(इस प्रकार से तैयार हो कर) मानो कठोर पन स्वयं श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण कर धनुष विद्या सीख रहा है । कैकेयी श्रीरामचन्द्रजी को सब बातें सुना कर बैठी रही मानों निष्ठुरता शरीर धारण किये हुई हो ।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । राम सहज आनन्द-निधानू ॥
बोले वचन बिगत सब दूषन । मृदुमंजुल जनु बाग बिभूषन ॥

शब्दार्थ—भानु= सूर्य । निधानू= घर, भाण्डार । बिगत= रहित, बिना । दूषन (दूषण)= दोष, बुराई । मंजुल= सुन्दर । बाग (वाक्)= वचन, वाणी, वचन । बिभूषन= भूषण ।

अर्थ—स्वाभाविक आनन्द के भाण्डार, सूर्यकुल के सूर्य श्रीरामचन्द्रजी मन में मुस्कराकर, सब दोषों से रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले मानों वे वाणी के विभूषण ही हों ।

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥
तनय मातु-पितु - तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

शब्दार्थ—अनुरागी= प्रेमी, भक्त । तोषनिहारा= प्रसन्न करने वाला ।

अर्थ—हे माता ! सुनो, वही पुत्र अत्यन्त भाग्यवान है, जो माता-पिता के वचनों का प्रेमी (आज्ञा का पालक) है । माता-पिता को प्रसन्न करने वाला पुत्र, हे माता ! सारे संसार में दुर्लभ (नहीं मिलने वाला) है ।

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ—वन में विशेष रूप से मुनियों से मिलना होता है, वहां तो सभी प्रकार से मेरा कल्याण है। उसमें भी पिता की आज्ञा और फिर तुम्हारी भी सम्मति है।

भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा॥

शब्दार्थ—विधि= ब्रह्मा, तरह। सनमुख= सामने, अनुकूल, प्रसन्न हैं। मूढ़= मूर्ख।

अर्थ—मेरे प्राण प्रिय भरत राज्य पावेंगे, मेरे तो सब प्रकार से विधाता अनुकूल हैं। यदि ऐसे कार्य के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मेरी गणना मूर्ख-मण्डली में सब से पहले होनी चाहिए।

सेवहिं अरंडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहि बिषु मांगी॥
तेउ न पाहिं अस समउ चुकाहीं। देखि बिचारि मातु मनमाहीं॥

शब्दार्थ—अरंडु=अंडी, रेंड़।

अर्थ—हे माता! तुम अपने मन में विचार कर देख लो, कि जो मनुष्य कल्प वृक्ष को छोड़ कर अंडी के वृक्ष की सेवा करते हैं और जो अमृत को छोड़ कर विष मांग लेते हैं, वे भी ऐसा अवसर पाकर नहीं चूकते।

अंब एक दुख मोहि विसेखी। निपट बिकल नर नायक देखी॥
थोरहि बात पितहिं दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

अर्थ—किन्तु हे माता! महाराज को अत्यन्त व्याकुल देख कर मुझे विशेष रूप से यही एक दुःख हो रहा है कि इस छोटी सी बात के लिए पिता इतना अधिक दुःखी क्यों हैं; अतः हे माता! मुझे इस पर विश्वास नहीं होता।

राउधीरु गुन - उदधि-अगाधू। भा मोहि तें कछु वड़ अपराधू॥
ता तें मोहि न कहत कछुराऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

शब्दार्थ—उदधि= समुद्र। अगाधू= अथाह। सति भाऊ= सच्चे भाव। भा= हुआ।

अर्थ—क्योंकि राजा तो वड़े धीरवान् और गुणों के अथाह समुद्र हैं, मुझ से अवश्य ही कोई वड़ा अपराध हुआ है; इसी से महाराज मुझ से कुछ नहीं कहते। मेरी सौगन्ध है, सच्चे भाव (सच-सच) कहो।

दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करिजान ।
सह चलइ जोंक जिमि बक्र गति यद्यपि सलिल समान ॥४२॥

शब्दार्थ—सहज= स्वाभाविक । सरल= सीधे । ब क्र= टेढी । सलिल= पानी ।

अर्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के स्वाभाविक सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी ने टेढ़ा ही समझा । जिस तरह यद्यपि जल समान (बराबर) ही रहता है तो भी जोंक टेढ़े ही चलती है ॥४२॥

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

शब्दार्थ—रहसी=हर्षित हुई, प्रसन्न हुई । कइ=का । आना=दूसरा ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर कैकेयी कपट पूर्ण स्नेह दिखाती हुई बोली—तुम्हारी और भरत की सौगन्ध है, मैं दूसरा कारण कुछ नहीं जानती ।

तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता । जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहहू ॥

शब्दार्थ—ताता=पुत्र, भाई, पिता । जनक=पिता । रत=लीन, तत्पर ।

अर्थ—हे पुत्र ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो । हे राम ! तुमने जो कुछ कहा है सब सत्य है, क्योंकि तुम सदा माता-पिता के वचनों में तत्पर रहते हो ।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहिं अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥

शब्दार्थ—बुझाइ= समझा कर । वलि= न्योछावर होना । सुअन= पुत्र ।

अर्थ—मैं तुम पर न्योछावर हूँ, पिता को समझा कर वही कहो जिससे बुढ़ापे में उन्हें कलंक न हो । जिस पुण्य ने इन्हें तुम्हारे जैसा पुत्र दिया है, उसका निरादर करना उचित नहीं है ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु बचन सब भाये । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये ॥

शब्दार्थ—मगह= मगध देश । सुरसरि= देव-नदी, गंगा । गत= जाकर, जाने से ।

अर्थ—कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं, जैसे मगध देश में गया

दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करिजान ।
सह चलइ जोंक जिमि बक्र गति यद्यपि सलिल समान ॥४२॥

शब्दार्थ—सहज = स्वाभाविक । सरल = सीधे । ब क्र = टेढी । सलिल = पानी ।

अर्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के स्वाभाविक सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी ने टेढ़ा ही समझा । जिस तरह यद्यपि जल समान (बराबर) ही रहता है तो भी जोंक टेढ़े ही चलती है ॥४२॥

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

शब्दार्थ—रहसी = हर्षित हुई, प्रसन्न हुई । कइ = का । आना = दूसरा ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर कैकेयी कपट पूर्ण स्नेह दिखाती हुई बोली—तुम्हारी और भरत की सौगन्ध है, मैं दूसरा कारण कुछ नहीं जानती ।

तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता । जननी - जनक- बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहहू ॥

शब्दार्थ—ताता = पुत्र, भाई, पिता । जनक = पिता । रत = लीन, तत्पर ।

अर्थ—हे पुत्र ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो । हे राम ! तुमने जो कुछ कहा है सब सत्य है, क्योंकि तुम सदा माता-पिता के वचनों में तत्पर रहते हो ।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥

शब्दार्थ—बुझाइ = समझा कर । बलि = न्योछावर होना । सुअन = पुत्र ।

अर्थ—मैं तुम पर न्योछावर हूँ, पिता को समझा कर वही कहो जिससे बुढ़ापे में उन्हें कलंक न हो । जिस पुण्य ने इन्हें तुम्हारे जैसा पुत्र दिया है, उसका निरादर करना उचित नहीं है ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु बचन सब भाये । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये ॥

शब्दार्थ—मगह = मगध देश । सुरसरि = देव-नदी, गंगा । गत = जाकर, जाने से ।

अर्थ—कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं, जैसे मगध देश में गया

दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करिजान ।
सह चलइ जोंक जिमि बक्र गति यद्यपि सलिल समान ॥४२॥

शब्दार्थ—सहज = स्वाभाविक । सरल = सीधे । ब क्र = टेढी । सलिल = पानी ।

अर्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के स्वाभाविक सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी ने टेढ़ा ही समझा । जिस तरह यद्यपि जल समान (बराबर) ही रहता है तो भी जोंक टेढ़े ही चलती है ॥४२॥

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

शब्दार्थ—रहसी = हर्षित हुई, प्रसन्न हुई । कइ = का । आना = दूसरा ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर कैकेयी कपट पूर्ण स्नेह दिखाती हुई बोली—तुम्हारी और भरत की सौगन्ध है, मैं दूसरा कारण कुछ नहीं जानती ।

तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता । जननी - जनक - बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहहू ॥

शब्दार्थ—ताता = पुत्र, भाई, पिता । जनक = पिता । रत = लीन, तत्पर ।

अर्थ—हे पुत्र ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो । हे राम ! तुमने जो कुछ कहा है सब सत्य है, क्योंकि तुम सदा माता-पिता के वचनों में तत्पर रहते हो ।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥

शब्दार्थ—बुझाइ = समझा कर । बलि = न्योछावर होना । सुअन = पुत्र ।

अर्थ—मैं तुम पर न्योछावर हूँ, पिता को समझा कर वही कहो जिससे बुढ़ापे में उन्हें कलंक न हो । जिस पुण्य ने इन्हें तुम्हारे जैसा पुत्र दिया है, उसका निरादर करना उचित नहीं है ।

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु बचन सब भाये । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये ॥

शब्दार्थ—मगह = मगध देश । सुरसरि = देव-नदी, गंगा । गत = जाकर, जाने से ।

अर्थ—कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं, जैसे मगध देश में गया

अर्थ—वन में विशेष रूप से मुनियों से मिलना होता है, वहां तो सभी प्रका से मेरा कल्याण है। उसमें भी पिता की आज्ञा और फिर तुम्हारी भी सम्मति है

भरत प्रान प्रिय पार्वाहं राजू। बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा।

शब्दार्थ—बिधि = ब्रह्मा, तरह। सनमुख = सामने, अनुकूल, प्रसन्न है मूढ़ = मूर्ख।

अर्थ—मेरे प्राण प्रिय भरत राज्य पावेंगे, मेरे तो सब प्रकार से विधाता अनुकूल हैं। यदि ऐसे कार्य के लिए भी मैं वन न जाऊँ तो मेरी गणना मूर्ख-मण्डली में सब से पहले होनी चाहिए।

सेवहिं अरंडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहि बिषु मांगी॥
तेउ न पाहिं अस समउ चुकाहीं। देखि बिचारि मातु मनमाहीं॥

शब्दार्थ—अरंडु = अंडी, रेंड़।

अर्थ—हे माता ! तुम अपने मन में विचार कर देख लो, कि जो मनुष्य कल्प वृक्ष को छोड़ कर अंडी के वृक्ष की सेवा करते हैं और जो अमृत को छोड़ कर विष मांग लेते हैं, वे भी ऐसा अवसर पाकर नहीं चूकते।

अंब एक दुख मोहि बिसेखी। निपट बिकल नर नायक देखी॥
थोरहि बात पितहिं दुख भारी। होति प्रतीति न मोहिं महतारी॥

अर्थ—किन्तु हे माता ! महाराज को अत्यन्त व्याकुल देख कर मुझे विशेष रूप से यही एक दुःख हो रहा है कि इस छोटी सी बात के लिए पिता इतना अधिक दुःखी क्यों हैं; अतः हे माता ! मुझे इस पर विश्वास नहीं होता।

राउधीरु गुन - उदधि-अगाधू। भा मोहिं तें कछु बड़ अपराधू॥
ता तें मोहिं न कहत कछुराऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

शब्दार्थ—उदधि = समुद्र। अगाधू = अथाह। सति भाऊ = सच्चे भाव। भा = हुआ।

अर्थ—क्योंकि राजा तो बड़े धीरवान् और गुणों के अथाह समुद्र हैं, मुझ से अवश्य ही कोई बड़ा अपराध हुआ है; इसी से महाराज मुझ से कुछ नहीं कहते तुम्हें मेरी सौगन्ध है, सच्चे भाव (सच-सच) कहो।

दो०—सहज सरल रघुवर वचन कुमति कुटिल करिजान ।
सह चलइ जोंक जिमि वक्र गति यद्यपि सलिल समान ॥४२॥

शब्दार्थ—सहज = स्वाभाविक । सरल = सीधे । वक्र = टेढी । सलिल = पानी ।

अर्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के स्वाभाविक सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी ने टेढ़ा ही समझा । जिस तरह यद्यपि जल समान (बराबर) ही रहता है तो भी जोंक टेढ़े ही चलती है ॥४२॥

रहसी रानि राम रुख पाई । बोली कपट सनेह जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥

शब्दार्थ—रहसी = हर्षित हुई, प्रसन्न हुई । कइ = का । आना = दूसरा ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर कैकेयी कपट पूर्ण स्नेह दिखाती हुई बोली—तुम्हारी और भरत की सौगन्ध है, मैं दूसरा कारण कुछ नहीं जानती ।

तुम्ह अपराधु जोग नहिं ताता । जननी-जनक-बंधु-सुख-दाता ॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू । तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहहू ॥

शब्दार्थ—ताता = पुत्र, भाई, पिता । जनक = पिता । रत = लीन, तत्पर ।

अर्थ—हे पुत्र ! तुम अपराध के योग्य नहीं हो, तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो । हे राम ! तुमने जो कुछ कहा है सब सत्य है, क्योंकि तुम सदा माता-पिता के वचनों में तत्पर रहते हो ।

पितहिं बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें । उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥

शब्दार्थ—बुझाइ = समझा कर । बलि = न्योछावर होना । सुअन = पुत्र ।

अर्थ—मैं तुम पर न्योछावर हूँ, पिता को समझा कर वही कहो जिससे बुढ़ापे में उन्हें कलंक न हो । जिस पुण्य ने इन्हें तुम्हारे जैसा पुत्र दिया है, उसका निरादर करना उचित नहीं है ।

लागहिं कुमुख वचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु बचन सब भाये । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाये ॥

शब्दार्थ—मगह = मगध देश । सुरसरि = देव-नदी, गंगा । गत = जाकर, जाने से ।

अर्थ—कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं, जैसे मगध देश में गया

अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहिं कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाईंहि पूछिउँ माता । सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता ॥

अर्थ—छोटी सी बात के लिए आप इतना दुखी हो रहे हैं। किसी ने पहले कह कर यह बात मुझे नहीं जनायी । स्वामी (आप) को जब मैंने इस दशा में देखा तब माता से पूछा और सारी बातें सुनकर मेरा शरीर शीतल हो गया (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई) ।

दो०—मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात ।
आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात ॥४५॥

अर्थ—हे पिताजी, इस मंगल के समय प्रेम वश हो शोक करना छोड़ दीजिए प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए । यह कह कर श्रीरामचन्द्रजी का शरीर पुलकायमान हो गया ।४५॥।

धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके ॥

शब्दार्थ—जगतीतल = पृथ्वी पर । प्रमोदु = आनन्द । चारि पदारथ = अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष । करतल = हाथ में, मुटठी में ।

अर्थ—(वे फिर बोले) उस पुत्र का जन्म इस संसार में धन्य है, जिसका चरित्र सुन कर पिता को आनन्द हो । चारों पदार्थ उसके हाथ में हैं, जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हों ।

आयसु पालि जनम फल पाई । ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवउँ मांगी । चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी ॥

अर्थ—आपकी आज्ञा का पालन कर और जन्म का फल पा कर, मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा, अतः आप (प्रसन्नता पूर्वक) आज्ञा दे दें । मैं माता से भी आज्ञा मांग आता हूँ और वन चलते समय फिर आपको प्रणाम करके तो जाऊँगा ।

असकहि राम गवन तब कीन्हा । भूप सोकवस उतरु न दीन्हा ॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चढ़ी जनु सबतन बीछी ॥

शब्दार्थ—ब्यापि = फैल । सुतीछी = अप्रिय ।

अर्थ—ऐसा कह कर श्रीरामचन्द्रजी वहां से चले गये । राजा ने शोक वश

होने के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया। यह अप्रिय बात नगर भर में इस प्रकार फैल गयी जैसे डंक मारते ही बिच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ जाय।

सुनि भये विकल सकल नरनारी। बेलि विटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनई सिरु सोई। बड़ विषादु नहिं धीरज होई॥

शब्दार्थ—विटप = वृक्ष। दवारी = दावाग्नि, वन में लगी हुई आग।

अर्थ—यह संवाद सुनते ही सभी स्त्री-पुरुष इस प्रकार व्याकुल हो उठे जैसे वन में लगी हुई आग देख कर लताएँ और वृक्ष हो जाते हैं। जो जहाँ ही सुनता वहीं सिर पीट लेता। (चारों ओर) अत्यन्त शोक फैल गया किसी को धीरज नहीं होता।

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन - रस-कटकई उतरी अवध बजाइ॥४६॥

शब्दार्थ—स्रवहिं = झड़ते हैं। कटकई = सेना। बजाइ = डंका बजा कर।

अर्थ—सभी के मुख सूखे जाते हैं और नेत्रों से आंसू झड़ते हैं, उनका शोक हृदय में नहीं समाता। मानों करुणा रस की सेना डंका बजा कर अयोध्या में आ उतरी हो॥४६॥

मिलेहि मांझ विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ॥

शब्दार्थ—मिलेहि = सब बातें आ जुटना, ठीक होना। मांझ = बीच में। पावक = आग।

अर्थ—सब बातें आ जुटी थीं किन्तु विधाता ने इस बीच ही बात बिगाड़ दी। लोग जहां तहां कैकेयी को गाली देते हैं, कि इस पापिन को क्या सूझ पड़ी जो इसने छाये हुए घर पर आग रख दी।

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु-बंश-बेनु-बन आगी॥

शब्दार्थ—काढ़ि = निकाल कर। डारि = छोड़ कर, गिरा कर। बेनु = बांस।

अर्थ—अपने हाथों अपने नेत्र निकाल कर देखना चाहती है और अमृत को छोड़ विष चखना चाहती है। यह दुष्ट, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिन कैकेयी रघुवंश रूपी बांस के वन के लिए आग हो गयी।

पालव बैठि पेड़ु एहि काटा । सुखमहँ सोक ठाटु धरि ठाटा ॥
सदाराम एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥

शब्दार्थ—पालव= पल्लव, पत्ता (भावार्थ-टहनी) । पेड़= पेड़ । ठाटु= प्रबं तैयारी, रचना, ढांचा ।

अर्थ—पत्ते (टहनी) पर वैठ कर इसने पेड़ को ही काट डाला । सुख के समय शोक का ढांचा तैयार कर दिया । राम तो हमेशा इसे प्राणों के समान प्रिय थे, फिर ऐसा कौन सा कारण आ पड़ा जिससे इसने ऐसी दुष्टता की ।

सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ । सब बिधि अगम अगाधु दुराऊ ॥
निज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

शब्दार्थ—दुराऊ=भेद भरा, गुप्त । प्रतिबिम्ब= छाया । गहि= पकड़ ।

अर्थ—कवि लोग सत्य ही कहते हैं कि स्त्रियों का स्वाभाव सब तरह से अगम, अथाह और भेद-भरा होता है । अपनी छाया भले ही पकड़ी जाय किन्तु हे भाई ! स्त्रियों की चाल जानी नहीं जा सकती ।

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ ॥४७॥

अर्थ—आग क्या नहीं जला सकती ? समुद्र में क्या नहीं समा सकता ? अबला कहलाने वाली स्त्री-जाति क्या नहीं कर सकती तथा काल किसको नहीं खाता ?

का सुनाइ विधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा । वर बिचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा ॥

अर्थ—ब्रह्मा ने क्या सुना कर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब क्या दिखाना चाहता है । एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, क्योंकि उन्होंने उस दुर्बुद्धि को विचार करके वर नहीं दिया ।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु । अबला बिबस ग्यान गुन गाजनु ॥
एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहिं दोसु नहिं देहिं सयाने ॥

शब्दार्थ—जो= जिसके कारण । भाजन= पात्र । विवस= विशेष प्रकार से वश में होना । गा= चला गया । परमिति= सीमा, मर्यादा ।

अर्थ—जिसके कारण वे हठपूर्वक समस्त दुःखों के पात्र बन गये । स्त्री के वश

में होने से (मालूम होता है कि) उनके ज्ञान और गुण दोनों ही नष्ट हो गये। दूसरे जो धर्म की मर्यादा को पहचानते और चतुर हैं, वे राजा को दोष नहीं देते।

सिवि - दधीचि - हरिचंद-कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं॥

शब्दार्थ—बखानी = वर्णन करके। उदास भाय = उदासीन भाव, चुप, तटस्थ।

अर्थ—एक दूसरे से राजा शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी वर्णन करके कहते हैं। कोई इसमें भरतजी की भी राय बताता है और कोई इस खबर को पाकर मौन भाव ग्रहण कर लेता है, कुछ कहता नहीं।

कान मूंदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे॥

शब्दार्थ—रद = दांत। जीहा = जीभ। अलीहा = झूठी।

अर्थ—और एक कान बन्द करके दांतों तले जीभ दबा कर कहते हैं कि यह बात बिलकुल झूठी है। ऐसा कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायेंगे। श्रीरामचन्द्रजी तो भरतजी को प्राणों से भी प्रिय हैं।

दो०—चंद चुवइ बरु अनल कन सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु भरत राम प्रतिकूल॥४८॥

शब्दार्थ—चवइ = बरसाये। अनलकन = आग की चिनगारी। तूल = समान।

अर्थ—चन्द्रमा (शीतल किरणों की जगह) चाहे आग की चिनगारियां बरसाये और अमृत विष के समान हो जाये, परन्तु भरतजी स्वप्न में भी श्रीरामजी के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं कर सकते॥४८॥

एक विधातहिं दूषनदेहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खर भरु नगर सोच सब काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू॥

अर्थ—कोई विधाता को ही दोष देता है, जिसने अमृत दिखलाकर विष दे दिया। इस प्रकार नगर भर में खलबली मच गयी और सब शोकाकुल हो उठे। सब के हृदय से उत्साह उठ गया और वे अत्यन्त दुःखी हो उठे।

बिप्र बधू कुल मान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बान सम लागहिं ताही॥

शब्दार्थ—विप्रबधू= ब्राह्मणों की स्त्रियों। कुलमान्य= कुल की पूज्य। जठेरी बड़ी-बूढ़ी।

अर्थ—ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की पूज्य और वड़ी-बूढ़ी स्त्रियां, जो कैकेयी अत्यन्त प्यारी थीं, वे उसके शील की प्रशंसा करके उसे शिक्षा देने लगी; कि उनकी बातें उसे वाण के समान लगती हैं।

भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बन देहू॥

अर्थ—(वे कहती हैं, कि) तुम तो यह हमेशा से ही कहती आती हो कि रामचन्द्र की तरह भरत मुझे प्रिय नहीं हैं और यह सारा संसार जानता है रामजी पर तुम्हारा स्वाभाविक स्नेह रहता है। फिर आज किस अपराध से वन देती (भेजती) हो ?

कबहुँ न कियेहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू॥
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥

शब्दार्थ—आरेसू= ईर्ष्या, डाह। पुर= नगर। पारा= गिराया। बिगारा= बु की, बिगाड़ा।

अर्थ—तुमने तो कभी सौत से डाह भी नहीं किया। सारा देश तुम्हारे और विश्वास को जानता है। अब कौशल्या ने तुम्हारी कौन-सी बुराई की, जि कारण तुमने सारे नगर पर वज्र गिरा दिया।

दो०—सीय कि पिय संग परिहरिहि लषनु की रहिहहिं धाम।
राजु कि भूंजब भरत पुर नृपु कि जिइहिं बिनु राम॥४९॥

शब्दार्थ—भूंजब= भोगेंगे, भोग करेंगे।

अर्थ—सीताजी क्या अपने पति का साथ छोड़ देंगी ? क्या (श्रीराम वि लक्ष्मणजी घर रहेंगे ? क्या भरतजी अयोध्या का राज्य कभी भोगेंगे ? अ राजा ही क्या श्रीरामचन्द्रजी के विना जीते रहेंगे ? (अर्थात् ये बातें क होने की नहीं) ॥४९॥

अस विचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोटि जनि होहू॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥

शब्दार्थ—कोहू=क्रोध। कोटि=समूह, घर।

अर्थ—ऐसा सोच कर अपने हृदय से क्रोध निकाल दो। (व्यर्थ में) शोक और कलंक का घर मत बनो। हां, भरत को युवराज-पद अवश्य दो, परन्तु श्री रामचन्द्रजी का वन में क्या काम है?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥
गुर गृह बसहिं राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥

शब्दार्थ—विषय=भोग विलास। रूखे=उदासीन, विमुख, अलग। गेहू=घर, आश्रम।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और सांसारिक विषयों से अलग रहने वाले हैं। इसलिए राजा से तुम दूसरा वर यह मांग लो कि श्रीरामचन्द्रजी अपना घर छोड़ कर गुरु के घर जाकर रहें।

जौं नहिं लगिहहु कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥

शब्दार्थ—लगिहहु=प्रवृत्त होगी, काम करोगी, अनुकूल चलना। परिहास=हँसी, मजाक।

अर्थ—यदि तुम हमारे कहे अनुसार नहीं चलोगी, तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। (और नहीं) यदि तुमने कुछ हँसी की हो, तो साफ-साफ कह कर जना दो।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुं लोगू॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहिं बिधि सोक कलंक नसाई॥

अर्थ—राम ऐसा पुत्र क्या वन भेजने योग्य है? यह सुन कर लोग तुम्हें क्या कहेंगे? उठो और जल्दी से वही उपाय करो, जिससे इस शोक और कलंक का नाश हो।

छंद—जेहि भांति सोक कलंक जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिन प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥

शब्दार्थ—कुल पाल ही=वंश की रक्षा करो, कुल का पालन करो। हठि=बल पूर्वक। फेरु=लौटा लो। चालही=चलाओ। चंदु=चन्द्रमा। जामिनी=यामिनी रात।

अर्थ—जिस तरह इस शोक और कलंक का नाश हो वह उपाय करके वंश की रक्षा करो। श्रीरामचन्द्रजी को हठपूर्वक वन जाने से लौटा लो, इसके सिवा दूसरी बात न चलाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे सूर्य के विना दिन, प्राण के बिना शरीर और चन्द्रमा के विना रात की जो हालत होती है, वही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के बिना अयोध्या की हो जायगी; हे भामिनी! इसे तुम भली-भाँति अपने मन में समझ लो।

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

शब्दार्थ—हित=हित कर, भला, अच्छा। तेइ=उसने। कान देना=सुनना, सावधान होकर सुनना। प्रबोधी=सिखायी हुई ॥५०॥

अर्थ—इस तरह सखियों ने उसे ऐसी शिक्षा दी, जो सुनने में मधुर और परिणाम में हितकारी थी। किन्तु दुष्ट कुबरी मन्थरा द्वारा सिखाई हुई उस कैकेयी ने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी।
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चली कहत मतिमंद अभागी।

अर्थ—वह (कैकेयी) कुछ उत्तर नहीं देती और भयंकर क्रोध से और भी कठोर हो रही है। उन सखियों की ओर इस प्रकार देख रही है जैसे भूखी बाघिन मृगों को देखती हो। इसलिए रोग को असाध्य जान कर उसे मूर्खा और अभागिनी कहती हुई छोड़ कर वहां से चल दीं।

राज करत यह दैव बिगोई। कीन्हेसि असजस करइ न कोई ॥
एहि विधि बिलपहिं पुर-नर नारी। देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी ॥

शब्दार्थ—बिगोई=नष्ट कर दिया। गारी=गाली, दुर्वचन।

अर्थ—राज्य करते हुए इसे दैव ने नष्ट कर दिया। इसने वह काम किया जो कोई नहीं करता। इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष विलाप करते हुए दुष्ट कैकेयी को करोड़ों गालियां देते हैं।

जरहिं विषम जर लेहिं उसासा । कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जल-चर-गन-सूखत पानी ॥

शब्दार्थ—विषम जर=कठिन ज्वाला, भीषण दुःख की आग । उसासा=लम्बी सांस, । बिपुल=महान् । जलचर=जल के जीव । गन=गण, समूह । अकुलानी=व्याकुल हो उठी ।

अर्थ—कठिन दुःख की ज्वाला से सब जलते हैं और आह भरकर कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के बिना अब जीने की कौन आशा है ? महान् वियोग से प्रजा ऐसी व्याकुल हो उठी जैसे पानी सूखते देख जीव व्याकुल हो उठते हैं ।

अति बिषाद बस लोग लोगाई । गये मातु पहिं राम गोसाईं ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोच जनि राखइ राऊ ॥

अर्थ—सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त शोक के वश हो रहे हैं । स्वामी श्रीरामचन्द्रजी माता कौशल्या के पास गये । उनके मुख पर प्रसन्नता और चित्त में चौगुना उत्साह है; क्योंकि अब यह चिन्ता दूर हो गयी है कि राजा कहीं रख न लें ।

दो०—नव गयंद रघुबीर मन राजु अलान समान ।
छूट जानि बन गवन सुनि उर अनंद अधिकान ॥५१॥

शब्दार्थ—गयंद=हाथी । अलान=बन्धन, बेड़ी । गवन=गमन, जाना ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का मन नये (जो वन से तुरत फँसा कर लाया गया हो) हाथी के समान और राज्य बन्धन के समान है । 'वन जाना' सुनकर और बन्धन से अपने को मुक्त जान कर उनके हृदय में अत्यन्त आनन्द हो रहा है ।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नायेउ माथा ॥
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे । भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥

अर्थ—रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़ कर प्रसन्नतापूर्वक माता के चरणों में सिर नवाया । माता ने आशीर्वाद दिया और हृदय से लगा लिया और गहने तथा वस्त्र न्योछावर किये ।

बार बार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये ॥

शब्दार्थ—चुंबति=चूमती है । स्रवत=चूता है, गिरता है । प्रेम-रस=दूध । पयद=स्तन ।

शब्दार्थ—कुल पाल ही=वंश की रक्षा करो, कुल का पालन करो। हठि=बल पूर्वक। फेरु=लौटा लो। चालही=चलाओ। चंदु=चन्द्रमा। जामिनी=यामिनी, रात।

अर्थ—जिस तरह इस शोक और कलंक का नाश हो वह उपाय करके वंश की रक्षा करो। श्रीरामचन्द्रजी को हठपूर्वक वन जाने से लौटा लो, इसके सिवा दूसरी बात न चलाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे सूर्य के विना दिन, प्राण के बिना शरीर और चन्द्रमा के विना रात की जो हालत होती है, वही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के बिना अयोध्या की हो जायगी; हे भामिनी! इसे तुम भली-भांति अपने मन में समझ लो।

सो०—सखिन्ह सिखावन दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

शव्दार्थ—हित=हित कर, भला, अच्छा। तेइ=उसने। कान देना=सुनना, सावधान होकर सुनना। प्रबोधी=सिखायी हुई ॥५०॥

अर्थ—इस तरह सखियों ने उसे ऐसी शिक्षा दी, जो सुनने में मधुर और परिणाम में हितकारी थी। किन्तु दुष्ट कुबरी मन्थरा द्वारा सिखाई हुई उस कैकेयी ने उस पर कुछ भी ध्यान न दिया।

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चली कहत मतिमंद अभागी ॥

अर्थ—वह (कैकेयी) कुछ उत्तर नहीं देती और भयंकर क्रोध से और भी कठोर हो रही है। उन सखियों की ओर इस प्रकार देख रही है जैसे भूखी बाघिन मृगों को देखती हो। इसलिए रोग को असाध्य जान कर उसे मूर्खा और अभागिनी कहती हुई छोड़ कर वहां से चल दीं।

राज करत यह दैव विगोई। कीन्हेसि असजस करइ न कोई ॥
एहि विधि विलपहिं पुर-नर नारी। देहिं कुचालहिं कोटिक गारी ॥

शव्दार्थ—विगोई=नष्ट कर दिया। गारी=गाली, दुर्वचन।

अर्थ—राज्य करते हुए इसे दैव ने नष्ट कर दिया। इसने वह काम किया जो कोई नहीं करता। इस प्रकार नगर के स्त्री-पुरुष विलाप करते हुए दुष्ट कैकेयी को करोड़ों गालियां देते हैं।

जरहिं बिषम जर लेहिं उसासा । कवनि राम बिनु जीवन आसा ॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जल-चर-गन-सूखत पानी ॥

शब्दार्थ–विषम जर=कठिन ज्वाला, भीषण दुःख की आग । उसासा=लम्बी सांस, । विपुल=महान् । जलचर=जल के जीव । गन=गण, समूह । अकुलानी=व्याकुल हो उठी ।

अर्थ–कठिन दुःख की ज्वाला से सब जलते हैं और आह भरकर कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के विना अब जीने की कौन आशा है ? महान् वियोग से प्रजा ऐसी व्याकुल हो उठी जैसे पानी सूखते देख जीव व्याकुल हो उठते हैं ।

अति बिषाद बस लोग लोगाई । गये मातु पहिं राम गोसाईं ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोच जनि राखइ राऊ ॥

अर्थ–सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त शोक के वश हो रहे हैं । स्वामी श्रीरामचन्द्र-जी माता कौशल्या के पास गये । उनके मुख पर प्रसन्नता और चित्त में चौगुना उत्साह है; क्योंकि अव यह चिन्ता दूर हो गयी है कि राजा कहीं रख न लें ।

दो०–नव गयंद रघुबीर मन राजु अलान समान ।
छूट जानि बन गवन सुनि उर अनंद अधिकान ॥५१॥

शब्दार्थ–गयंद=हाथी । अलान=बन्धन, वेड़ी । गवन=गमन, जाना ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी का मन नये (जो वन से तुरत फँसा कर लाया गया हो) हाथी के समान और राज्य वन्धन के समान है । 'वन जाना' सुनकर और वन्धन से अपने को मुक्त जान कर उनके हृदय में अत्यन्त आनन्द हो रहा है ।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नायेउ माथा ॥
दीन्ह असीस लाइ उर लीन्हे । भूषन बसन निछावरि कीन्हे ॥

अर्थ–रघुवंश में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़ कर प्रसन्नतापूर्वक माता के चरणों में सिर नवाया । माता ने आशीर्वाद दिया और हृदय से लगा लिया और गहने तथा वस्त्र न्योछावर किये ।

बार बार मुख चुंबति माता । नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये । स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये ॥

शब्दार्थ–चुंबति= चूमती है । स्रवत= चूता है, गिरता है । प्रेम-रस= दूध । पयद= स्तन ।

अर्थ—माता कौशल्या बारम्बार श्रीरामचन्द्रजी का मुख चूमती हैं। आँ में प्रेमाश्रु भर आया है, शरीर पुलकायमान हो गया है। गोद में वैठा कर पि हृदय से लगा लिया। उनके सुन्दर स्तनों से प्रेम का रस (दूध) चूने लगा।

प्रेम प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदवी जनु पाई॥
सादर सुन्दर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥

अर्थ—उनके प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नहीं किया जाता मानो कंग कुबेर की पदवी पा गया हो। आदर के साथ उनके सुन्दर मुख को देखती हुई मा मीठे वचन बोली—

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगनमुद-मंगल कारी॥
सुकृत सील सुख सीव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥

शब्दार्थ—सीवँ=सीमा। कइ=की। अवधि=सीमा। अघाई=पूर्णतः, पूरी, चरम।

अर्थ—हे पुत्र! मैं (माता) तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ। कहो, वह आनन्द और मंगलकारी शुभ लग्न कब है; जो पुण्य, शील और सुख की सुन्दर सीमा तथा जन्म के लाभ की परमावधि भी है।

दो०—जेहि चाहत नर-नारि सब अति आरत एहि भांति।
जिमि चातकि चातक त्रिषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥५२॥

शब्दार्थ—आरत=व्याकुल। चातकि=पपीही। त्रिषित=प्यासा। स्वाति=एक नक्षत्र।

अर्थ—जिस (शुभ मुहूर्त) को सभी नर-नारी इस प्रकार व्याकुल होकर चाहते हैं, जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद्ऋतु के स्वाति नक्षत्र के वर्षा को चाहते हैं।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥

शब्दार्थ—मधुर=मिठाई। वार=देर, विलम्ब। वलि जाना=निछावर होना।

अर्थ—हे तात! मैं तुम्हारी वलैया लेती हूँ, जल्दी नहा लो और जो कुछ मन को भावे मिठाई खालो। हे भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गयी है, माता वलिहारी जाती है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह-सुर-तरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु-भँवरु न भूला॥

शब्दार्थ—अनुकूला=प्रसन्नता से भरा। सुर-तरु=कल्पवृक्ष। मकरंद=पराग, पुष्परस। श्रिय (श्री)=लक्ष्मी, राज लक्ष्मी। मूला=जड़। निरखि=देख कर। भँवर (भ्रमर)=भौंरा। भूला=मोहित हुआ।

अर्थ—माता के अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर, जो मानों स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फूल हों, जिनमें सुख रूपी पराग भरा हुआ है और राज-लक्ष्मी जिसकी जड़ हो—ऐसे वचन रूपी फूलों को देख कर भी श्रीरामचन्द्रजी का मन रूपी भौंरा मोहित नहीं हुआ।

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु-बानी॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भांति मोर बड़ काजू॥

शब्दार्थ—धुरीन(ण)=भार उठाने वाला। गति=हालत, रीति।

अर्थ—धर्म का भार उठाने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने धर्म की रीति जानकर माता से मीठे वचनों में कहा—पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, जहां सब तरह से मेरा बड़ा काम है।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे॥

अर्थ—हे माता! आप भी प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मेरी वन-यात्रा आनन्द और कल्याणीमयी हो। स्नेह वश आप भूलकर भी डर न करें क्योंकि आपकी कृपा से सब आनन्द ही होगा।

दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु-बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं मन जनि करसि मलान॥५३॥

शब्दार्थ—बसि=रह कर। प्रमान करि=प्रमाणित (सत्य) करके। मलान=दुखी।

अर्थ—चौदह वर्ष वन में रह कर और पिता की बात सत्य करके, फिर आकर आपके चरणों का दर्शन करूँगा, आप अपने मन को दुखी न करें॥५३॥

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस

शब्दार्थ—सर सम=बाण के समान। करकना=कसकना, पीड़ा
क कँटीला पौधा जो वर्षा ऋतु में जलकर सूख जाता है।

अर्थ—रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में वाण समान लगकर पीड़ा पहुँचाने लगे। उनकी शीतल वाणी सुन कर वे इस प्रकार डर कर सूख गयीं जैसे वर्षा ऋतु में पानी पड़ते ही जवास सूख जाता है।

कहि न जाइ कछु हृदय-बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर कांपी। मांजहि खाइ मीन जनु मापी॥

शब्दार्थ—केहरि=सिंह। नादू=शब्द, गर्जन। मांजहि=पहली वर्षा का फेन। मीन=मछली। मापी (मापना)=मतवाला होना।

अर्थ—उनका हार्दिक कष्ट कहा नहीं जाता। मानों सिंह का शब्द सुन कर मृगी व्याकुल हो गयी हो। आंखों में जल भर आया, शरीर थर-थर कांपने लगा; जैसे मछली पहली वर्षा के जल का फेन खाकर पागल हो गयी हो।

धरि धीरज सुत बदन निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥

शब्दार्थ—गद्गद=प्रेमादि के आवेश से पूर्ण।

अर्थ—धीरज धरकर और पुत्र का मुख देख कर माता गद्गद वचन कहने लगी—हे पुत्र! तुम तो पिता के प्राण प्रिय थे। वे तुम्हारे चरित्र को देख सदा प्रसन्न रहते थे।

राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥

शब्दार्थ—साधा=ठीक किया, निश्चित किया। निदानू=कारण। कृसानू=आग

अर्थ—राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन निश्चित कराया था, फिर किस अपराध से उन्होंने वन जाने को कहा? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ कि सूर्य वंश (रूपी वन) को जलाने के लिए कौन अग्नि हो गया?

दो०—निरखि राम रुख सचिव सुत कारण कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥५४॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का रुख देख कर मन्त्रि-पुत्र ने सब कारण समझा कर कह दिया। उसे सुनकर वे गूंगी जैसी रह गयी, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥५४॥

राखि न सकइ न कहि सक जाहू । दुहूँ भांति उर दारुन दाहू ॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू । विधिगति बाम सदासब काहू ॥

शब्दार्थ—दारुन=भयानक, कठिन । दाहू=जलन, पीड़ा । गा=गये । राहू=एक दुष्ट ग्रह । बाम=टेढ़ी ।

अर्थ—(कौशल्या श्रीरामचन्द्रजी को) न रख ही सकती हैं और न (वन) जाने को ही कह सकती हैं । दोनों ही प्रकार से हृदय में भयानक पीड़ा हो रही है । (मन में सोचती हैं कि) ब्रह्मा की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है । वे (भाग्य में) [illegible] लिखने लगे और लिख गया राहु !

धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति सांप छछूंदर केरी ॥
राखउँ सुतहिं करहुँ अनुरोधू । धरम जाइ अरु बंधु [illegible] ॥

अर्थ—धर्म और स्नेह दोनों ने उनकी (कौशल्या की) बुद्धि को [illegible] । उनकी हालत सांप और छछूंदर की सी हो गयी । (सोचने लगीं) [illegible] करके पुत्र को रख लेती हूँ, तो धर्म जाता है और भाइयों में [illegible] है ।

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । संकट-सोच-बिबस [illegible] ।
बहुरि समुझि तिय धरम सयानी । राम भरत [illegible] ।

अर्थ—और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी [illegible] । [illegible] चिन्ता के वश होने से रानी अत्यन्त संकट में पड़ [illegible] कौशल्या स्त्री-धर्म को समझ कर और राम तथा [illegible] जानकर—

सरल सुभाउ राम महतारी । [illegible] ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । [illegible] ॥

अर्थ—सीधे स्वभाव वाली [illegible] धीरज धर कर बोलीं—हे पुत्र ! [illegible] को आज्ञा (का पालन करना) [illegible] ।

दो०—राजु देन कहि [illegible] ।
तुम बिनु [illegible]

अर्थ—राज्य देने को [illegible] किन्तु तुम्हारे बिना [illegible]

जौं केवल पितु आयसु ताता । तौं जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना । तौं कानन सत अवध-समाना ॥

अर्थ—हे पुत्र ! यदि केवल पिता ही की आज्ञा हो तो माता को (पिता से वड़ी जान कर वन में न जाओ । और नहीं, यदि माता-पिता दोनों ने ही वन ज को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है ।

पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग भृग चरन सरोरुह सेवी ॥
अंतहु उचित नृपहि बनबासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥

शब्दार्थ—मृग=पशु । सरोरुह=कमल । हरासू=दुःख । सेवी=सेवक ।

अर्थ—वन के देवता तुम्हारे पिता और वन देवियां माता होंगी और वहां पशु-पक्षी तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे । राजा के लिए अन्त में तो वन-वास होना उचित ही है परन्तु उम्र (अल्पावस्था) को देख कर हृदय में दुःख हो रहा है

बड़भागी बन अवध अभागी । जो रघुबंस-तिलक-तुम्ह त्यागी ॥
जौं सुत कहउँ संग मोहि लेहु । तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥

अर्थ—वन बड़ा ही भाग्यवान और अयोध्या अत्यन्त अभागी है, जिसे हे रघुकु शिरोमणि तुमने छोड़ दिया । हे पुत्र ! यदि मैं यह कहूँ कि मुझे भी साथ लेते चलं तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती है)

पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! तुम सभी के अत्यन्त प्यारे, प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो । वही तुम आज्ञा मांग रहे हो कि मांता ! मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनं को सुन कर वैठी पश्चात्ताप कर रही हूँ ।

दो०—यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५६॥

शब्दार्थ—नात=नाता, सम्वन्ध । सुरत=याद, सुध । विसरि=भूल ।

अर्थ—यह सोच कर झूठा स्नेह वढ़ा कर मैं हठ नहीं करती । हे पुत्र ! मैं वलैया लेती हूँ, तुम माता के नाता को मानते हुए मेरी सुध भूल न जाना ॥५६॥

देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । राखहुं नयन पलक की नाईं ॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥

शब्दार्थ—पितर=पूर्व पुरुष, पुरखे। करुनाकर=दया की खान।

अर्थ—हे गोसाईं ! देवता और पितृ लोग तुम्हारी उसी प्रकार रक्षा करें जैसे
कें नेत्रों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वन-वास की अवधि (समय) जल है, प्रियजन
र कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने
ले हो।

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहिं जिअत जेंहि भेंटहु आई॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥

शब्दार्थ—सुखेन=सुख से। जन=सेवक। गाऊँ=नगर निवासी। अनाथ=दुःखी

अर्थ—ऐसा सोचकर तुम वही उपाय करो, जिसमें सब के जीते जी तुम आ
लो। मैं बलैया जाती हूँ, तुम सेवकों, कुटुम्बियों और नगर वासियों को दुखी
रके सुख पूर्वक वन जाओ।

सब कर आजु सुकृतफल बीता। भयेउ कराल काल बिपरीता॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहिं जानी॥

शब्दार्थ—विपरीता=प्रतिकूल, उल्टा। बिलपि=विलाप करती हुई।

अर्थ—आज सभी के पुण्यों का फल समाप्त हो गया। कठिन काल सब के
तिकूल हो गया। अनेक प्रकार से विलाप करती हुई उनके चरणों में लिपट गयीं
ौर अपने को अत्यन्त अभागिनी समझीं।

दारुन दुसह-दाह-उर ब्यापा। बरनि न जाइ बिलाप कलापा॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई॥

शब्दार्थ—ब्यापा=भर गया। कलापा=समूह, दुःख। विलाप=रुदन।

अर्थ—हृदय में असह्य भयानक दुःख भर गया। कौशल्या के रुदन और दुःख
ा वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने माता को उठा कर
दय से लगा लिया और मीठे वचन कह कर उन्हें समझाया।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

शब्दार्थ—अकुलाइ=घबड़ा। जुग (युग)=दोनों। नाइ=नवा कर, झुका कर।

अर्थ—उस समय इस समाचार को सुन कर सीताजी घबरा उठीं और सा
कौशल्या) के दोनों चरण कमलों में सिर नवा कर (प्रणाम कर) वहां जा

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूप रासि पति-प्रेम पुनीता ॥

शब्दार्थ—नमित=नीचे । रासि=राशि, खजाना, ढेर । पुनीता=पवित्र।

अर्थ—सास ने मीठी वाणी से आशीर्वाद दिया । वे सीताजी को अत्यन्त कोमल देख कर घबरा गयीं । रूप का भाण्डार और पति में पवित्र प्रेम रखने वाली श्री सीताजी बैठ कर नीचे मुख किये सोचती हैं ।

चलन चहत बन जीवन नाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना । बिधिकरतब कछु जाइ न जाना ॥

शब्दार्थ—जीवन नाथू=प्राण नाथ । सुकृती=शुभ कर्म, पुण्यवान । सन=से, द्वारा

अर्थ—प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं । किस पुण्य कर्म द्वारा मेरा उनका साथ होगा । मेरे शरीर और प्राण दोनों उनके साथ जायँगे अथवा केवल प्राण ही जायगा । विधाता का कर्तव्य कुछ जाना नहीं जाता ।

चारु चरन नख लेखति धरनी । नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी ॥
मनहुं प्रेमबस बिनती करहीं । हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं ॥

शब्दार्थ—चारु=सुन्दर । लेखति=लिखती हैं, कुरेदती हैं । नूपुर=पैर में पहनने का गहना, पैंजनी, घूंघरू । मुखर=शब्द ।

अर्थ—सीताजी अपने सुन्दर चरणों के नखों से पृथ्वी कुरेदती हैं । (ऐसा करने से) उनके नूपुर से जो मधुर शब्द होता है उसका वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं मानों वे (नूपुर) प्रेम-वश हो यह प्रार्थना कर रहे हैं कि हमें सीताजी के चरण कभी छोड़ें नहीं ।

मंजु बिलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम महतारी ॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

शब्दार्थ—बिलोचन=नेत्र । मोचति=गिराती हैं । बारी=वारि, जल, आँसू

अर्थ—सीताजी सुन्दर नेत्रों से आंसू गिराती हैं । यह देख कर श्रीरामचन्द्र जी की माता बोलीं—हे पुत्र ! सुनो , सीता अत्यन्त सुकुमार हैं; ये सास, ससुर और कुटुम्बियों की प्यारी हैं ।

दो०—पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल - भानु ।
पति रवि-कुल-कैरव बिपिन-बिधु गुन-रूप निधानु ॥५८॥

शव्दार्थ–कैरव=कुमुद, स्वेत कमल। बिधु=चन्द्रमा। निधान=घर, खान।

अर्थ–इनके पिता जनकजी राजाओं में श्रेष्ठ हैं, ससुर सूर्य वंश के सूर्य हैं और । सूर्य वंश रूपी कुमुद-वन के चन्द्रमा और गुण तथा रूप के खजाना हैं ।।५८।।

मैं पुनि पुत्र बधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई।।
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।

शव्दार्थ–पुतरि=पुतली। करि=बना कर। पुत्र-वधू=पतोहू।

अर्थ–मैंने फिर रूप की राशि, गुण और सुन्दर शील वाली पतोहू पायी है। ो इनको (जानकी को) आंखों की पुतली बना कर प्रेम बढ़ाया है और प्राणों से ाये रखती हूँ।

कलप बेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिस प्रतिपाली।।
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा।।

शव्दार्थ–कलप बेलि=कल्प लता, कल्प वृक्ष। लाली=लाड़-प्यार के साथ।

अर्थ–मैंने इनको कल्प लता के समान अनेक प्रकार के लाड़-प्यार सहित, ेह रूपी जल से सींच कर पाला है। इस लता के फूलने-फलने के समय ब्रह्मा ़े हो गये। मालूम नहीं होता कि इसका परिणाम क्या होगा !

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ।।

शव्दार्थ–पीठ=चौकी, पीढ़ा। हिंडोरा=एक प्रकार का झूला। अवनि=पृथ्वी। ाअन-मूरि=संजीवनी जड़ी। जोगवत=बचाती, रक्षा करती। बाति=बत्ती।

अर्थ–सीता ने पलंग, चौकी, गोद और हिंडोरे को छोड़ कभी कड़ी पृथ्वी पर र नहीं रखा। मैं संजीवनी जड़ी की भांति इन्हें बचाती रहती हूँ और दीपक की बत्ती तक हटाने को कभी नहीं कहती।

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।।
चंद-किरन-रस रसिक चकोरी। रबि रुख नयन सकै किमि जोरी।।

शव्दार्थ–रस=अमृत। रसिक=प्रेमी। रुख=सामने। जोरी=मिला।

अर्थ–वही सीता तुम्हारे साथ वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ ! क्या आज्ञा होती है ? चन्द्रमा की किरणों के अमृत का प्रेमी चकोरी सूर्य के सामने आंख कैसे मिला सकती है।

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि ।
बिष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

शब्दार्थ—करि=हाथी । केहरि=सिंह । चरहिं=चलते-फिरते हैं, विचरते हैं

अर्थ—हाथी, सिंह, राक्षस आदि वहुतेरे दुष्ट जीव वन में घूमते फिरते हैं हे पुत्र ! सुन्दर संजीवनी जड़ी क्या विष के वाग में शोभा पा सकती है ?

बनहित कोल किरात किसोरी । रची बिरंचि बिषय-सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥

शब्दार्थ—किरात=भिल्ल । किसोरी=लड़की । विरंचि=ब्रह्मा । विषय=भो विलास, धन । भोरी=न जानने वाली । पाहन-कृमि=पत्थर का कीड़ा ।

अर्थ—ब्रह्मा ने वन के लिए विषय सुख को न जानने वाली कोल और भि की लड़कियों को बनाया है । उनका स्वभाव पत्थर के कीड़े के समान कठोर उनको वन में कभी दुःख नहीं होता ।

कै तपस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ।
सिय बन बसिहि तात केहि भांती । चित्र लिखित कपि देखि डेराती ।

अर्थ—अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तप के लिए सब सुखों को छोड़ दिया है । हे तात ! सीता कैसे वन में रह सकती जो खिची हुई बन्दर की तस्वीर देख कर डर जाती हैं ।

सुर-सर-सुभगबनज - बन - चारी । डाबर जोग कि हंसकुमारी ॥
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

शब्दार्थ—सुर-सर=मानसरोवर । चारी=विचरण करने वाली । डाबर=ग तलैया ।

अर्थ—मानसरोवर के सुन्दर कमल वन में विचरण करने वाली हंसिनी क्या गड़हे में रहने योग्य है ? ऐसा सोच कर तुम्हारी जैसी आज्ञा हो, मैं जानकी को वही शिक्षा दूँ ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा । मोहिं कहँ होइ वहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय वानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

अर्थ—माता कहती हैं—यदि सीताजी घर पर रह जायें, तो मुझे वहुत सहार

हो जाये। माता की मानो शील और स्नेह रूपी अमृत में सनी हुई प्रिय वाणी को सुन कर श्रीरामचन्द्रजी ने–

दो०–कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥६०॥

शब्दार्थ–विवेक=ज्ञान, भले बुरे का विचार। परितोष=सन्तुष्ट, प्रसन्न। प्रबोधन=समझाने। प्रगटि=जाहिर करते हुए।

अर्थ–विवेक युक्त प्रिय वचनों से माता को सन्तुष्ट किया। फिर वे वन के गुण और दोषों को प्रकट करते हुए जानकी को समझाने लगे ॥६०॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन मांहीं ॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भांति जिय जनि कछु गुनहू ॥

शब्दार्थ–आन=दूसरा। गुनहू=समझना।

अर्थ–माता के सामने कुछ कहने में श्रीरामचन्द्रजी सकुचाते हैं। किन्तु मन में यह समझ कर कि समय ऐसा ही है, सीताजी से बोले–हे राजकुमारी! मेरी शिक्षा को सुनो। अपने मन में इसे कुछ दूसरी तरह न समझ लेना।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोरि सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥

अर्थ–यदि तुम अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरी बात मान कर घर रह जाओ। हे भामिनी! इसमें मेरी आज्ञा का पालन और साथ ही सासु की सेवा होगी। तुम्हारे घर रहने में सब प्रकार से भलाई है।

एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥

अर्थ–आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। माता जब-जब मेरी याद करेंगी और प्रेम में व्याकुल हो [illegible] खो बैठेंगी–

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥

अर्थ–तब-तब तुम प्राचीनकाल की कथाएँ कह कर, हे सुन्दरी!

वाणी से उन्हें समझाना। हे सुन्दर मुखवाली ! मैं स्वभावतः सैकड़ों सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि तुम्हें यहां केवल माता के लिए ही रखता हूँ।

दो०—गुरु स्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेसु।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेसु ॥६१॥

शब्दार्थ—स्रुति=वेद। गालव=एक मुनि का नाम है। नहुष=एक राजा।

अर्थ—गुरु और वेद की राय है कि धर्म (के अनुकूल चलने) का फल बिना कष्ट के ही मिलता है। किन्तु जो हठ-वश विपरीत आचरण करते हैं वे सभी संकट सहते हैं, जैसे गालव मुनि और राजा नहुष ॥६१॥

गालव—गालव विश्वामित्र के शिष्य थे। एक दिन धर्मराज वशिष्ठ का वेष धारण कर विश्वामित्र की परीक्षा लेने के लिए उनके आश्रम में आये। विश्वामित्र भोजन पका रहे थे। धर्मराज ने आते ही भोजन की याचना की। विश्वामित्र ने कहा—भोजन थोड़ी देर में तैयार हो जाता है, आप थोड़ी देर ठहर जायें। किन्तु वशिष्ठ रूपधारी धर्मराज ने वहां न ठहर कर एक दूसरे ऋषि के आश्रम में जा भूख मिटायी। इतने ही में विश्वामित्र गरम-गरम भोजन पात्र में लिए आ पहुँचे। धर्मराज ने कहा—मैं तो भोजन कर चुका। अब तुम ऐसे ही खड़े रहो जब तक मैं लौट कर न आऊँ। अतिथि-सत्कार व्रती विश्वामित्र अपने शत्रु वशिष्ठ का वचन मान सिर पर भोजन लिए सौ वर्ष तक केवल वायु भक्षण करके खड़े रहे। तब धर्मराज ने पुनः वशिष्ठ के वेश में आकर कहा—विश्वामित्र मैं तुझसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जाओ तुम आज से ब्रह्मर्षि हो गये। इस पर विश्वामित्र को हार्दिक आह्लाद हुआ।

जिस समय विश्वामित्र भोजन लिए खड़े थे, उस समय गालव ने उनकी बड़ी सेवा की; जिस पर प्रसन्न हो विश्वामित्र ने कहा—बेटा ! मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से परम प्रसन्न हूँ। अब तुम जहां चाहो जा सकते हो। किन्तु गालव ने विश्वामित्र के अस्वीकार करने पर भी गुरु-दक्षिणा मांगने के लिए जब बार-बार हठ किया तब रुष्ट हो कर विश्वामित्र ने उनसे ८०० श्यामकर्ण घोड़े मांगे। इस दक्षिणा के चुकाने में गालव को महान् कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अन्त में बड़ी मुश्किल से इसे पूरा कर पाये। तभी से गालव का हठ प्रसिद्ध है।

नहुष—नहुष बड़े प्रतापी और तेजस्वी राजा थे। वृत्रासुर का वध करने पर व ब्रह्महत्या के कारण इन्द्र अपना आसन छोड़ भाग गये तब देवताओं ने नहुष ो देवलोक का राजा बनाया। इन्द्रासन पाते ही नहुष को अभिमान हो गया। न्द्राणी पर अपना हक कायम करते हुए वे उनसे बार-बार अनुचित प्रस्ताव करने ागे। इन्द्राणी दुखी हो देवगुरु वृहस्पति की शरण में गयीं। उन्होंने सलाह दी के तुम नहुष से कहो कि यदि वह ऋषियों की पालकी पर चढ़ कर आवे तो ुम उसे अपना पति बना लोगी। इन्द्राणी ने यही कहला भेजा। नहुष ऋषियों की सवारी पर चढ़ कर चला। बेचारे ऋषि धीरे-धीरे जाने लगे। इस पर उसने कहा सर्प-सर्प चलो। अगस्त्य ऋषि को क्रोध आया। उन्होंने श्राप देया-जा, तू सर्प हो जा। नहुष उसी क्षण सर्प बन कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और अगस्त्यजी से श्राप-मुक्त होने के लिए प्रार्थना करने लगा। अन्त में उन्होंने दया करके कहा कि जा, जब कोई तेरे प्रश्नों का उत्तर देगा तब तेरा उद्धार हो जायगा। पाण्डवों के वनवास के समय सर्प नहुष ने भीम को कस कर पकड़ा और युधिष्ठिर के उसके प्रश्नों का उत्तर देने पर भीम और नहुष दोनों का ही उद्धार हुआ।

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहिं बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥

शब्दार्थ—प्रमान करि= प्रमाणित करके, पूरी करके। बेगि= शीघ्र। बारा= देर, विलम्ब।

अर्थ—हे सुमुखि, हे चतुर जानकी! सुनो, मैं फिर पिता की बात को पूरी करके शीघ्र ही लौट आऊँगा। हे सुन्दरि! दिन जाते देर नहीं लगती, अतः मेरी सीख को मानो।

जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥

अर्थ—हे वामा! यदि प्रेम वश तुम हठ करोगी, तो इसके परिणाम में दुख पाओगी। क्योंकि वन बड़ा ही कठिन और भयानक है। वहां की धूप, जाड़ा, जल और वायु सभी बड़े भयानक हैं।

कुस कंटक मग कांकर नाना । चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥

शब्दार्थ—कांकर= कंकड़ । पयादेहिं= पैदल । पदत्राना= जूता । भूमिधर पहाड़ ।

अर्थ—रास्ते में अनेक कुश, कांटे और कंकड़ होते हैं । उन पर बिना जूते पैदल ही चलना होगा । तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं और रा में बड़े-बड़े दुर्गम पहाड़ हैं ।

कंदर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ॥

शब्दार्थ—कंदर= गुफा । वृक= भेड़िया । नागा= हाथी । नाद= शब्द ।

अर्थ—पर्वतों की गुफाएँ, खोह, नदी, नद और नाले ऐसे अगम्य और अथा हैं जिनकी ओर देखा तक नहीं जाता । भालू, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐ (भयंकर) शब्द करते हैं कि सुनकर धीरज भाग जाता है (नहीं रहता) ।

दो०—भूमि सयन बलकल बसन असन कंद फल मूल ।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥६२॥

शब्दार्थ—सयन= सोना । बसन= वस्त्र । असन= भोजन । ते= वे । कि= क्या

अर्थ—पृथ्वी पर सोना, पेड़ की छाल का वस्त्र पहनना और कंद, मूल, फ भोजन करना होगा । वे भी क्या सदा सभी समय मिलेंगे ? नहीं, अपने-अप समय के अनुकूल ही ॥६२॥

नर अहार रजनीचर चरहीं । कपट बेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥

शब्दार्थ—रजनीचर= राक्षस । चरहीं= चलते हैं, फिरते रहते हैं

अर्थ—मनुष्यों को खानेवाले राक्षस (चारों ओर) फिरते रहते हैं और करोड़ प्रकार कपट-रूप धारण कर लेते हैं । पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है । व की विपत्ति कही नहीं जाती ।

ब्याल कराल बिहँग बन घोरा । निसि-चर-निकर-नारि-नर-चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भीरू सुभाये ॥

शब्दार्थ—ब्याल= सर्प । घोरा= भयंकर । निकर= झुंड । गहन= भयंकरता

अर्थ—वन में भयानक सांप, डरावने पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वा

राक्षसों का दल रहता है। वन की भयकंरता की याद आते ही धीर पुरुष भी डर जाते हैं। हे मृगा के समान नेत्र वाली ! तुम तो स्वभाव ही से डरपोक हो।

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥
मानस-सलिल-सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥

शब्दार्थ—मानस= मानसरोवर। लवन-पयोधि= खारी समुद्र। मराली= हंसिनी।

अर्थ—हे हंसगमनी ! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हें वन ले जाने की बात सुनकर लोग मुझे कलंक देंगे। मानसरोवर के अमृत के समान जल में पली हुई हंसिनी क्या खारे समुद्र में (रहकर) जी सकती है ?

नव-रसाल-वन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुख कानन भारी॥

शब्दार्थ—रसाल= आम। बिहरनसीला= विहार करने वाली।

अर्थ—नये आम के वन में विहार करनेवाली कोयल क्या करील के वन में शोभा पा सकती है ? हे चन्द्रमुखी ! अपने मन में ऐसा सोचकर घर पर रहो, वन में वहुत वड़ा दुःख है।

दो०—सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥६३॥

शब्दार्थ—सहज= स्वभाव से ही। सुहृद= मित्र, भलाई चाहनेवाला। अघाइ= भर पेट, अच्छी तरह।

अर्थ—स्वभाव से ही भलाई चाहनेवाले गुरु और स्वामी की शिक्षा को जो शिरोधार्य करके नहीं मानता, वह हृदय में खूब पछताता है और अवश्य उसके हित की हानि होती है (वुराई होती है)। ६३

सुनि मृदु बचन मनोहर पियके। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसें। चकइहिं सरद चंद निसि जैसें॥

अर्थ—पति के कोमल तथा मन को हरनेवाले वचन सुन कर सीताजी के सुन्दर नेत्रों में जल भर आया। श्रीरामचन्द्रजी की शीतल शिक्षा उनको किस प्रकार जलाने वाली हुई जैसे चकवी को शरद् ऋतु की चांदनी रात होती है।

उतरु न आव विकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी । धरि धीरज उर अवनिकुमारी ॥

शब्दार्थ—सनेही = प्रेमी । अवनि कुमारी = पृथ्वी की लड़की, सीता ।

अर्थ—जानकीजी से कुछ उत्तर देते नहीं वनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र प्रेमी पति मुझे छोड़ जाना चाहते हैं । तो भी नेत्रों के जल को जबर्दस्ती रोककर और हृदय में धीरज धारण कर सीता जी—

लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि वड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रान प्रिय मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥

शब्दार्थ—अविनय = ढिठाई ।

अर्थ—सास के चरण लगकर और हाथ जोड़कर वोलीं,—हे देवि मेरी इस बड़ी ढिठाई को क्षमा करेंगी । प्राणपति ने मुझे वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो ।

मैं पुनि समुझि दीखि मनमाहीं । पिय-बियोग-सम दुख जग नाहीं ॥

अर्थ—परन्तु फिर मैंने भी मन में समझकर देख लिया है कि पति के वियोग के समान संसार में दूसरा दुःख नहीं है ।

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥६४॥

शब्दार्थ—करुनायतन = दया के घर । कुमुद = सफेद कमल । बिधु = चन्द्रमा

अर्थ—हे प्राणनाथ ! हे दया के घर ! हे सुन्दर सुखों को देने वाले ! हे सुजान ! हे रघुवंश रूपी कुमुद के लिए चन्द्रमा ! आपके बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक के समान है । ६४

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥

शब्दार्थ—भगिनी = वहन । सजन = स्वजन, संवन्धी । सहाई = सहायक ।

अर्थ—माता, पिता, वहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समूह सास ससुर, गुरु, सम्वन्धी, सहायक तथा सुन्दर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र—

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनु पुरराजू । पतिविहीन सब सोक समाजू ॥

शव्दार्थ–तरनिहु= सूर्य से भी। ताते= तपानेवाले, जलानेवाले। समाज=
[हू]।

अर्थ–हे स्वामी ! जहां तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को ये सब [सूर्य] से भी बढ़कर जलानेवाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, [बि]ना पति की स्त्री के लिए सब शोक के समाज हैं।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम-जातना-सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जगमाहीं। मोकहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥

शव्दार्थ–जम-जातना= यमराज की यातना, नरक की पीड़ा।

अर्थ–भोग रोग के समान और गहने भार रूप हैं और संसार नरक की पीड़ा [स]दृश है। हे प्राणपति आपके बिना संसार में कहीं कुछ भी सुख देनेवाला नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसियनाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे ॥

शव्दार्थ–तइसिअ= वैसे ही। सकल= समस्त। बिमल= निर्मल।

अर्थ–जीव के बिना देह की और पानी बिना नदी की जो हालत है, हे नाथ ! [प]ुरुष बिना स्त्री की भी वही दशा है। हे नाथ ! आपके शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा [के] समान मुख को देखते रहने से आपके साथ में मुझे सभी सुख प्राप्त होंगे।

दो०—खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदनसम परनसाल सुख मूल ॥६५॥

शव्दार्थ–दुकूल= वस्त्र। सदन= घर। परन (पर्ण)= पत्ता। परनसाल= पत्ते की झोपड़ी। वलकल= पेड़ की छाल।

अर्थ–हे नाथ ! आपके साथ में वन नगर होगा, पक्षी और पशु कुटुम्बी होंगे, पेड़ की छाल रेशमी वस्त्र के समान होगी तथा पत्ते की झोपड़ी देवताओं के घर के समान सुख की जड़ होगी ॥६५॥

बनदेवी बन देव उदारा। करहहिं सासु-ससुर-समसारा ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभुसँग मंजु मनोज तुराई ॥

शव्दार्थ–सारा= सँभाल, रक्षा। किसलय= कोमल पत्ता। साथरी= बिछौना। मनोज= कामदेव। तुराई= तोशक।

अर्थ—वन के उदार देवी और देवता सास और ससुर के समान मेरी रक्षा क
और कुश तथा कोमल पत्तों का बिछौना कामदेव की सुन्दर तोशक के समान हो

कंद मूल फल अमिअ अहारू । अवध-सौंध-सत - सरिस पहारू
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी

शब्दार्थ—अमिअ = अमृत । सौध = राजमहल । मुदित = प्रसन्न । को
चकवी ।

अर्थ—कन्द, मूल और फल अमृत के समान भोजन होंगे और उसके प
अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे । वार-वार आपके चरण क
को देख कर मैं उस तरह प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है ।

बनदुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ।
प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपा निधाना।

अर्थ—हे स्वामी ! आपने अनेक प्रकार से वन के भय, शोक और परि
आदि बहुत से दुःखों को कहा है । किन्तु हे कृपानिधान् ! ये सब मिलकर
प्रभु के वियोग की समता में कुछ नहीं हैं ।

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहिं छाड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अंतरजामी ॥

अर्थ—हे चतुरों में श्रेष्ठ ! ऐसा मन में समझकर आप मुझे साथ ले च
यहां छोड़िये नहीं । हे स्वामी ! मैं अधिक प्रार्थना क्या करूँ, आप तो दयामय
हृदय के भीतर की जाननेवाले हैं ।

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानि अहि प्रान ।
दीनबंधु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान ॥६६॥

शब्दार्थ—अवधि = निर्दिष्ट काल, चौदह वर्ष ।

अर्थ—हे दीनवन्धु ! हे सुन्दर सुख देनेवाले ! हे शील और स्नेह के भाण्डा
यदि आप अवधि तक मेरे प्राणों को रहते हुए जानें तो मुझे अयोध्या में रखि

मोहिं मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी
सबहिं भांति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल स्रम हरिहौं

शब्दार्थ—हारी = थकावट । मारग-जनित = रास्ता चलने से उत्पन्न ।

अर्थ—क्षण-क्षण आपके चरण कमलों को देखकर रास्ता चलने में मुझे थक

होगी। हे स्वामी ! सब तरह से मैं आपकी सेवा करूँगी और रास्ता चलने से
पन्न थकावट को दूर करूँगी।

पाय पखारि बैठ तरु छाहीं। करिहौं बाउ मुदित मनमाहीं॥
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥

शब्दार्थ—पखारि= धो कर। बाउ= हवा, पंखा। स्रमकन= पसीने की बूंदे।
खे= देखते हुए, दर्शन करते हुए।

अर्थ—पेड़ों की छाया में बैठकर आपके चरण धोऊँगी और प्रसन्न मन से हवा
करूँगी (पंखा झलूगी)। पसीने की बूंदों सहित श्याम शरीर को देखकर—प्राण
ति के दर्शन करते हुए दुःख का अवसर ही कहां रह जायगा।

सम महि तृन - तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥

शब्दार्थ—डासी= बिछाकर। पाय= पैर। पलोटिहि= दबायेगी। जोही= देख
कर। ताति=गरम।

अर्थ—बराबर भूमि पर तिनके और पेड़ों की पत्तियां बिछाकर यह दासी
सारी रात आपके चरण दबायेगी। बारम्बार आपकी सुन्दर मूर्ति को देखते रहने
से मुझे गरम हवा भी न लगेगी।

को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥

शब्दार्थ—चितवनि हारा= देखनेवाला। बधुहि= स्त्री को। ससक= खरगोश।

अर्थ—स्वामी के साथ रहने पर मेरी ओर देखनेवाला कौन है (अर्थात् कोई
नहीं देख सकता), जैसे सिंह की स्त्री को खरगोश और सियार नहीं देख सकते।
मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं ? आपको तपस्या उचित है और मुझे
विषय-भोग ?

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम-बियोग-दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥६७॥

शब्दार्थ—बिलगान= फटा, अलग हुआ। बिषम= कठिन। पामर= नीच।

अर्थ—ऐसी कड़ी बात सुनकर भी यदि मेरा हृदय न फटा तो (मालूम होता
है कि) ये नीच प्राण आपके वियोग के कठिन दुःख को भी सह लेंगे॥६७॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥

अर्थ—ऐसा कहकर सीता जी अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । वे अलग होते की बात को सँभाल न सकीं । उनकी यह दशा देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने मन जान लिया कि हठ करके रखने से यह अपने प्राण नहीं रखेगी ।

कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा । परिहरि सोच चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू । बेगि करहु बन गवन-समाजू ॥

अर्थ—तब सूर्यवंश के स्वामी दयालु श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि अब शोक छोड़कर मेरे साथ वन चलो । आज शोक करने का मौका नहीं है । जल्दी से वन चलने की तैयारी करो ।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई । लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥

अर्थ—प्यारे वचन कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने प्रिया सीता को समझाया फिर माता के चरणों में लग कर आशीर्वाद प्राप्त किया । माता ने कहा—हे पुत्र शीघ्र ही लौट कर प्रजा का दुख मिटाना और इस निष्ठुर माता को भूल मत जाना

फिरिहि दसा बिधि बहुरि की मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥

अर्थ—हे विधाता ! क्या मेरी दशा फिर भी बदलेगी ? क्या नेत्रों से मैं मनोहर जोड़ी को फिर देखूंगी ? हे तात ! वह सुन्दर दिन और वह शुभ कब होगी जब यह माता जीते जी तुम्हारे मुख चन्द्र को फिर देखेगी !

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरषि निरखिहौं गात ॥६८॥

शब्दार्थ—निरखिहौं = देखूंगी ।

अर्थ—हे पुत्र ! फिर मैं कब तुम्हें वत्स, लाल, रघुपति, रघुवर कहकर बुलाऊँ और हृदय से लगाकर आनन्दित हो तुम्हारे अंगों को देखूंगी ॥६८॥

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेह न जाइ बखाना ॥

शब्दार्थ—कातरि= व्याकुल, अधीर। प्रबोध कीन्ह= सान्त्वना दिया, समझाया।

अर्थ—यह देखकर कि माता स्नेह से अधीर हो रही हैं और इतना अधिक व्याकुल हो गयी हैं कि उनके मुंह से वचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया। उस समय के स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय मातु मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा॥

अर्थ—तब जानकीजी सासु के चरणों में लगकर बोलीं—हे माता! सुनिये, मैं अत्यन्त अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय विधाता ने मुझे वनवास दे दिया और मेरा मनोरथ सफल नहीं किया।

तजब छोभ जनि छाड़िअ छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥

शब्दार्थ—छोभ= शोक, दुःख। छोहू=प्रेम।

अर्थ—आप शोक छोड़ दें, परन्तु स्नेह न छोड़ियेगा। कर्म की गति कठिन होती है, मेरा कुछ दोष नहीं है। सीताजी की बात सुन करसास कौशल्या जी घबरा उठीं। उनकी दशा का मैं किस प्रकार वर्णन करूँ।

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरज सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा॥

शब्दार्थ—आसिष= आशीर्वाद। अहिवात= सुहाग।

अर्थ—उन्होंने सीताजी को बारंबार हृदय से लगाया और धीरज धर कर शिक्षा और आशीर्वाद दिया कि जबतक गंगा और यमुना में जल की धारा बहे तबतक तुम्हारा सुहाग कायम रहे।

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपदुम सिर अति हित बारहिं बार॥६९॥

शब्दार्थ—पदुम= पद्म, कमल। अतिहित= बड़े प्रेम से।

अर्थ—सास ने सीताजी को अनेक प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं। सीताजी बड़े प्रेम से सास के चरण कमलों में बार-बार सिर नवा कर चलीं। ६९

समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलष बदन उठि धाये॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥

शब्दार्थ—बिलष बदन= उदास मुख। पुलक= गद्‌गद। सनीरा= जल सहित। धाये= दौड़े।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने जब यह समाचार पाया, तब वे व्याकुल हो उदास मुख से उठ दौड़े। शरीर कांप रहा है और गद्‌गद हो गया है। आंखों में आंसू भर आये हैं। प्रेम से अत्यन्त व्याकुल हो उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के चरण पकड़ लिया

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े॥
सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा॥

शब्दार्थ—चितवत= देख रहे। काढ़े= निकाली। होनिहारा= होने वाला सिरान= समाप्त होना।

अर्थ—वे कुछ कह नहीं सकते, चुप खड़े देख रहे हैं। वे ऐसे दीन हो रहे हैं मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही है। हृदय में सोच रहे हैं कि हे ब्रह्मा क्या होनेवाला है? क्या मेरा समस्त सुख और पुण्य समाप्त हो गया?

मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेइहिं साथा॥
राम बिलोकि बंधु करजोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥

शब्दार्थ—तृन तोरे= नाता तोड़ना, सम्बन्ध छोड़ना।

अर्थ—मुझे श्रीरामचन्द्रजी क्या कहेंगे? अपने साथ ले चलेंगे या घर पर ही छोड़ जायेंगे? श्रीरामचन्द्रजी ने भाई को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सबसे नाता तोड़े देख कर—

बोले बचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल-सुख-सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥

शब्दार्थ—नयनागर= नीति निपुण। कदराहू= अधीर हो।

अर्थ—तब नीति निपुण, शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्रीरामचन्द्र जी बोले,—हे भाई प्रेमवश हो कर तुम अधीर मत हो। अपने हृदय में इसके परिणाम के आनन्द को समझ प्रसन्न हो।

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर न तरु जनम जग जाय॥७०॥

अर्थ–जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही मान कर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया, नहीं तो संसार में जन्म व्यर्थ ही जाता है ॥७०॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं । राउ बृद्ध मम दुख मनमाहीं ॥

शब्दार्थ–रिपुसूदन = शत्रुओं का संहार करनेवाला, शत्रुघ्न ।

अर्थ–हे भाई ! ऐसा जी में जानकर मेरी शिक्षा सुनो (मानो) और माता-पिता के चरणों की सेवा करो । भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, राजा वृद्ध हैं और उनके मन में मेरे वन जाने का दुःख है ।

मैं वन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा । होइ सबहिं बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परइ दुसह दुख -भारू ॥

शब्दार्थ–अनाथा = असहाय, दीन । भारू = भार, बोझ ।

अर्थ–ऐसी दशा में यदि मैं तुम्हें साथ लेकर वन जाऊँ, तो अयोध्या सब तरह से अनाथ हो जायगी । गुरु, माता, पिता, प्रजा और परिवार सब के ऊपर कठिन दुःख का भार आ पड़ेगा ।

रहहु करहु सब कर परितोषू । न तरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥

अर्थ–इसलिए तुम यहीं रहकर सब को सन्तुष्ट करो । नहीं तो, हे भाई ! बड़ा दोष होगा । जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य नरक का अधिकारी होता है ।

रहहु तात असि नीति विचारी । सुनत लखन भये ब्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसें ॥

शब्दार्थ–सिअरे = शीतल, ठंढा । परसत = छूने से । तामरस = कमल । तुहिन = पाला ।

अर्थ–हे तात ! ऐसी नीति विचार कर तुम घर रहो । यह सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो गये । शीतल वचनों से वे कैसे सूख गय जैसे पाले के छूते ही कमल सूख जाता है ।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने देखा कि अब अनर्थ हो गया। स्नेह के वश होकर ये काम बिगाड़ देंगी। वे विदा मांगते हुए डरते और सकुचाते हैं और सोचते हैं कि हे हे दैव ! ये साथ जाने को कहेंगी या नहीं।

दो०—समझि सुमित्रा राम-सिय-रूप सुसील-सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिर पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥७३॥

शब्दार्थ—कुदाउ = (कुदावँ) = कुघात, धोखा।

अर्थ—सुमित्रा ने श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी के रूप, सुन्दर शील और स्वभाव तथा उन पर राजा का प्रेम देखकर सिर धुन लिया और कहा कि पापिनी कैकेयी ने कुघात किया ॥७३॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भांति सनेही ॥

शब्दार्थ—सुहृद = हित चाहनेवाली।

अर्थ—बुरा अवसर जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं—हे पुत्र ! जानकी तुम्हारी माता और श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे सब प्रकार से प्रेमी पिता हैं।

अवध तहां जहँ राम निवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥

शब्दार्थ—जौं पै = यदि।

अर्थ—जहां श्रीरामचन्द्रजी रहें वहीं अयोध्या है, क्योंकि जहां सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि सीता और राम वन जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के ॥

शब्दार्थ—साईं = स्वामी। नाईं = सदृश, समान। सखा = मित्र।

अर्थ—गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सब की प्राणों की तरह सेवा करनी चाहिए। श्रीरामचन्द्रजी तो सभी के प्राणों के भी प्रिय और हृदय के जीवन तथा निःस्वार्थ मित्र हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहां तें । सब मानिअहि राम के नातें ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

शब्दार्थ–ते=तक । लाहू=लाभ ।

अर्थ–संसार में जहांतक (जितने भी) पूजनीय और अत्यन्त प्रिय लोग हैं, वे सब रामजी के ही सम्बन्ध से (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं । हे पुत्र ! जी में ऐसा जानकर तुम उनके साथ वन जाओ और अपने जीवन का लाभ लो ।

दो०–भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलिजाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छांड़ि छल कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

शब्दार्थ–भूरि=अत्यन्त । भाजन=पात्र । भाग भाजन=भाग्यवान, सौभाग्य के पात्र । भयहु=हुए । ठाउँ=स्थान ।

अर्थ–मैं बलैया जाती हूँ, यदि तुम्हारे मन ने छल छोड़ कर श्रीरामचन्द्र-जी के चरणों में स्थान किया तो तुम मेरे साथ अत्यन्त सौभाग्य के पात्र हुए ।

पुत्रवती जुवती जग सोई । रघु-पति-भगत जासुसुतु होई ॥
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी । राम बिमुख सुत तें हित हानी ॥

शब्दार्थ–बांझ=वन्ध्या, निपूती । बादि=व्यर्थ । बिआनी=पुत्र पैदा करना ।

अर्थ–संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीरामचन्द्रजी का भक्त हो । नहीं तो वन्ध्या ही अच्छी है । राम से विमुख पुत्र पैदा करना व्यर्थ है, ऐसे पुत्र से हित की हानि होती है ।

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम-सीय-पद - सहज सनेहू ॥

शब्दार्थ–हेतु=कारण ।

अर्थ–तुम्हारे ही भाग्य से श्रीरामचन्द्रजी वन जा रहे हैं । हे तात ! दूसरा और कुछ भी कारण नहीं है । सम्पूर्ण पुण्यों का सब से बड़ा फल यही है कि राम और सीता के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो ।

रागु रोषु इरषा मदु मोहू । जनि सपनेहुं इनके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥

शब्दार्थ—राग=द्वेष, प्रेम। रोष=क्रोध। इरिषा (ईर्षा)=डाह। मद=घमंड। मोह=अज्ञान, भ्रम। बिकार=बुराई। बिहाई=छोड़कर।

अर्थ—प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, मद और मोह—स्वप्न में भी इनके वश में न होना। सभी प्रकार के विकारों को छोड़कर मन, वचन और कर्म से उनकी सेवा करना।

तुम्ह कहँ बन सब भांति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

शब्दार्थ—सुपासू=सुभीता, आराम।

अर्थ—वन में तुम्हें सब तरह का आराम है, जिसके साथ में पिता माता श्री-रामचन्द्रजी और सीताजी हैं। हे पुत्र! तुम्हें मेरा यही उपदेश है कि तुम यही यत्न करना जिससे वन में श्रीरामचन्द्रजी कोई क्लेश न पावें।

छंद—उपदेसु यहु जेहि जात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय-रघुबीर-पद नित नित नई॥

शब्दार्थ—जात=चलते, शक्तिभर। रति=प्रेम। अबिरल=गाढ़ा, प्रगाढ़। अमल=पवित्र।

अर्थ—तुम्हें मेरा यही उपदेश है कि जिससे तुम्हारी शक्तिभर श्रीराम और सीता वन में सुख पावें और वहां पिता, माता, प्यारे परिवार और नगर के सुखों की याद भूल जायें। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्रा जीने पुत्र को इस प्रकार शिक्षा दे कर वन जाने की आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि सीता-राम के चरणों में तुम्हारी नित्यप्रति नई-नई प्रगाढ़ और पवित्र-भक्ति हो।

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागवस॥७५॥

शब्दार्थ—संकित=भयभीत, डरते हुए। बागुर=जाल, फन्दा। बिषम=कठिन तोराइ=तुड़ाकर।

अर्थ—माता के चरणों में सिर नवा कर डरते हुए हृदय से (कि कोई दूसरा विघ्न न आ पड़े) इस प्रकार चले जैसे कोई मृगा भाग्यवश कठिन फन्दे को तुड़ा कर भाग निकला हो॥७५॥

गये लषनु जहँ जानकि नाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम-सिय-चरन सुहाये । चले संग नृप मंदिर आये ॥

शब्दार्थ—भे=हुए । बंदि=प्रणाम करके ।

अर्थ—लक्ष्मणजी वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे और प्रिय का साथ पाकर मन में अत्यन्त आनन्दित हुए । श्री रामचन्द्र और सीताजी के सुन्दर चरणों की वन्दना कर, उनके साथ चले और राजा के भवन में आये ।

कहहिं परसपर पुर-नर-नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुख बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥

शब्दार्थ—कृस= दुबला, क्षीण ।

अर्थ—नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कहते हैं कि विधाताने बात को अच्छे प्रकार बनाकर बिगाड़ दिया । उनके शरीर दुबले, मन दुखी और मुंह उदास हैं । वे ऐसे विकल हैं जैसे शहद छीन लेने पर मधुमक्खियां व्याकुल हों ।

कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं । जनु बिनु पंख बिहंग अकुलाहीं ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषाद अपारा ॥

शब्दार्थ—मीजहिं= मलते हैं । भीर= भीड़ । धुनि= पीटकर ।

अर्थ—सब हाथ मलते और सिर धुनकर पछता रहे हैं, मानो पक्षी बिना पंख के घबरा रहे हों । राज-द्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है । उस समय के अपार शोक का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचनु रामु पग धारे ॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयेउ भूमि पति भारी ॥

शब्दार्थ—पगु धारे= आये हैं । तनय = पुत्र ।

अर्थ—मन्त्री ने प्रिय वचनों से यह कहकर कि श्रीरामचन्द्रजी आये हैं राजा को उठाकर बैठा दिया । राजा सीताजी के सहित दोनों पुत्रों को देखकर बहुत व्याकुल हुए ।

दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाई ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ ॥७६॥

शब्दार्थ—सुभग= सुन्दर ।

अर्थ–सीता सहित दोनों सुन्दर पुत्रों को दख-देखकर व्याकुल हो राजा प्रेम वश बारम्बार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं ॥७६॥

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब मांगा ॥

शब्दार्थ–सोक जनित= शोक से उत्पन्न ।

अर्थ–राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते । हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ कठिन कष्ट है । तव श्रीरामचन्द्रजी ने उठकर अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर विदा मांगी ।

पितु असीस आयसु मोहिं दीजै । हरष समय बिषमउ कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । जस जग जाइ होइ अपवादू ॥

शब्दार्थ–बिसमउ= शोक । प्रमादू= भ्रम, भूल । अपवादू= कलंक । कत= क्यों ।

अर्थ–हे पिता ! मुझे आशीर्वाद और वन जाने की आज्ञा दीजिये । हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं । हे तात ! इस समय अपने प्रिय जनों के साथ प्रेम करना भूल होगी और इससे संसार में यश जाता रहेगा और कलंक होगा ।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहा । बैठारे रघुपति गहि बाहा ॥
सुनहु तात तुम्ह कहं मुनि कहहीं । राम चराचर नायक अहहीं ॥

शब्दार्थ–बाहा= बाहँ । चराचर नायक= संसार के स्वामी ।

अर्थ–यह सुनकर प्रेम वश राजा उठ बैठे और श्रीरामचन्द्रजी की वांह पकड़ उन्हें वैठाया । वोले–हे पुत्र ! सुनो, मुनि लोग तुम्हारे लिए कहते हैं कि राम संसार के स्वामी हैं ।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फल हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई । निगम नीति असि कह सबु कोई ॥

शब्दार्थ–अनुहारी= अनुसार ।

अर्थ–अच्छे और वुरे कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचार कर फल देता है । जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है । ऐसी वेद की नीति है, यह सव कोई कहते हैं ।

दो०–अउर करइ अपराध कोउ अउर पाव फल भोग ।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु ॥७७॥

शब्दार्थ—अउर= और। गति= चाल, लीला। जानइ= जानने।

अर्थ—किन्तु (यहां तो) और कोई तो अपराध करे और उसके फल का भोग दूसरा ही पावे ! भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य संसार में कौन है !

राय राम राखन हितलागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी॥
लखा राम रुख रहत न जाने। धरम-धुरंधर धीर सयाने॥

शब्दार्थ—लखा= देखा।

अर्थ—राजा ने श्रीरामचन्द्रजी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत यत्न किगा। किन्तु जब धर्म धुरंधर, धीर और बुद्धिमान श्रीरामजी का रुख देखकर यह जान लिया कि ये रहेंगे नहीं—

तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं। अति हित बहुत भांति सिख दीन्ही॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये॥

अर्थ—तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और बहुत प्रकार से अत्यन्त हित की शिक्षा दी। वन के कठिन दुःख को कह सुनाया और सास, ससुर तथा पिता के यहां रहने के सुखों को भी समझाया।

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगम बन बिषम न लागा॥
अउरउ सबहि सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥

शब्दार्थ—सुगम= अच्छा, सुखकर। अउरउ= औरों ने भी।

अर्थ—परन्तु सीताजी का मन तो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त था; इसलिए उन्हें घर सुखकर और वन भयानक नहीं लगा। और सब लोगों ने भी सीताजी को वन की बड़ी विपत्ति को कहकर समझाया।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदुबानी॥
तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर-गुरु-सासू॥

अर्थ—मन्त्री की स्त्री और चतुर गुरु-पत्नी प्रेमपूर्वक मीठी वाणी से कहती हैं कि तुम को तो वनवास दिया नहीं है, फिर जो ससुर; गुरु और सास कहती हैं वह करो।

दो०—सिख सीतल हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद-चंदनि लगत जनु चकई अकुलानि॥७८॥

शब्दार्थ—सोहाना= अच्छा लगना । चंदिनि= चांदनी । लगत= स्पर्श से ।

अर्थ—यह शीतल, हितकर, मीठी और कोमल शिक्षा सुनकर सीताजी को अच्छी नहीं लगी । वे ऐसी व्याकुल हो उठीं जैसे शरद्ऋतु के चन्द्रमा की चांदनी के स्पर्श से चकवी व्याकुल हो जाती है । ७८

सीय सकुच बस उतरु न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि-पट-भूषन-भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ॥

शब्दार्थ—सकुच बस= संकोच वश । तमकि= क्रोधित होकर । आनी=ला कर ।

अर्थ—सीताजी संकोच वश कुछ उत्तर नहीं देती । यह सुनकर कैकेयी क्रोधित हो कर उठी । वह मुनियों के वस्त्र, आभूषण और पात्र ला, सामने रखकर कोमल वाणी से बोली—

नृपहिं प्रान प्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाड़िहिं भीरा ॥
सुकृत सुजस परलोकु नसाऊ । तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ ॥

शब्दार्थ—भीरा= डरपोक । नसाऊ= नष्ट हो जाये ।

अर्थ—हे रामचन्द्र ! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो । इसलिए इस समय वे भीरु हो रहे हैं और शील और स्नेह को नहीं छोड़ेंगे अथवा वे शील और स्नेह के आधिक्य को नहीं छोड़ेंगे । उनका पुण्य, सुयश और परलोक चाहे नष्ट हो जाये, परन्तु तुम्हें वन जाने के लिए वे कभी नहीं कहेंगे ।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहि बचन बान सम लागे । करहिं न प्रान पयान अभागे ॥

शब्दार्थ—पयान= प्रस्थान, चल देना ।

अर्थ—ऐसा सोचकर तुम्हें जो अच्छा लगे करो । श्रीरामचन्द्रजी माता की यह सीख सुनकर बहुत सुखी हुए । परन्तु राजा को ये वचन वाण के समान लगे । वे मन-ही-मन कहने लगे कि मेरे ये अभागे प्राण निकलते नहीं हैं ।

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू । काह करिय कछु सूझ न काहू ॥
राम तुरत मुनि बेषु बनाई । चले जनक जननिहिं सिरु नाई ॥

शब्दार्थ—मुरुछित= मूर्च्छित, बेहोश । काहू= किसी को ।

अर्थ—लोग व्याकुल हैं, राजा मूर्च्छित हो गये । किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता

कि क्या किया जाय। श्रीरामचन्द्रजी उसी क्षण मुनि का वेष धारण कर, माता-पिता को सिर नवा चल दिये।

दो०—सजि बन-साजु-समाज-सब बनिता-बंधु-समेत।
बंदि बिप्र-गुरु-चरन-प्रभु चले करि सबहिं अचेत ॥७९॥

शब्दार्थ—बनिता = स्त्री। अचेत = बेहोश, व्याकुल।

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भाई और स्त्री के साथ वन का सब सामान सज कर, ब्राह्मण लोगों और गुरु के चरणों की वन्दना कर, सब को व्याकुल कर, चल दिये।

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढ़े। देखे लोग बिरहदव दाढ़े॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाये। बिप्र बृन्द रघुबीर बोलाये॥

शब्दार्थ—निकसि = निकलकर। बिरहदव = विरहाग्नि। दाढ़े = जल रहे।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी राजमहल से निकलकर वशिष्ठजी के द्वार पर आ खड़े हुए। उन्होंने सब लोगों को विरहाग्नि में जलते हुए देखा। प्रिय वचन कहकर सबको समझाया और फिर ब्राह्मणों को बुलाया।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हें॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥

शब्दार्थ—बरषासन (वर्ष+असन) = वर्ष भर के लिए भोजन। जाचक = भिक्षुक। संतोषे = सन्तुष्ट किया। मीत = मित्र। परितोषे = प्रसन्न किया।

अर्थ—गुरुजी से कहकर उन ब्राह्मणों को वर्षभर के लिए भोजन की सामग्री दी और आदर, दान और विनय से उन्हें प्रसन्न किया। याचकों को दान, सम्मान से तथा मित्रों को पवित्र प्रेम से सन्तुष्ट किया।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि बोले करजोरी॥
सब कै सार संभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥

शब्दार्थ—सार-सँभार = रक्षा, देख-भाल। बहोरी = फिर।

अर्थ—फिर दास-दासियों को बुलाकर, उन्हें गुरुजी को सौंपकर, हाथ जोड़ कर बोले—हे स्वामी! आप इन लोगों की देख-भाल माता और पिता के समान करते रहियेगा।

बारहिं बार जोरि जुग पानी । कहत राम सब सन मृदुबानी ॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी । जेहिं तें रहइ भुआल सुखारी ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़कर मीठी वाणी से सब से कहते हैं, कि वही मनुष्य मेरा सब तरह से हितकारी होगा जिसके द्वारा महाराज सुखी रहें।

दो०—मातु सकल मोरे बिरह जेहि न होहि दुख दीन ।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥

शब्दार्थ—पुरजन= नगर-निवासी । प्रबीन= चतुर ।

अर्थ—हे परम चतुर पुरवासी गण ! आप वही उपाय करेंगे जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह में दुःखी और दीन न हों ॥८०॥

एहि बिधि राम सबहिं समुझावा । गुरु-पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीस मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥

अर्थ—इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी ने सबको समझाया और प्रसन्न होकर गुरुजी के चरण कमलों में सिर नवाया । फिर गुरुजी का आशीर्वाद पा कर श्री रामचन्द्रजी, गणेशजी, पार्वतीजी और शंकरजी को मनाकर चले ।

रामु चलत अति भयउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लंक अवध अति सोकू । हरष बिषाद-बिबस सुरलोकू ॥

शब्दार्थ—आरतनादू= हाहाकार । सुरलोकू= देवलोक, स्वर्ग ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के चलते ही बड़ा भारी शोक छा गया । नगर का हाहाकार सुना नहीं जाता । उसी समय लंका में बुरे शकुन हुए और अयोध्या में शोक छा गया । इससे देवलोक में सब हर्ष और शोक के वश हो गये । (लंका का अशकुन देख हर्ष और अयोध्या की विपत्ति से देवताओं को शोक हुआ ।)

गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले बनप्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥

अर्थ—मूर्च्छा के दूर होने पर राजा को होश हुआ । वे सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे—राम तो वन को गये किन्तु मेरे प्राण शरीर को नहीं छोड़ रहे हैं । मालूम नहीं किस सुख के लिए ये इसमें पड़े हैं ।

एहि तें कवन व्यथा बलवाना । जो दुख पाइ तजिहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहै नरनाहू । लेइ रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥

अर्थ—इससे वढ़कर वलवान कष्ट दूसरा कौन होगा, जिससे दु:ख पा कर प्राण इस शरीर को छोड़ देंगे। फिर धैर्य धारण कर राजा ने सुमन्त्र से कहा कि हे मित्र! तुम रथ ले कर उनके साथ जाओ।

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गये दिन चारि॥८१॥

शब्दार्थ—सुठि= सुन्दर।

अर्थ—दोनों सुन्दर कोमल कुमारों और सुकुमार जानकी को रथ पर चढ़ा कर और वन दिखा कर चार दिन वीतने पर लौटा लाना॥८१॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्य संध दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी॥

शब्दार्थ—सत्यसंध= अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेवाले। दृढ़ ब्रत= नियम पालन में दृढ़ रहनेवाले। किसोरी= कन्या, लड़की। मिथिलेस= जनक।

अर्थ—यदि दोनों धीर भाई न लौटें—क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी सत्य प्रतिज्ञ और दृढ़व्रती हैं—तो तुम हाथ जोड़कर प्रार्थना करना कि हे प्रभु! जनककुमारी श्री सीताजी को तो लौटा दीजिए।

जव सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥

अर्थ—सीताजी जव वन को देखकर डरें, तव मौका पाकर उनसे कहना, कि तुम्हारे सास और ससुर ने यह संदेशा कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वन में वहुत क्लेश है।

पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहू जहां रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि विधि करेहु उपाय कदंवा। फिरइ त होइ प्रान अवलंवा॥

शब्दार्थ—कदंवा=अनेक, वहुत।

अर्थ—कभी पिता के घर और कभी ससुराल में, जहां तुम्हारी इच्छा हो रहना। इस प्रकार तुम अनेक उपाय करना, यदि सीता लौट आवें तो मेरे प्राणों को सहारा हो जायगा।

नाहित मोर मरन परिनामा। कछु न वसाइ भये विधि वामा॥
असकहि मुरछि परे महि राऊ। राम लषनु-सिय आनि देखाऊ॥

शब्दार्थ—परिनामा=अन्त में ।

अर्थ—नहीं तो अन्त में मेरा मरण निश्चित है । कुछ वश नहीं चलता, विधाता उल्टा हो गया है । शीघ्र ही श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ, ऐसा कहकर राजा मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ।

दो०—पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ ।
गयेउ जहां बाहर नगर सीय सहित दोउ भाइ ॥८२॥

अर्थ—आज्ञा पाकर सुमन्त्र ने राजा को सिर नवाया और शीघ्रता से रथ ठीककर वहां गये जहां नगर के बाहर सीताजी के साथ दोनों भाई थे ।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाये । करि बिनती रथ राम चढ़ाये ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥

अर्थ—तब सुमन्त्र ने राजा के वचन कह सुनाये और प्रार्थना करके श्रीरामचन्द्रजी को रथ पर चढ़ाया । दोनों भाई सीता के साथ रथ पर सवार हो हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले ।

चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं । फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी को जाते और अयोध्या को अनाथ होते हुए देखकर सब लोग व्याकुल हो उनके साथ लग गये । कृपा के सागर श्रीरामचन्द्रजी उन्हें अनेक प्रकार से समझाते हैं, अतः लोग लौटकर भी प्रेमवश हो फिर चले आते हैं ।

लागति अवध भयावनि भारी । मानहु काल राति अँधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर-नर-नारी । डरपहिं एकहि एक निहारी ॥

अर्थ—अयोध्या बड़ी भयावनी लग रही है । मानो अँधेरी काल रात्रि हो । नगर के स्त्री-पुरुष भयानक जन्तुओं के समान हो रहे हैं । वे परस्पर एक दूसरे को ही देख कर डर रहे हैं ।

घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥

शब्दार्थ—हित= हितैपी । विटप= वृक्ष । सरित= नदी । सरोवर= तालाब ।

अर्थ—मानो घर श्मशान, कुटुम्बी भूत तथा पुत्र, हितैपी और मित्र यमदूत

सरीखे हैं। वगीचों में वृक्ष और लताएँ कुम्हला रही हैं। नदी और तालाव ऐसे भयानक हो रहे हैं कि उनकी ओर देखा नहीं जाता।

दो०–हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर ।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर ॥८३॥

शव्दार्थ–हय= घोड़ा। गय (गज)= हाथी। केलि= क्रीड़ा, खेल। चातक= पपीहा। पिक = कोयल। रथांग= चकवा। सुक= सुग्गा, तोता। सारिका= मैना।

अर्थ–घोड़े, हाथी खेलने के लिए पाले गये करोड़ों हिरन, नगर के पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवा, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर ॥८३॥

राम-वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगरु सकल बनु गहवर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥

शव्दार्थ–काढ़े= वनाये गये। गहवर= सघन, घना, विपुल।

अर्थ–सभी श्रीरामचन्द्रजी के वियोग में जहां तहां खड़े हैं, मानो चित्र में लिखकर वनाये गये हों। समस्त अयोध्या नगर वड़ा सघन वन है और वहां के नर-नारी अनेक पशु-पक्षी हैं।

बिधि कँकेई किराततिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहु दिसि दीन्हीं॥
सहि न सके रघुवर-विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥

शव्दार्थ–किराततिनि= भीलनी। विरहागी= विरह की आग।

अर्थ–ब्रह्मा ने कैकेयी को भीलनी वनाया जिसने दसों दिशाओं [illegible] दावाग्नि लगा दी। लोग श्री रामचन्द्रजी के विरह की इन [illegible] और व्याकुल होकर भाग चले।

सबहिं विचारु कीन्ह मनमाहीं। राम लखनु [illegible]
जहां रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु [illegible]

अर्थ–सबने अपने मन में यही [illegible] और श्रीसीताजी के विना सुख नहीं है [illegible] रहेगा। विना श्रीरामजी के [illegible]

चले साथ अस [illegible]
राम-चरन-पंकज [illegible]

अर्थ–ऐसा विचार [illegible]

को छोड़ सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के साथ हो लिये। जिनको श्रीरामचन्द्र के चरण कमल प्रिय हैं उन्हें सांसारिक विषय भोग कभी वश में कर सकते है

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा-तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥८४॥

अर्थ—बच्चों और बूढ़ों को घर पर छोड़, सब लोग श्रीरघुनाथजी के लग गये। पहले दिन श्रीरामचन्द्रजी ने तमसा नदी के तट पर निवास किया

रघुपति प्रजा प्रेम बस देखी। सदय हृदय दुख भयउ बिसेखी॥
करुनामय रघुनाथ गोसांईं। बेगि पाइअहि पीर पराई॥

शब्दार्थ—पाइअहि= पा जाते हैं, अनुभव करते हैं। पीर= पीड़ा। पराई= दूसरे का।

अर्थ—प्रजा को प्रेमवश देखकर श्रीरामचन्द्रजी के दयालु हृदय को बड़ा दुःख हुआ। दयामय स्वामी रघुनाथजी शीघ्र ही दूसरे के दुःख को अनुभव कर लेते हैं।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाये। बहु बिधि राम लोग समुझाये॥
किये धरम-उपदेश घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने प्रेम भरे सुन्दर कोमल वचन कहकर अनेक प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्मोपदेश भी दिये; परन्तु लोग प्रेम वश लौटाये लौटते नहीं।

सील सनेह छांड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥
लोग सोग-स्रम-बस गये सोई। कछुक देव माया मति मोई॥

शब्दार्थ—असमंजस=दुविधा, कठिनाई। मोई=मोह लिया।

अर्थ—शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्रीरामचन्द्रजी बड़ी दुविधा में पड़ गये। लोग शोक और थकावट के कारण सो गये और कुछ देवताओं की माया ने भी उनकी बुद्धि को मोह लिया।

जबहि जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथ हांकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥

शब्दार्थ—जाम= पहर। जुग= दो। जामिनि= रात्रि। सप्रीती= प्रेमपूर्वक।

अर्थ—जब दो पहर रात बीत गयी तब श्रीरामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा,—

हे तात ! रथ को ऐसा हांको कि पहिये का निशान न पड़ने पाये; नहीं तो, दूसरे उपाय से वात वनने वाली नहीं है।

दो०—रामलषनु सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ ॥८५॥

शव्दार्थ—जान (यान) = सवारी, रथ। दुराइ = छिपाकर।

अर्थ—शंकरजी के चरणों में सिर नवाकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी रथ पर सवार हुए। तव मन्त्री ने तुरंत ही पहिये के निशानों को इधर उधर छिपाते हुए रथ चलाया ॥८५॥

जागे सकल लोग भये भोरू । गे रघुनाथ भयेउ अति सोरू ॥
रथकर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥

शव्दार्थ—भोरू = सवेरा। सोरू = शोर। धावहिं = दौड़ते हैं।

अर्थ—सवेरा हुआ, सव लोग जगे और वड़ा शोर मचा कि श्रीरघुनाथजी चले गये। वे रथ का चिन्ह कहीं नहीं पाते हैं। हा राम ! हा राम ! कहते हुए चारों दौड़ते हैं।

मनहुँ वारिनिधि बूड़ जहाजू । भयेउ विकल वड़ बनिक समाजू ॥
एकहिं एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥

शव्दार्थ—वारिनिधि = समुद्र। वनिक = व्यापारी।

अर्थ—मानों समुद्र में जहाज डूव जाने से व्यापारियों का समुदाय व्याकुल हो उठा हो। एक दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी ने हमें दुखदायी जान कर छोड़ दिया है।

निदहिं आपु सराहहिं मीना । धिग जीवन रघुवीर-विहीना ॥
जौं पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा । तौ कस मरन न मांगे दीन्हा ॥

शव्दार्थ—धिग = धिक्कार है। कस = क्यों।

अर्थ—वे अपनी निन्दा और मछलियों की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के विना हमारे जीने को धिक्कार है। ब्रह्मा ने यदि प्रिय का वियोग रचा तो फिर मांगने से मौत क्यों नहीं दी ?

एहि विध करत प्रलाप कलापा । आये अवध भरे परितापा ॥
बिषम वियोग न जाइ वखाना । अवधि आस सव राखहिं प्राना ॥

शब्दार्थ—प्रलाप= अडबंड बकना। कलापा= समूह, बहुत सा। परितापा=दुःख, कष्ट।

अर्थ—इस प्रकार वे तरह-तरह से अंडबंड बकते हुए दुःख से भरे अयोध्या में आये। उनके कठिन वियोग के दुःख का वर्णन नहीं हो सकता। सभी १४ वर्ष की अवधि की आशा पर अपने प्राण रख रहे हैं।

दो०—राम-दरस-हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

शब्दार्थ—कोक= चकवा। कोकी= चकवी। तमारि= सूर्य।

अर्थ—जैसे सूर्य के बिना चकवा, चकवी और कमल दीन हो जाते हैं वैसे दीन होकर सभी स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम-व्रत करने लगे।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। [illegible] पुर पहुंचे जाई ॥
उतरे राम देव सरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी ॥

शब्दार्थ—देवसरि= गंगाजी। हरख= प्रसन्नता।

अर्थ—दोनों भाई सीताजी और मन्त्री सुमन्त्रजी के साथ श्रृंगवेरपुर में जा पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजी ने गंगाजी को देखकर विशेष प्रसन्नता के साथ दण्डवत् की।

लषन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा ॥
गंग सकल - मुद-मंगल-मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला ॥

शब्दार्थ—मुद= आनन्द। करनि= करनेवाली। हरनि= हरनेवाली। सूला= कष्ट।

अर्थ—फिर लक्ष्मणजी, सीताजी और मन्त्री ने गंगाजी को प्रणाम किया। सबके साथ श्रीरामचन्द्रजी ने सुख पाया। गंगाजी समस्त आनन्द-मंगलों की मूल और सब सुखों को देने तथा समस्त संकटों को दूर करनेवाली हैं।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहिं अनुजहि प्रियहिं सुनाई। बिबुध -नदी-महिमा अधिकाई ॥

शब्दार्थ—प्रसंगा= वार्ता, विषय सम्बन्ध। तरंगा= लहरें। विबुध= देवता।

अर्थ—करोड़ों कथा-वार्ता कहते हुए श्रीरामचन्द्रजी गंगाजी की लहरों को

देख रहे हैं। उन्होंने मंत्री को, भाई को और प्रिया जानकी को देवनदी की बड़ी महिमा सुनाई।

मज्जनु कीन्ह पंथ स्रम गयेऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयेऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ स्रम भारू। तेहि स्रम यह लौकिक व्यवहारू॥

शब्दार्थ—मज्जनु = स्नान। पंथ = मार्ग, रास्ता।

अर्थ—फिर सबने स्नान किया, जिससे रास्ते की थकावट दूर हो गयी और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिन श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण मात्र से बड़ा श्रम (आवागमन का कष्ट) दूर हो जाता है, उनको, 'श्रम होना'—यह तो केवल लौकिक व्यवहार (नर-लीला) है।

दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागर-सेतु॥८७॥

शब्दार्थ—सच्चिदानंदमय = सत्-चित्-आनन्द से युक्त, परब्रह्म। केतु = पताका। अनुहरत = समान। संसृति = संसार। सेतु = पुल।

अर्थ—शुद्ध सच्चिदानन्द कंद, सूर्यवंश की पताका, संसार रूपी समुद्र से पार उतारने के लिए पुल, परब्रह्म भगवान श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य के समान चरित्र कर रहे हैं॥८७॥

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा॥

शब्दार्थ—निषाद = मल्लाह। भारा = बहँगी, कांवर।

अर्थ—निषादराज गुह ने जब यह खबर पायी, तब प्रसन्न होकर अपने प्रिय जनों और भाई-बन्धुओं को बुला लिया। भेंट देने के लिए वह नाना प्रकार के फल मूल (कंद) बहँगियों में भरकर हृदय में असीम आनन्दित हो मिलने चला।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे॥
सहज-सनेह -बिबस रघुराई। पूछी कुशल निकट बैठाई॥

अर्थ—उसने दंडवत करके भेंट की सामग्रियों को सामने रख दिया और अत्यन्त प्रेम से प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की ओर देखने लगा। श्रीरामचन्द्रजी ने स्वाभाविक स्नेह से वश होकर उसे अपने पास बैठाया और कुशल पूछी।

नाथ कुसल पदपंकज देखे। भयेउँ भाग भाजन जन लेखे॥
देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥

शब्दार्थ—भाग भाजन= भाग्यवान। जन= मनुष्य, सेवक, भक्त। लेखे= गिनती, गणना। धरनि= पृथ्वी।

अर्थ—निषादराज ने कहा—हे स्वामी आपके चरण कमल के दर्शन से सब कुशल है। आज मैं भाग्यवान पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव ! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपके ही हैं और मैं नीच परिवार सहित आपका सेवक हूँ।

कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ॥
कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना। मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना॥

शब्दार्थ—थापिय= स्थापित करना, प्रतिष्ठा बढ़ाना। सिहाऊ= बड़ाई करना, प्रसन्न होना, ललचना।

अर्थ—अब कृपा कर मेरे नगर में पधारिये और अपने सेवकों में मुझे स्थापित कीजिये (रखिये), जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें। तब श्रीरामचन्द्र-जी ने कहा,—हे चतुर मित्र ! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है; किन्तु पिताजी ने तो मुझे दूसरी ही आज्ञा दी है।

दो०—बरष चारिदस बास बनु मुनि ब्रत-बेषु-अहारु।
ग्रामबास नहिं उचित सुनि गुहहि भयेउ दुख भारु॥८८॥

अर्थ—उनकी आज्ञानुसार मुझे चौदह वर्ष तक वन में ही रहना, मुनियों का व्रत, वेष और भोजन करना है। इसलिए ग्राम में जाकर रहना उचित नहीं है। यह सुनकर निषादराज गुह को बड़ा दुःख हुआ। ८८

राम-लषन-सिय-रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर-नारी॥
ते पितु मातु कहउ सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥

अर्थ—ग्राम के स्त्री-पुरुष, श्रीरामजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी के रूप को देखकर, प्रेमपूर्वक परस्पर कहते हैं कि हे सखी ! वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया है !

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहिं बिधि दीन्हा॥
तब निषाद पति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥

शब्दार्थ—लोयन= नेत्र। अनुमाना= विचार कर। सिसुपा=शीशम।

अर्थ—एक ने कहा कि राजा ने अच्छा ही किया, जिससे ब्रह्मा ने हमें भी नेत्र पाने का लाभ दिया। तब निषादराज ने अपने हृदय में विचार करके शीशम के वृक्ष को ठहरने के योग्य समझा।

लेइ रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भांति सुहावा॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुबर संध्या करन सिधाये॥

शब्दार्थ—ठाउँ= स्थान। जोहारु= प्रणाम। सिधाये= गये।

अर्थ—उस (गुह) ने श्रीरघुनाथजी को ले जाकर वह स्थान दिखलाया। श्रीरामजी ने कहा कि यह सब प्रकार से सुन्दर है। पुरवासी लोग प्रणाम करके अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्रजी सन्ध्या करने गये।

गुह सवांरि साथरी डसाई। कुश किसलय-मय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

शब्दार्थ—सँवारि= सजाकर। सुचि= पवित्र।

अर्थ—(तब तक) गुह ने कोमल कुश और पत्तों का सुन्दर बिछोना सजाकर बिछा दिया। और जिन फल और मूल को पवित्र, मीठा और कोमल समझा उन्हें दोनों में भर-भर कर ला रखा।

दो०—सिय-सुमंत्र-भ्राता-सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघु-वंस-मनि पाय पलोटत भाइ॥८९॥

अर्थ—सीताजी, सुमन्त्रजी और भाई लक्ष्मणजी के साथ कंद, मूल और फलों को खाकर रघुवंश शिरोमणि श्री रामचन्द्रजी ने शयन किया और भाई लक्ष्मण-जी उनके पैर दवाने लगे॥८९॥

उठे लखन प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदुवानी॥
कछुक दूरि सजि वान सरासन। जागन लगे वैठि वीरासन॥

शब्दार्थ—सरासन=धनुष।

अर्थ—श्रीलक्ष्मणजी प्रभु श्रीरामजी को सोते जान कर उठे और कोमल वाणी से मन्त्री को भी सोने के लिए कह कर, वहां से कुछ दूर हट, धनुष वाण से सज कर और वीरासन से वैठकर जागने लगे अर्थात् पहरा देने लगे।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठांवठांव राखे अति प्रीती॥
आपु लषन पहिं वैठेउ जाई। कटि भाया सर चाप चढ़ाई॥

शब्दार्थ—पाहरू=पहरेदार। प्रतीती=विश्वासी। पहिं=पास। कटि=कम भाथा=तरकस। चाप=धनुष।

अर्थ—गुहने अपने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर बड़े प्रेम से उन्हें ज जगह बैठा दिया और स्वयं कमर में तरकस और धनुष वाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा।

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयेउ प्रेम बस हृदय बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥

अर्थ—निषादराज प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को सोते देख प्रेमवश हो उठा और उसके हृदय में भारी शोक पैदा हुआ। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से आंसू गिरने लगे। वह प्रेमपूर्वक लक्ष्मणजी से यह वचन कहने लगा—

भूपति भवन सुभाय सुहावा। सुरपति-सदन-न पटतर पावा॥
मनि-मय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ संवारे॥

शब्दार्थ—पटतर=समता, बराबरी। रचित=बने। चौबारे=छतके ऊपर के बँगले। रतिपति=कामदेव।

अर्थ—महाराज दशरथजी का भवन स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है जिसकी समता इन्द्र-महल भी नहीं कर पाता। मणियों से जड़े सुन्दर चौबारे ऐसे लगते हैं मानो उन्हें कामदेव ने अपने हाथों सजाया हो।

दो०—सुचि सुबिचित्र सु-भोग-मय सुमन सुगंध सुबास।
पलंग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥९०॥

अर्थ—जो पवित्र, अलौकिक सुन्दर भोग-पदार्थों से पूर्ण तथा सुगन्धित पुष्पों से सुगन्धित है; जहां सुन्दर पलँग और मणियों के दीपक रखे हैं और सब तरह का आराम है॥९०॥

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बिसद सुहाई॥
तहँ सिय-राम सयन निसि करहीं। निज छबि-रति-मनोज-मदहरहीं॥

शब्दार्थ—उपधान=तकिया। छीर (क्षीर)=दूध। बिसद=निर्मल; स्वच्छ। रति=कामदेव की स्त्री।

अर्थ—जहां अनेक प्रकार के कोमल, निर्मल और सुन्दर वस्त्र तथा गद्दे और

तकिये हैं, वहां रात को सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे ।

ते सिय-रामु साथरी सोये । स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोये ॥
मातु पिता परिजन पुरवासी । सखा सुसील दास अरु दासी ॥

शब्दार्थ—स्रमित=थके हुए । जोये=देखे ।

अर्थ—वही सीताजी और श्रीरामजी थके हुए बिना वस्त्र के कुश और पत्तों के बिछौने पर सो रहे हैं । उन्हें देखे नहीं बनता । माता, पिता, कुटुम्बी और नगर निवासी, मित्र, अच्छे शीलवान दास और दासियां—

जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाई । महि सोवत तेइ राम गोसाईं ॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ । ससुर सुरेस सखा रघुराऊ ॥

शब्दार्थ—जोगवहिं=बचाते थे, रक्षा करते थे । विदित=प्रसिद्ध । सुरेस=इन्द्र ।

अर्थ—जिन्हें प्राणों के समान बचाती रहती थीं, वे ही स्वामी श्रीरामचन्द्रजी आज पृथ्वी पर सो रहे हैं । जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव संसार में प्रसिद्ध है और ससुर इन्द्र के सखा महाराज दशरथ जी हैं—

रामचन्द्र पति सो बैदेही । सोवत महि बिधि बामन केही ॥
सिय रघुबीर की कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥

शब्दार्थ—कर्म=भाग्य । वाम=प्रतिकूल, उल्टा ।

अर्थ—और जिनके पति श्रीरामचन्द्रजी हैं, वही सीताजी पृथ्वी पर सो रही हैं । विधाता किसके प्रतिकूल नहीं होता ! सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी क्या वन के योग्य हैं ? लोग सत्य कहते हैं कि भाग्य ही प्रधान है ।

दो०—कैकय नंदनि मंदमति कठिन कुटिल पन कीन्ह ।
जेहि रघुनन्दन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह ॥९१॥

अर्थ—मन्दमति कैकेयी ने बड़ी दुष्टता की है, जिसने श्रीरामचन्द्रजी और जानकीजी को सुख के समय दुख दिया ॥९१॥

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी । कुमति कीन्ह सब बिश्व दुखारी ॥
भयउ बिषाद निषादहि भारी । राम सीय महि सयन निहारी ॥

अर्थ—कैकेयी सूर्यवंश रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हो गयी । उस दुर्बुद्धि ने सारे

संसार को दुखी कर दिया। श्रीराम सीता को जमीन पर सोये हुए देख कर निषाद को बड़ा दुःख हुआ।

बोले लषन मधुर-मृदु-बानी। ज्ञान-बिराग-भगति रस सानी॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता॥

अर्थ—तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस में सनी मधुर कोमल वाणी बोले—हे भाई! कोई किसी को सुख दुख देनेवाला नहीं होता। सब अपने किये कर्मों का फल भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जगजालू। संपति बिपति करमु अरुकालू॥

शब्दार्थ—जोग=संयोग, मिलना। मध्यम=उदासीन। अरु=और।

अर्थ—मिलना, बिछुड़ना, अच्छे बुरे भोग, मित्र, शत्रु और उदासीन, सब भ्रम के फन्दे हैं। जन्म, मरण, सम्पत्ति, विपत्ति, कर्म और काल तथा और भी जहां तक संसार के जाल हैं—

धरनि धामु धनु पुरपरिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

शब्दार्थ—गुनिय=विचार करना। परमारथ=यथार्थ। मोह=अज्ञान, माया।

अर्थ—पृथ्वी, घर, धन, नगर, कुटुम्ब, स्वर्ग और नरक आदि जहां तक व्यवहार हैं, जो देखे, सुने और मन के अन्दर विचारने में आते हैं, उन सबका मूल माया है, यथार्थ में ये कुछ नहीं हैं।

दो०—सपने होइ भिखारि नृपु रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ॥९२॥

शब्दार्थ—नाकपति=स्वर्ग का स्वामी। तिमि=वैसे ही। प्रपंच=संसार। जोइ=देखना, समझना।

अर्थ—जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाय और कंगाल स्वर्ग का स्वामी परन्तु जगने पर हानि-लाभ कुछ भी नहीं होता, वैसे इस संसार को हृदय से देखन चाहिये॥९२॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू। काहुहि बादि न देइय दोषू॥
मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा॥

शब्दार्थ—रोष्=क्रोध। बादि=व्यर्थ।

अर्थ—ऐसा विचार कर क्रोध नहीं करना चाहिये और किसी को व्यर्थ दोष नहीं देना चाहिये। जो सब मोह रूपी रात्रि में सोनेवाले हैं उन्हें अनेक प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी॥
जानिय तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥

शब्दार्थ—जामिनि = रात्रि। परमारथी = मुमुक्षु, मुक्ति चाहनेवाले, विरागा=विरक्त।

अर्थ—इस संसार रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो मुक्ति को चाहनेवाले और संसार के माया-जाल से अलग रहनेवाले हैं। जगत में जीव को जगह हुआ (चेतन अवस्था में) तभी जानना चाहिए जब वह समस्त विषयों और भोग-विलास से विरक्त हो जाय।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ-चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू॥

अर्थ—विवेक (ज्ञान) होने से मोह और भ्रम सब भाग जाते हैं और तब श्री-रघुनाथजी के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्मों से श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम होना ही सर्व श्रेष्ठ परमार्थ है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल-विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥

शब्दार्थ—अविगत = जो जाना न जाये। अलख = जो देखने में न आये। अनादि = जिसका आदि न हो। गतभेदा = भेदरहित, समदर्शी। नेति = जिसका अन्त न हो। निरूपहिं = निश्चित कहते हैं, ठहराते हैं।

अर्थ—श्रीरामजी परमार्थ स्वरूप परब्रह्म हैं। ये अज्ञेय, अलख, अनादि, अनुपम सब विकारों से परे तथा समदर्शी हैं। वेद नित्य 'नेति-नेति' कहकर इनका निरूपण करते हैं।

दो०—भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जगजाल॥९३॥

शब्दार्थ—भूसुर = पृथ्वी पर के देवता, ब्राह्मण। सुरभि = गौ। जाल = फन्दा।

अर्थ—वही कृपालु श्रीरामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण कर लीलाएँ करते हैं, जिसको सुनने से संसार का फन्दा कट जाता है ।।९३।।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू । सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल दातारा ॥

शब्दार्थ—भिनुसारा= प्रातःकाल, सुबह । दातारा= देनेवाले ।

अर्थ—हे सखा ! ऐसा समझ कर मोह को त्याग सीताजी और श्रीरामचन्द्र-जी के चरणों में प्रेम करो । इस प्रकार श्रीरामजी के गुण कहते-सुनते सवेरा हो गया । तब जगत् का कल्याण करनेवाले भगवान रामचन्द्र जी जागे ।

सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बट छीर मँगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये । देखि सुमंत्र नयन जल छाये ॥

अर्थ—सभी प्रातः कर्मों को समाप्त कर पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान किया और फिर बड़ का दूध मँगाकर भाई लक्ष्मण के साथ उस दूध से सिर पर जटाएँ बनायीं । यह देखकर सुमन्त्रजी के नेत्रों में जल भर आया ।

हृदय दाह अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसल नाथा । लेइ रथ जाहु राम के साथा ॥

शब्दार्थ—दाह= जलन, कष्ट । बदन= मुख ।

अर्थ—सुमंत्र के हृदय में अत्यन्त कष्ट हुआ । उनका मुंह उदास हो गया । वे हाथ जोड़कर अत्यन्त दीन वचन से बोले—हे स्वामी ! कोशलपति महाराज दशरथजी ने मुझे यह आज्ञा दी है कि तुम रथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी के साथ जाओ ।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ॥

शब्दार्थ—फेरी= लौटा । निबेरी= दूर करके, छोड़कर ।

अर्थ—और वन दिखाकर, गंगा में स्नान कराकर जल्दी दोनों भाइयों को लौटा लाना । सब संशय और संकोच को दूरकर श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता को लौटा लाना ।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइं जस कहइ करउँ बलि सोइ ।
करि विनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ—हे स्वामी ! महाराज ने तो यही कहा था। आप की बलिहारी हूँ, अब आप जैसा कहें मैं करूँ। इस प्रकार विनय करके वे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो दिया ॥९४॥

तात कृपा करि कीजिय सोई । जा तें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहिं राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मत तुम्ह सब सोधा ॥

शब्दार्थ—प्रबोधा = धैर्य बँधाया, समझाया । मत = सिद्धान्त । सोधा = खोजा ।

अर्थ—(और कहा) हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। तब श्रीरामचन्द्रजी ने मन्त्री को उठाकर धैर्य बँधाया और कहा कि हे तात ! आपने तो धर्म के सभी सिद्धान्तों को छान डाला है।

सिवि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि संकट नाना ॥

अर्थ—शिवि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों क्लेश सहे। बुद्धिमान् राजा रन्तिदेव और बलि ने अनेकों कष्ट सहन कर धर्म को धारण किया, उसे छोड़ा नहीं।

रन्तिदेव—ये बड़े दानी और उदार राजा थे। ये जो कुछ मिलता सब दीन-दुखियों को दे डालते थे। इससे इनको तथा इनके कुटुम्ब को भोजनतक मिलना कठिन हो गया। एक बार ४८ दिनोंतक भूखे रह गये; पानीतक न मिला। संयोग से ४९ वें दिन सवेरे ही इन्हें घी, खीर, हलुआ और जल मिल गया। स्त्री-पुत्र सहित ज्यों ही भोजन करने बैठे, एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। इन्होंने उसे अपना भाग दे दिया। शेष में तीनों भाग लगाकर खाना ही चाहते थे कि एक शूद्र आ पहुँचा और उन्होंने उसे भी भरपेट खिलाकर विदा किया। इतने में बहुत से कुत्तों को लिए एक तीसरा अतिथि आ पहुँचा और राजा ने जो कुछ अन्न बचा था उसे खिला दिया। अब थोड़ा सा जल शेष रह गया था कि एक चाण्डाल आया और गिड़गिड़ाकर कहने लगा—महाराज जल दीजिये, मैं प्यास से मर रहा हूँ। राजा ने वह जल उसे पिला दिया। इसी समय ब्रह्मा, विष्णु और

महेश आदि देवताओं ने दर्शन दे, रन्तिदेव को माया से मुक्त कर विशुद्ध आत्म स्वरूप में स्थित कर दिया।

धरम न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा। तजे तिहूँपुर अपजसु छावा ॥

शब्दार्थ—सुलभ करि= सहज में ही, आसानी से। तिहूँपुर= स्वर्ग, मर्त्य, पाताल।

अर्थ—वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है, कि सत्य के समान कोई दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पाया है। उसे छोड़ देने से तीनों लोक में अपयश होगा।

संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन-कोटि-सम दारुन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दियें उतरु फिरि पातक लहऊँ ॥

शब्दार्थ—संभावित= प्रतिष्ठित पुरुष। पातक= पाप।

अर्थ—प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण कष्टदायक है। हे तात! मैं आपसे और अधिक क्या कहूँ? आपका प्रत्युत्तर करने में भी पाप होगा।

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कै तात करिय जनि मोरि ॥९५॥

शब्दार्थ—नति= नमस्कार। कवनिहुँ= किसी।

अर्थ—आप (मेरी ओर से) जाकर पिता के चरण पकड़, करोड़ों नमस्कार कहकर हाथ जोड़ प्रार्थना कीजियेगा कि हे तात! आप मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करें ॥९५॥

तुम्ह पुनि पितु सम अतिहित मोरे। बिनती करौं तात कर जोरे ॥
सब बिधि सोइ करतव्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे ॥

अर्थ—आप भी पिता के समान ही मेरे अत्यन्त हितैषी हैं। इसलिए हे तात! हाथ जोड़कर आप से भी प्रार्थना करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्त्तव्य है; जिससे पिता हम लोगों की चिन्ता में दुःख न पावें।

सुनि रघुनाथ - सचिव-संवादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू ॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी ॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी और मन्त्री का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वे वचन कहे। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने उसे अत्यन्त अनुचित समझ कहने से मनाकर दिया।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लषन संदेसु कहिय जनि जाई॥
कह सुमंत्र पुनि भूप संदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने सकुचाकर और अपनी शपथ देकर कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह सन्देश नहीं कहियेगा। सुमन्त्र ने फिर राजा के सन्देश को कहा कि सीताजी वन का क्लेश नहीं सह सकेंगी।

जेहिविधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं तुम्हहिं करनीया॥
न तरु निपट अवलंब विहीना। मैं न जियव जिमि जल बिनु मीना॥

शब्दार्थ—करनीया=करना उचित है, कर्त्तव्य है। निपट=बिलकुल।

अर्थ—इसलिए सीता जिस प्रकार अयोध्या को लौट आवें, तुम्हें और श्री रामचन्द्रजी को वही करना उचित है। नहीं तो बिलकुल विना सहारे का हो कर मैं वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे पानी विना मछली नहीं जीती॥

दो०—मइके ससुरे सकल सुख जबहिं जहां मन मान।
तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति विहान॥९६॥

शब्दार्थ—मइके=मायके, पिता के घर। विहान=अन्त।

अर्थ—सीता के मायके और ससुराल में सभी सुख हैं। जबतक इस विपत्ति का अन्त न हो, तबतक उनका जहां मन माने (जी चाहे) सुख से रहेंगी।

विनती भूप कीन्ह जेहि भांती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु संदेस सुनि कृपानिधाना। सियहिं दीन्ह सिख कोटि विधाना॥

शब्दार्थ—आरति=दुःख। विधाना=प्रकार, तरह।

अर्थ—महाराज ने जिस दुःख एवं प्रेमपूर्ण भाव से प्रार्थना की है, वह कहा नहीं जाता। कृपा के भाण्डार श्रीरामचन्द्रजी ने पिता का सन्देश सुनकर सीताजी को करोड़ों प्रकार से उपदेश दिया।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सबकर मिटइ खँभारू॥
सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्रान पति परम सनेही॥

शब्दार्थ—खँभारू=चिन्ता, शोक।

अर्थ—यदि तुम लौट जाओ , तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन तथा कुटुम्बी सबकी चिन्ता दूर हो जाये । श्रीरामचन्द्रजी की यह बात सुनकर जानकीजी कहने लगीं—हे अत्यन्त स्नेही प्राणपति ! सुनिये—

प्रभु करुनामय परम बिबेकी । तनु तजि रहति छांह किमि छेंकी ॥
प्रभा जाइ कहं भानु बिहाई । कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई ॥

शव्दार्थ—प्रभा= प्रकाश, चमक । चंद्रिका= चांदनी । छेंकी= रोकी । छांह=छाया ।

अर्थ—हे स्वामी ! आप तो दयामय और अत्यन्त ज्ञानी हैं । आप ही विचारिये कि शरीर की छाया शरीर को छोड़कर अलग कैसे रुकी रह सकती है ? सूर्य को छोड़कर प्रकाश कहां जा सकता है ? और चांदनी चन्द्रमा को छोड़ कहां जा सकती है ?

पतिहिं प्रेममय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु-ससुर सरिस हितकारी । उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी ॥

शब्दार्थ—गिरा=वाणी । फिरि=लौटकर ।

अर्थ—पति को इस प्रकार प्रेममय विनय सुनाकर, सीताजी मन्त्री से सुन्दर वाणी में बोलीं—आप पिता और ससुर के समान मेरे हितैषी हैं । मैं आपका प्रत्युत्तर कर रही हूँ, यह बड़ा अनुचित है ।

दो०—आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात ।
आरज-सुत-पद-कमल बिनु बादि जहं लगि नात ॥९७॥

शब्दार्थ—विलगु= दूसरा अर्थात् वुरा । आरज (आर्य)= ससुर ।

अर्थ—किन्तु हे तात ! दुःख के वश होकर मैं आपके सामने हुई हूँ, आप वुरा न मानियेगा । आर्यपुत्र (पतिदेव) के चरण कमल के विना संसार में जहां तक नाते हैं सव व्यर्थ हैं ।

पितु-वैभव-बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलत पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरें । पिय बिहीन मन भाव न मोरें ॥

शव्दार्थ—विलास= आनन्द । डीठा= देखा ।

अर्थ—मैंने पिताजी के ऐश्वर्य और आनन्द को देखा है, जिनके चरण रखने की चौकी से राजाओं के मणि जटित मुकुट लगते हैं (राजा लोग प्रणाम करते

हैं)। मेरे पिता का ऐसा सुख का भाण्डार घर भी पति के बिना भूलकर भी मुझे अच्छा नहीं लगता।

ससुर चक्कवइ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसनु देई॥

शब्दार्थ—चक्कवइ= चक्रवर्ती। अरध (अर्द्ध)= आधा।

अर्थ—मेरे ससुर कोशल राज चक्रवर्ती राजा हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है। जिनका स्वागत इन्द्र आगे बढ़कर करते हैं और अपने सिंहासन का आधा भाग बैठने को देते हैं।

ससुर एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद-पदुम-परागा। मोहि कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

शब्दार्थ—एतादृस= ऐसे, इस प्रकार के।

अर्थ—ऐसे ससुर, अयोध्या का निवास, प्यारा परिवार और माता के समान सासुएँ—ये कोई भी, श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल की धूलि के बिना, स्वप्न में भी सुखदायी नहीं लगते।

अगम पंथ बन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहिं सब सुखद प्रान-पति संगा॥

अर्थ—दुर्गम मार्ग, पृथ्वी, पहाड़, हाथी, सिंह, तालाब और भयानक नदियां, कोल, किरात, पशु और पक्षी श्रीरामचन्द्रजी के साथ में मेरे लिए ये सभी सुख-दायक होंगे।

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुति बिनय करबि परि पाय।
मोरि सोचु जनि करिय कछु मैं बन सुखी सुभाय॥९८॥

अर्थ—इसलिए आप मेरी ओर से पैर पड़कर सास और ससुर से विनती कीजियेगा कि वे मेरे लिए कुछ चिन्ता न करें मैं वन में स्वाभाविक सुखी हूँ।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। धीर धुरीन धरें धनु भाथा॥
नहिं मग स्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहि लगि सोचु करिय जनि भोरे॥

शब्दार्थ—धीर धुरीन= अत्यन्त धैर्यवान। भाथा= तरकस। लगि= लिए।

अर्थ—धीरों में श्रेष्ठ तथा धनुष और तरकस धारण किये प्राणनाथ और प्यारे

देवर मेरे साथ हैं। मेरे मन में न रास्ते की थकावट है न श्रम और न किसी बात का दुःख ही है; इसलिए मेरे लिए वे भूलकर भी चिन्ता न करें।

पुनि सुमंत्र सिय सीतल बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

अर्थ—सीताजी की कोमल वाणी सुनकर सुमन्त्रजी वैसे व्याकुल हुए जैसे मणि के खो जाने से सर्प व्याकुल हो जाता है। उनको आंखों से कुछ सूझता नहीं और न कानों से सुनाई ही देता है, कुछ कह भी नहीं सकते, अत्यन्त व्याकुल हो गये।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भांती। तदपि होति नहिं सीतल छाती॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हें। उचित उतर रघुनंदन दीन्हें॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें बहुत तरह से समझाया; तो भी उनकी छाती ठंढी नहीं हुई। सुमन्त्र ने अपने साथ चलने के लिए अनेकों उपाय किये, पर श्रीरामचन्द्रजी सभी बातों का उचित उत्तर देते गये।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम-लखन-सिय-पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवांई॥

शब्दार्थ—रजाई=आज्ञा। बनिक=व्यापारी। मूर=मूलधन, असल धन।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा टाली नहीं जाती। कर्म की गति कठिन है, उस पर किसी का कुछ वश नहीं चलता। (अन्त में) श्रीरामजी, सीताजी और लक्ष्मणजी के चरणों में सिर नवाकर सुमन्त्रजी ऐसे लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन खोकर लौटता है।

दो०—रथ हांकेउ हय राम-तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं॥९९॥

शब्दार्थ—हेरि=देखकर।

अर्थ—सुमन्त्र ने रथ हांका, किन्तु घोड़े श्रीरामचन्द्रजी के शरीर की ओर देख-देखकर हिहनाते हैं। यह दृश्य देख निषाद लोग शोकवश हो सिर धुनते और पछताते हैं॥९९॥

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसे॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये॥

अर्थ—जिसके वियोग में पशु ऐसे व्याकुल हैं, उसके बिना प्रजा, माता, पिता

कैसे जीते रहेंगे ? श्रीरामजी ने सुमन्त्र को जबर्दस्ती लौटाया और तब आप गंगा-तट पर आये।

मांगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन-कमल-रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहइ ॥

शब्दार्थ—केवट=मलाह, निषादराज=गुह। आना=लाया। मरमु=भेद। मूरि=जड़ी। अहई=है।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने (पार जाने के लिए) केवट से नाव मांगी, किन्तु वह लाया नहीं। बोला—आपका भेद मुझे मालूम है। आपके चरण कमल की धूलि को सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देनेवाली कोई जड़ी है।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परई मोरि नाव उड़ाई ॥

शब्दार्थ—सिला=पत्थर। पाहन=पत्थर। तरनी=नाव। घरनी=स्त्री। बाट पड़ना= लुट जाना, डाका पड़ना।

अर्थ—जिसके छूते ही शिला सुन्दर स्त्री हो गयी; फिर पत्थर से तो काठ कठोर नहीं होता। यदि मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो गयी और इस प्रकार वह उड़ गयी (चली गयी), तब तो मैं लुट जाऊँगा। मेरी जीविका की राह ही मारी जायगी।

एहि प्रति पालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू ॥
जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥

शब्दार्थ—कबारू=धंधा, रोजगार। गा=जाना। पखारन=धोने को।

अर्थ—इसीसे सारे परिवार का पालन करता हूँ। इसके सिवा और कोई दूसरा धन्धा नहीं जानता। हे स्वामी ! यदि आप निश्चय पार जाना चाहते हैं, तो अपने चरण कमलों को धो लेने की मुझे आज्ञा दीजिये।

छंद—**पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।**
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं ॥
बरु तीर मारहु लषनु पै जब लगि न पांय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं ॥

शब्दार्थ—आन=सौगन्ध, दुहाई। बरु=बल्कि।

अर्थ—हे नाथ ! आप लोगों के चरण कमल धोकर नाव पर चढ़ा लूंगा;

नोट—गंगाजी की वुद्धि क्यों मोह से खिंच गयी और फिर चरण नख देख प्रसन्न भी हुई ? केवट से पार उतारने के लिए अनुनम-विनय करते देख श्रीगंगा जी के मनमें यह भ्रम हुआ कि ये साक्षात् भगवान होकर भी पार उतरने के लिए ऐसा क्यों कर रहे हैं । किन्तु जव वे निकट आये और गंगाजी की दृष्टि उनके चरण नख पर पड़ी तव वे अपने उत्पत्ति स्थान को देख अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, कि भगवान यह सव नर लीला कर रहे हैं, इसलिए उनका सारा भ्रम नष्ट हो गया और मन में हर्षित हो आयीं ।

अति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन सरोज पखारन लागा ॥
वरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं । एहि सम पुन्य पुंजकोउ नाहीं ॥

अर्थ—अत्यन्त आनन्द और प्रेम से उमंगकर केवट श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों को धोने लगा । इस पर सभी देवता फूल वर्षा कर प्रशंसा करने लगे कि इसके समान पुण्य का भाण्डार दूसरा कोई नहीं है ।

दो०—पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लेइ पार ॥१०१॥

अर्थ—केवट चरणों को धोकर और परिवार सहित स्वयं उस जल को पी कर तथा अपने पूर्वजों को भवसागर से पार उतार प्रसन्नतापूर्वक फिर श्रीरामजी को पार ले गय. ॥१०१॥

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता । सीय राम गुह लषन समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा । प्रभु सकुचे एहि नहिं कछु दीन्हा ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी सीताजी, गुह निषाद और लक्ष्मणजी के साथ पार उतर कर गंगाजी की रेत पर खड़े हुए । तव केवट ने प्रणाम किया । यह देख स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के मन में संकोच हुआ कि मैंने इसे कुछ दिया नहीं ।

पिय हिय की सिय जाननिहारी । मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई । केवट चरन गहेउ अकुलाई ॥

अर्थ—पति के हृदय की वात जाननेवाली श्रीसीताजी ने प्रसन्न मन से अपनी मणिजटित अँगूठी को उतार कर दे दिया । दयालु श्रीरामचन्द्रजी ने केवट से कहा, कि यह उतराई लो । यह सुन वह व्याकुल हो उनके चरणों को पकड़ लिया ।

मैं उतराई कुछ नहीं चाहता। हे श्रीरामचन्द्र जी! मुझे आपकी दुहाई तथ महाराज दशरथ की सौगन्ध है, मैं जो कुछ कह रहा हूँ सब सत्य है। लक्ष्मणजी मुझ पर भले ही वाण चला दें, किन्तु जबतक मैं पैर न पखार लूंगा, तबतक हे तुलसीदास के स्वामी! दयालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन चितइ जानकी-लषन-तन ॥१००॥

शब्दार्थ—बैन=वचन। अटपटे=टेढ़ी, उल्टी, गद्‌गद। बिहँसे=मुस्कराये। ऐन=घर, भाण्डार।

अर्थ—केवट के प्रेमसने अटपटे वचन सुनकर, करुणासागर श्रीरामचन्द्रजी-ने श्रीजानकीजी तथा लक्ष्मणजी को ओर देख कर मुस्करा दिया।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलम्ब उतारिहि पारू ॥

अर्थ—कृपा के सागर श्रीरामचन्द्रजी ने मुस्कराकर कहा, अच्छा वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाय। जल्दी जल लाकर पैर धो दो। देर हो रही है, पार उतार दो।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जग किय तिहुँ पगहुं ते थोरा ॥

शब्दार्थ—निहोरा=खुशामद की। तिहुँ पगहुँ=तीन डग से भी।

अर्थ—जिसका नाम एक बार भी स्मरण करने से मनुष्य अपार संसार सागर के पार हो जाता है; जिन्होंने (वामन अवतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था, वही दयालु श्रीरामचन्द्रजी (गंगाजी से पार उतरने के लिए) केवट की खुशामद कर रहे हैं।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥

शब्दार्थ—करषी=खिच गयी। मोह=अज्ञान।

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर देवसरिता गंगाजी की बुद्धि मोह से खिंच गयी, किन्तु जब उन्होंने प्रभु के चरण नख देखे तब प्रसन्न हो गयीं। केवट श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर कठौता भरकर जल ले आया।

नोट—गंगाजी की बुद्धि क्यों मोह से खिंच गयी और फिर चरण नख देख प्रसन्न भी हुई ? केवट से पार उतारने के लिए अनुनम-विनय करते देख श्रीगंगा जी के मनमें यह भ्रम हुआ कि ये साक्षात् भगवान होकर भी पार उतरने के लिए ऐसा क्यों कर रहे हैं। किन्तु जब वे निकट आये और गंगाजी की दृष्टि उनके चरण नख पर पड़ी तब वे अपने उत्पत्ति स्थान को देख अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं, कि भगवान यह सब नर लीला कर रहे हैं, इसलिए उनका सारा भ्रम नष्ट हो गया और मन में हर्षित हो आयीं।

अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य पुंजकोउ नाहीं ॥

अर्थ—अत्यन्त आनन्द और प्रेम से उमंगकर केवट श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों को धोने लगा। इस पर सभी देवता फूल वर्षा कर प्रशंसा करने लगे कि इसके समान पुण्य का भाण्डार दूसरा कोई नहीं है।

दो०—पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लेइ पार ॥१०१॥

अर्थ—केवट चरणों को धोकर और परिवार सहित स्वयं उस जल को पी कर तथा अपने पूर्वजों को भवसागर से पार उतार प्रसन्नतापूर्वक फिर श्रीरामजी को पार ले गय. ॥१०१॥

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लषन समेता ॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभु सकुचे एहि नहिं कछु दीन्हा. ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी सीताजी, गुह निषाद और लक्ष्मणजी के साथ पार उतर कर गंगाजी की रेत पर खड़े हुए। तब केवट ने प्रणाम किया। यह देख स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के मन में संकोच हुआ कि मैंने इसे कुछ दिया नहीं।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरन गहेउ अकुलाई ॥

अर्थ—पति के हृदय की बात जाननेवाली श्रीसीताजी ने प्रसन्न मन से अपनी मणिजटित अँगूठी को उतार कर दे दिया। दयालु श्रीरामचन्द्रजी ने केवट से कहा, कि यह उतराई लो। यह सुन वह व्याकुल हो उनके चरणों को पकड़ लिया।

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष-दुख - दारिद-दावा ॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी ॥

शब्दार्थ–दावा=जलन, कष्ट, दुःख । बनि=मजूरी ।

अर्थ–हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया ? आज मेरे समस्त दोष, दुःख और दरिद्रता के कष्ट मिट गये । बहुत दिनोंतक मैंने मजदूरी की, किन्तु विधाता ने आज अच्छी तरह भरपूर मजदूरी दे दी ।

अब कछु नाथ न चाहिय मोरे । दीनदयाल अनुग्रह तोरे ॥
फिरती बार मोहिं जोइ देवा । सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा ॥

अर्थ–हे नाथ ! हे दुखियों पर दया करनेवाले । आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिये । हां, लौटती बार आप जो कुछ मुझे देंगे, वह प्रसाद मैं सिर पर रख कर लूंगा ।

दो०–बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहिं कछु केवट लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बर देइ ॥१०२॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी ने बहुत यत्न किये, पर केवट ने कुछ लिया नहीं । तब दयानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने उसे अपनी पवित्र भक्ति का वरदान देकर विदा किया ॥१०२॥

तब मज्जन करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ॥
सिय सुर सरिहिं कहेउ करजोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥

शब्दार्थ–पारथिव=मिट्टी की शिव मूर्त्ति । पुरउबि=पूरा करेंगी ।

अर्थ–तव श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शंकरजी को नमस्कार किया । फिर सीताजी ने हाथ जोड़कर गंगाजी से कहा, कि हे माता ! मेरे मनोरथ को आप पूरा कीजियेगा ।

पति-देवर संग कुसल बहोरी । आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय विनय प्रेम-रस-सानी । भइ तब बिमल बारि बर बानी ॥

अर्थ–जिससे मैं पति और देवर के साथ लौट आकर तुम्हारी] पूजा करूँ । सीताजी की विनय और प्रेम के रस में सनी हुई बात सुनकर गंगा जी के निर्मल जल से यह श्रेष्ठ वाणी हुई, कि–

सुनु रघुवीर-प्रिया बैदेही। तव प्रभाउ जग विदित न केही ॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहिं सेवहिं सब सिधि करजोरे ॥

शब्दार्थ—लोकप=लोकपाल, दिग्पाल, दसों दिशाओं के स्वामी।

अर्थ—हे रघुवंशियों में वीर श्रीरामचन्द्रजी की प्रिया जानकीजी, सुनिये; आपका प्रभाव संसार में किसको मालूम नहीं है। आपकी (कृपा दृष्टि से) देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं और सारी सिद्धियां हाथ जोड़े आपकी सेवा करती हैं।

तुम्ह जो हमहिंबड़ि विनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहिं दीन्हि बड़ाई ॥
तदपि देवि मोहिं मैं देवि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा ॥

शब्दार्थ—बागीसा=वाणी।

अर्थ—आपने मुझे जो बड़ी विनती सुनायी, वह तो कृपा करके मुझे बड़प्पन दिया है। तो भी हे देवि! मैं अपनी वाणी सफल करने के लिए आपको आशीर्वाद दूँगी।

दो०—प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना सुजस रहिहि जग छाइ ॥१०३॥

अर्थ—आप अपने प्राणनाथ और देवर के साथ सकुशल अयोध्या आयेंगी। आपका सब मनोरथ पूरा होगा और संसार में आपका सुन्दर यश फैलेगा।१०३।

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उर दाहू ॥

अर्थ—मंगल मूल गंगाजी के वचन सुनकर और सुरसरि को प्रसन्न जान सीताजी आनन्दित हुई। तब प्रभु श्रीरामजी ने निषादराज गुह को घर जाने के लिए कहा। ऐसा सुनते ही उसका मुख सूख गया और हृदय में वेदना हुई।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। विनयसुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथ देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥

अर्थ—निषादराज गुह हाथ जोड़कर दीनतापूर्ण वचन बोला—हे रघुवंश में शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरी प्रार्थना सुनिये। हे नाथ! आपके साथ रह, वन का रास्ता दिखा और दो-चार दिन चरणों की सेवा करके—

जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन कुटी मैं करबि सुहाई ॥
तब मोहिं कह जसि देब रजाई। सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई ॥

अर्थ—हे रघुराज श्रीरामजी ! आप जिस वन में जाकर रहेंगे, वहां आपके लिए मैं पत्तों की सुन्दर कुटी बना दूँगा। फिर आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे, हे रघुवीर ! आप की दुहाई है, में वही करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह जाति बोलि सब लीन्हें। करि परितोष बिदा तब कीन्हें॥

अर्थ—उसके स्वाभाविक स्नेह को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसे साथ में ले लिया। इससे गुह के हृदय में परमानन्द हुआ। गुहने फिर अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उन्हें समझा बुझाकर विदा किया।

दो०—तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहिं माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहितवन गवनकीन्ह रघुनाथ॥१०४॥

अर्थ—तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गणेशजी, और शंकरजी को स्मरणकर तथा गंगाजी को सिर नवाकर सखा गुह, भाई और सीताजी सहित वन को चले।

तेहि दिन भयेउ बिटप तर बासू। लषन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथ राजु दीखि प्रभु जाई॥

शब्दार्थ—सुपासू=आराम करने का प्रबन्ध। तीरथराज=प्रयाग।

अर्थ—उस दिन सबने वृक्ष के नीचे वास किया। लक्ष्मणजी और गुह निषाद ने आराम करने का सब प्रबन्ध कर दिया। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने सवेरे प्रातः कर्म (शौच-स्नानादि) करके तीर्थराज प्रयाग के दर्शन किये।

सचिव सत्य स्रद्धा प्रियनारी। माधव सरिस मीत हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भंडारू। पुन्य प्रदेस देसअति चारू॥

शब्दार्थ—माधव=वेणीमाधवजी।

अर्थ—उस प्रयागराज का मन्त्री सत्य है, श्रद्धा प्यारी स्त्री और वेणीमाधव जी के समान हितैषी मित्र है। उसके भाण्डार में चारों पदार्थ भरे हैं। जितने पुण्य स्थान हैं उनमें यह अत्यन्त सुन्दर है।

छेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बरबीरा। कलुष-अनीक-दलन रनधीरा॥

शब्दार्थ—छेत्र=स्थान, प्रयाग क्षेत्र का विस्तार चालीस कोस में है। [illegible] प च्छन = शत्रु। अनीक=सेना।

अर्थ–प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, सुदृढ़ और सुन्दर किला है; जिसको स्वप्न में भी शत्रु नहीं पा सकते। समस्त तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को नष्ट करने में बड़े रणधीर हैं।

संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अषयवट मुनि मन मोहा॥
चंवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥

अर्थ–गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम ही उसका सुन्दर सिंहासन शोभायमान है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के मन को भी मोहित कर लेता है। गंगा और यमुना की लहरें उसके चँवर हैं, जिन्हें देखते ही दुःख और दरिद्रता का नाश हो जाता है।

दो०–सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मन काम।
वंदी वेद-पुरान-गन कहहिं विमल गुनग्राम॥१०५॥

अर्थ–पुण्यात्मा और पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सभी मनोरथों को पाते हैं। वेद और पुराण भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणों का गान करते रहते हैं॥१०५॥

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज-कुंजर-मृग राऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुपति सुख पावा॥

शब्दार्थ–कुंजर=हाथी। मृगराऊ=सिंह।

अर्थ–प्रयाग के प्रभाव का वर्णन ऐसा कौन है, जो कर सकता है। वह पाप-पुंज रूपी हाथी के लिए सिंह समान है। ऐसे सुन्दर तीर्थराज प्रयाग के दर्शन कर रघुकुल श्रेष्ठ, सुख के सागर श्रीरामचन्द्रजी ने भी सुख पाया।

कहि सिय लपनहिं सखहिं सुनाई। श्री मुख तीरथ-राज-बड़ाई॥
करि प्रनाम देखत बनबागा। कहत महातम अति अनुरागा॥

अर्थ–उन्होंने अपने श्रीमुख से तीर्थराज की बड़ाई, सीताजी, लक्ष्मणजी और गुह निषाद को कह सुनायी। फिर प्रणाम करके, वन-बागों को देखते और अत्यन्त प्रेम से प्रयाग का माहात्म्य कहते हुए–

एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि यथा विधि तीरथदेवा॥

शब्दार्थ–बेनी=त्रिवेणी। जथाविधि=विधिपूर्वक।

अर्थ—इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी ने आकर त्रिवेणी के दर्शन किये, जो स्मरण करते ही समस्त सुन्दर मंगलों को देनेवाली हैं। फिर प्रसन्नतापूर्वक उसमें स्नान कर शिवजी की सेवा की और विधिपूर्वक (माधवादि) तीर्थ-देवताओं की पूजा की।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये॥
मुनि-मन-मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई॥

शब्दार्थ—रासि=खजाना। ब्रह्मानंद=वह आनन्द जो ब्रह्म की प्राप्ति से होता है।

अर्थ—फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाजजी के पास आये। दण्डवत करते हुए मुनि ने उन्हें हृदय से लगा लिया। उस समय मुनि के मन को जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता; मानो उन्होंने ब्रह्मानन्द की राशि पा ली हो।

दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंद अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये बिधि आनि॥१०६॥

शब्दार्थ—लोचन गोचर=आंखों के सामने।

अर्थ—मुनियों में श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने आशीर्वाद दिया और ऐसा जानकर उनके हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ, कि मानो विधाता ने पुण्यों का फल लाकर आज उनके सामने कर दिया॥१०६॥

कुसल प्रस्न करि आसन दीन्हें। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हें॥
कंद मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके॥

शब्दार्थ—प्रस्न (प्रश्न) करि=पूछकर। परिपूरन=सन्तुष्ट। अमी=अमृत।

अर्थ—मुनीश्वर ने कुशल पूछकर आसन दिया और पूजन करके उन्हें प्रेम से सन्तुष्ट कर दिया। फिर मानो अमृत के ही बने हों ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिये।

सीय-लखन-जन -सहित सुहाये। अतिरुचि राम मूल फल खाये॥
भये बिगत स्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥

शब्दार्थ—विगतस्रम=थकावट मिटना। उचारे=कहा। जन=सेवक।

अर्थ—सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह के सहित श्रीरामचन्द्रजी ने बड़ी रुचि से सुन्दर मूल और फल खाये। थकावट दूर होने से श्रीरामजी सुखी हो गये। तब भरद्वाजजी ने कोमल वचनों में कहा—

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सुफल सकल-सुभ-साधन साजू । राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ॥

अर्थ—हे रामजी ! आज आपका दर्शन करने से मेरा तप, तीर्थवास और त्याग सफल हो गया । आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज सभी शुभ साधनों का समूह सफल हो गया ।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरे दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहू । निज-पद सर-सिज सहज सनेहू ॥

शब्दार्थ—अवधि=सीमा । सरसिज=कमल ।

अर्थ—लाभ की सीमा और सुख की सीमा इससे बढ़कर दूसरी नहीं है । आपके दर्शन से सब आशाएँ पूरी हो गयीं । अब आप कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ।

दो०—करम बचन मन छांड़ि छल जब लगि जन न तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं लिये कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ—कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर मनुष्य जबतक आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करने से भी, वह स्वप्न में भी सुख नहीं पाता ।

सुनि मुनि बचन राम सकुचाने । भाव भगति आनंद अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजस सुहावा । कोटि भांति कहि सबहि [illegible] ॥

अर्थ—मुनि के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सकुचा गये और [illegible] तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये । फिर श्रीरामचन्द्र[illegible] सुन्दर सुयश को करोड़ों प्रकार से कहकर सबको सुनाया ।

सो बड़ सो-सब गुन-गन-गेहू । जेहि मुनीस [illegible] ॥
मुनि रघुबीर परसपर नवहीं । बचन [illegible] ॥

शब्दार्थ—नवहीं=झुकते हैं, नम्र होते हैं । [illegible]

अर्थ—(श्रीरामजी ने कहा) हे मुनि[illegible] हैं, वही बड़ा है और वही सब गुणों [illegible] [illegible]ी परस्पर नम्रता दिखलाते और [illegible]

यह सुधि पाइ प्रयाग [illegible]
भरद्वाज आश्रम [illegible]

शब्दार्थ—वटु=ब्रह्मचारी, विद्यार्थी। उदासी=वैरागी। सुअन=पुत्र।

अर्थ—यह खबर पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और वैरागी सभी महाराज दशरथजी के सुन्दर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वा जी के आश्रम में आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने सबको प्रणाम किया। सभी अपने नेत्रों का ला पाकर प्रसन्न हुए। सबने अत्यन्त सुख पाकर आशीर्वाद दिया और उनकी सुन्दर की प्रशंसा करते लौटे।

दो०—राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लषन जन मुदित मुनिहिं सिरुनाइ॥१०८॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने रात को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रय में स्नान कर, सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह सहित प्रसन्नतापूर्वक मु को प्रणाम कर वहां से चले॥ १०८॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मगु तुम्ह कहं अहहीं॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी चलते समय मुनि से प्रेमपूर्वक पूछते हैं, कि हे नाथ यह बताइये कि हम किस मार्ग से जायें। तब भरद्वाज मुनि मन में हँसकर क हैं कि हे राम! तुम्हारे लिए सभी मार्ग सुगम हैं।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनिमन मुदित पचासक आये॥
सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥

अर्थ—तब उनके साथ जाने के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया। सुनते मन में हर्षित हो कोई पचासों आ पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजी पर सभी का अप प्रेम था और सभी कहने लगे कि रास्ता हमारा देखा हुआ है।

मुनि वटु चारि संग तव दीन्हें। जिन्ह बहुजनम सुकृत सब कीन्हें॥
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥

अर्थ—तब मुनि ने ऐसे चार ब्रह्मचारियों को साथ में कर दिया जिन्होंने बहुत

जन्मोंतक सब पुण्य किये थे। फिर ऋषि को प्रणाम कर और उनकी आज्ञा पा, श्रीरामचन्द्रजी हृदय में प्रसन्न हो चले।

ग्राम निकट निकसहिं जब जाई। देखहिं दरस नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मन संग पठाई॥

अर्थ—जब वे किसी गांव के पास होकर जा निकलते हैं तो स्त्री-पुरुष दौड़े हुए आकर उनके दर्शन करते हैं (रूप को देखते हैं)। वे जन्म का फल पाकर सुखी हो जाते हैं और अपने मनको उनके साथ भेजकर, दुखी हो लौट आते हैं।

दो०—विदा किये बटु विनय करि फिरे पाइ मनकाम॥
उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥१०९॥

शब्दार्थ—मनकाम=मनोकामना, मन के अनुसार फल, अनन्य भक्ति।

अर्थ—तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने बहुत विनय करके उन ब्रह्मचारियों को लौटाया और वे अपनी मनोकामना (अनन्य भक्ति) को पाकर लौटे। फिर यमुनाजी के पार उतर उन्होंने यमुनाजी के जल में स्नान किया, जो उनके शरीर के ही समान श्याम रंग का था॥ १०९॥

सुनत तीर वासी नरनारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
लखन-राम - सिय - सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी आदि के आने की बात सुनते ही यमुना-तट-वासी स्त्री-पुरुष अपने-अपने काम भूल कर दौड़े। वे लक्ष्मणजी, श्रीरामजी तथा सीताजी की सुन्दरता को देखकर अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

अति लालसा सबहिं मनमाहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महँ बय वृद्ध सयाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने॥

शब्दार्थ—बयवृद्ध=वयोवृद्ध, उम्र में बड़े। जुगुति=युक्ति, उपाय।

अर्थ—परिचय पाने के लिए सब के मन में प्रबल इच्छा हो रही है, किन्तु वे उनका नाम और ग्राम पूछते हुए संकोच करते हैं। उनमें जो वयोवृद्ध और चतुर थे, इन्होंने युक्ति करके श्रीरामचन्द्रजी को पहचान लिया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥

अर्थ—उन लोगों ने सारी कथा सबको कह सुनायी, कि ये पिता की आ…

पा वंन में आये हैं । यह सुनकर सभी शोकमय हो पछताते हैं और कहते हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया ।

तेहि अवसर एक तापस आवा । तेज पुंज लघु बयस सुहावा ॥
कबि अलषितगति बेषु बिरागी । मन क्रम बचन राम अनुरागी ॥

शब्दार्थ–बयस=उम्र । अलषित (अ+लषित)=अगोचर जो दिखाई न दे।

अर्थ–उसी समय वहां एक तपस्वी आया, जो वड़ा तेजस्वी, छोटी उम्र का और सुन्दर था । उसकी गति कवि नहीं जान सकते; वह वैरागी के वेष में था और मन, वचन और कर्म से श्रीरामचन्द्रजी का प्रेमी था ।

नोट–इस तपस्वी के सम्बन्ध में लोगों के मत भिन्न-भिन्न हैं–(१) यह तपस्वी साक्षात् अग्निदेव थे । उनके दिये चरु से श्रीरामजी की उत्पत्ति हुई थी, अतः वे सदा साथ रहकर रक्षा करते थे । उन्होंने देखा कि अवतक निषादराज के साथ होने से ये चार थे और अब उसे विदा करना चाहते हैं । इसलिए प्रकट हो साथ हो लिए और सदा साथ रहे; इसीलिए गोसाईंजी ने इनकी विदाई नहीं लिखी । (२) चित्रकूट में अगस्त्यजी का एक शिष्य था, जो श्रीरामचन्द्रजी का आगमन सुन कुटी से उठ यहां आ मिला । (३) श्रीकामदनाथ ही उन्हें लिवाने को आये थे । (४) यह तापस या तो श्रीहनुमानजी थे या ध्यानस्थ तुलसीदास जी । वहुत लोग इसे क्षेपक वताते हैं, परन्तु यह क्षेपक है नहीं ।

दो०–सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देव पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ–अपने इष्टदेव को पहचानकर उसके नेत्रों में जल भर आया, शरीर पुलकित हो गया और पृथ्वी पर वह दण्ड के समान गिर पड़ा; उसकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ११० ॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारसु पावा ॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरे तन कह सबकोऊ ॥

शव्दार्थ–पारस=लोहे को सोना वनानेवाला पत्थर, स्पर्श मणि । परमार्थ=प्ररम तत्व, परमात्मा ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रज़ी ने पुलकित हो प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया । इससे उसे इतना आनन्द हुआ मानो महा दरिद्री मनुष्य पारस मणि पा गया हो

देव सभी कहने लगे कि मानो प्रेम और परमात्मा दोनों ही शरीर धारण कर मिल रहे हैं।

बहुरि लषन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय-चरन-धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥

अर्थ—फिर वह लक्ष्मणजी के चरणों में पड़ा। उन्होंने प्रेम से उमँग कर उसे उठा लिया। फिर उसने सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण किया। माता (सीताजी) ने उसे बालक समझ आशीर्वाद दिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पियत नयन पुट रूपुपियूषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

शब्दार्थ—पुट=दोना, पलक-होंठ इत्यादि। सुअसनु=सुन्दर भोजन।

अर्थ—फिर निषाद ने उसे दण्डवत की। वह निषाद को श्रीरामजी का प्रेमी समझ उससे मिला। वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दोने से श्रीरामचन्द्रजी के रूप रूपी अमृत का पान करते हुए ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे भूखा आदमी सुन्दर भोजन पाकर होता है।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे॥
राम-लषन-सिय-रूप निहारी। होहिं सनेह विकल नर नारी॥

अर्थ—(ग्राम की स्त्रियां कहने लगीं) हे सखी! कहो तो, वे माता पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया है। श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर स्त्री और पुरुष स्नेह से व्याकुल हो जाते हैं।

दो०—तब रघुवीर अनेक विधि सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह॥१११॥

अर्थ—तब श्रीरामचन्द्रजी ने सखा निषाद को घर लौट जाने के लिए अनेक प्रकार से समझाया। उसने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य कर घर को प्रस्थान किया॥१११॥

पुनि सिय राम लषन करजोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबि तनुजा कै करत बड़ाई॥

अर्थ—फिर सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुना

जी को प्रणाम किया। दोनों भाई यमुना की बड़ाई करते हुए सीता के साथ आगे चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे॥

शब्दार्थ—राज लषन (राज लक्षण)=राजाओं के चिह्न।

अर्थ—रास्ते में जाते हुए अनेक यात्री मिलते हैं और वे दोनों भाइयों को देख कर प्रेम पूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है—

मारग चलहु पयादेहिं पाये। ज्योतिष झूठ हमारेहिं भाये॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥

अर्थ—(कि) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चलते हो, इससे हमारी समझ से तो ज्योतिष शास्त्र झूठा जान पड़ता है। दुर्गम रास्ता, पर्वत और बड़े-बड़े वन हैं, उस पर साथ में सुकुमार स्त्री है।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥
जाब जहां लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिर नाई॥

अर्थ—हाथी और सिंह से भरा भयानक वन देखा नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम भी साथ चलें। जहां तक आप लोग जायेंगे, वहां तक पहुँचा कर और आपको सिर नवा हम सब लौट आयेंगे।

दो०—एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस पुलक गात जल नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहिं कहि विनीत मृदु बैन॥११२॥

अर्थ—इस प्रकार सभी यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो, नेत्रों में जल भर कर उनसे पूछते हैं; किन्तु दयासागर श्रीरामचन्द्रजी कोमल नम्र वचन कह कर उन्हें लौटा देते हैं॥ ११२॥

जेपुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥

अर्थ—जो नगर और गांव रास्ते में बसे हैं, उन्हें देखकर नाग और देवताओं के नगर प्रशंसा करते हुए ईर्ष्या करते और ललचते हैं, कि किस पुण्यात्मा ने किस

(शुभ) घड़ी में इन्हें बसाया था, जो आज ये इतने धन्य, पुण्यमय और सुन्दर हो रहे हैं।

जहं जहं राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुण्य पुंज मग-निकट-निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर-बासी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के चरण जहां-जहां चले जाते हैं, उनकी समता में इन्द्रपुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के पास बसनेवाले मनुष्य बड़े ही पुण्यवान हैं। सुरपुर के रहनेवाले देवता भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता लखन सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं॥

शब्दार्थ—अवगाहहिं=स्नान करते हैं।

अर्थ—(कि) जो नेत्र भर सीताजी, लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करते हैं। जिन तालावों और नदियों में श्रीरामचन्द्रजी स्नान कर लेते हैं उनकी प्रशंसा देवताओं के सरोवर और सरिताएँ करती हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

शब्दार्थ—परसि=स्पर्श करके, छूकर। परागा=पुष्प-धूलि, धूलि। भूरि=बहुत।

अर्थ—जिस वृक्ष तले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जा बैठते हैं, उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष भी करते हैं। श्रीरामजी के चरण कमलों की धूलि को स्पर्श कर पृथ्वी अपना परम सौभाग्य मानती है।

दो०—छाह करहिं घन बिबुधगन बरसहिं सुमन सिहाहि।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, राम चले मग जाहिं॥११३॥

अर्थ—रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता लोग फूल बरसाते तथा प्रशंसा करते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते श्रीरामचन्द्रजी मार्ग में चले जाते हैं॥ ११३॥

सीता-लखन-सहित रघुराई। गांव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर-नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥

अर्थ—रघुराज श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ जब किसी गांव

जी को प्रणाम किया। दोनों भाई यमुना की बड़ाई करते हुए सीता के साथ आगे चले।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥

शब्दार्थ–राज लषन (राज लक्षण)=राजाओं के चिह्न।

अर्थ–रास्ते में जाते हुए अनेक यात्री मिलते हैं और वे दोनों भाइयों को देख कर प्रेम पूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है–

मारग चलहु पयादेहिं पाये। ज्योतिष झूठ हमारेंहि भाये ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥

अर्थ–(कि) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चलते हो, इससे हमारी समझ से तो ज्योतिष शास्त्र झूठा जान पड़ता है। दुर्गम रास्ता, पर्वत और बड़े-बड़े वन हैं, उस पर साथ में सुकुमार स्त्री है।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहां लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिर नाई ॥

अर्थ–हाथी और सिंह से भरा भयानक वन देखा नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम भी साथ चलें। जहां तक आप लोग जायेंगे, वहां तक पहुँचा कर और आपको सिर नवा हम सब लौट आयेंगे।

दो०–एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस पुलक गात जल नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहिं कहि विनीत मृदु बैन ॥११२॥

अर्थ–इस प्रकार सभी यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो, नेत्रों में जल भर कर उनसे पूछते हैं; किन्तु दयासागर श्रीरामचन्द्रजी कोमल नम्र वचन कह कर उन्हें लौटा देते हैं ॥ ११२ ॥

जेपुर गांव बसहिं मग माहीं। तिन्हहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये ॥

अर्थ–जो नगर और गांव रास्ते में बसे हैं, उन्हें देखकर नाग और देवताओं नगर प्रशंसा करते हुए ईर्ष्या करते और ललचते हैं, कि किस पुण्यात्मा ने किस

(शुभ) घड़ी में इन्हें बसाया था, जो आज ये इतने धन्य, पुण्यमय और सुन्दर हो रहे हैं।

जहं जहं राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुण्य पुंज मग-निकट-निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर-बासी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के चरण जहां-जहां चले जाते हैं, उनकी समता में इन्द्रपुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के पास बसनेवाले मनुष्य बड़े ही पुण्यवान हैं। सुरपुर के रहनेवाले देवता भी उनकी प्रशंसा करते हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता लखन सहित घनस्यामहिं॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं॥

शब्दार्थ—अवगाहहिं=स्नान करते हैं।

अर्थ—(कि) जो नेत्र भर सीताजी, लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करते हैं। जिन तालाबों और नदियों में श्रीरामचन्द्रजी स्नान कर लेते हैं उनकी प्रशंसा देवताओं के सरोवर और सरिताएँ करती हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥

शब्दार्थ—परसि=स्पर्श करके, छूकर। परागा=पुष्प-धूलि, धूलि। भूरि=बहुत।

अर्थ—जिस वृक्ष तले प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जा बैठते हैं, उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष भी करते हैं। श्रीरामजी के चरण कमलों की धूलि को स्पर्श कर पृथ्वी अपना परम सौभाग्य मानती है।

दो०—छाह करहिं घन बिबुधगन बरसहिं सुमन सिहाहि।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, राम चले मग जाहिं॥११३॥

अर्थ—रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता लोग फूल बरसाते तथा प्रशंसा करते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते श्रीरामचन्द्रजी मार्ग में चले जारहे हैं॥ ११३॥

सीता-लषन-सहित रघुराई। गांव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नर-नारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥

अर्थ—रघुराज श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ जब किसी गांव

के पास से जा निकलते हैं, तब यह (उनका आना) सुनते ही सभी बालक-वृद्ध और स्त्री-पुरुष अपने घर के काम-काज छोड़कर तुरत चल देते हैं।

राम लषन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥

शब्दार्थ—बिलोचन=नेत्र। मगन=प्रफुल्लित। बीरा=भाई, वीर।

अर्थ—श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर, सभी अपने नेत्रों का फल पा सुखी होते हैं। दोनों भाइयों को देख सभी प्रेमानन्द से प्रफुल्लित हो गये। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकायमान हो गया।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी॥
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एही॥

शब्दार्थ—सुर-मनि=देव-मणि, चिन्तामणि। केरी=की।

अर्थ—उनकी दशा कही नहीं जाती; मानों दरिद्रों ने चिन्तामणि की ढेरी पा ली हो। एक-एक को बुला कर सीख देता है कि इस क्षण में अपने नेत्रों का लाभ ले लो।

रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥

शब्दार्थ—चितवत=देखते। नयनमग=नेत्रोंके रास्ते से। सिथिल=सुस्त, ढीला।

अर्थ—कोई श्रीरामचन्द्रजी को देखकर प्रेम में ऐसे मग्न हो गये हैं कि वे उन्हें देखते हुए साथ लगे चले जाते हैं। कोई नेत्र मार्ग से उनकी शोभा को हृदय में लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं।

दो०—एक देखि बट छांह भलि डासि मृदुल तृन पाति।
कहहिं गवांइअ छिनुक श्रम गवनब अबहिं की प्रात॥११४॥

शब्दार्थ—डासि=बिछाकर। गवाँइय=दूर कीजिये। छिनुक=क्षणभर। गवनव=जाइयेगा।

अर्थ—एक वट की अच्छी छाया देखकर और कोमल घास-पात बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर यहां बैठ कर थकावट मिटा लीजिये। फिर अभी जाइयेगा या कल सवेरे। (अथवा—चाहे अभी जाइयेगा या सवेरे)॥ ११४॥

एक कलस भरि आनहिं पानी । अंचइय नाथ कहहिं मृदुबानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिशेषी ॥

अर्थ—कोई घड़ा भरकर पानी लाते हैं और कोमल वाणी से कहते हैं, कि हे नाथ, इसे पीजिये । उनके प्रिय वचन सुन और उनका अत्यन्त प्रेम देख, दयालु और परम शीलवान श्रीरामचन्द्रजी ने—

जानी श्रमित सीय मन माहीं । घरिक बिलम्ब कीन्ह बट छाहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मन लोभा ॥

अर्थ—मन में सीताजी को थकी हुई जानकर, वट-वृक्ष की छाया में घड़ी भर विश्राम किया । स्त्री-पुरुष सभी प्रसन्न होकर शोभा देखते हैं । उनके अनुपम रूप ने सबके नेत्र और मन को लुभा लिया है ।

एक टक सब सोहहिं चहुं ओरा । राम चंद्र - मुख - चंद्र-चकोरा ॥
तरुन-तमाल - बरन तनु सोहा । देखत कोटि-मदन-मनु मोहा ॥

शब्दार्थ—तरुन (तरुण)=नया । तमाल=एक पेड़ जिसका रंग श्याम होता है ।

अर्थ—सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के चन्द्रमा रूपी मुख को चकोर की भांति चारों ओर से एक टक देखते हुए सुशोभित हो रहे हैं । श्रीरामजी का (श्याम) शरीर नये तमाल की भांति शोभायमान है, जिसे देखकर करोड़ों कामदेव के मन मोहित हो जाते हैं ।

दामिनि बरन लषन सुठि नीके । नखसिख सुभग भावते जीके ॥
मुनिपटकटिन्ह कसे तूनीरा । सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा ॥

शब्दार्थ—दामिनि=बिजली । नख सिख=सिर से पैरतक । कटिन्ह=कमर में । तूनीरा=तरकस ।

अर्थ—बिजली के-से रंग के लक्ष्मणजी परम सुन्दर हैं । वे सिर से पैरतक सुन्दर और मन को अच्छे लगते हैं । दोनों मुनि के वस्त्र पहने और कमर में तरकस कसे हुए हैं । उनके कर कमलों में धनुष-बाण सुशोभित हैं ।

दो०—जटामुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन विशाल ।
सरद-परब-विधु-बदन बर लसत स्वेद-कन जाल ॥११५॥

शब्दार्थ—परब=पूर्णिमा । विधु=चन्द्रमा । लसत=शोभित । स्वेद-कन-जल=पसीने की बूंदें ।

अर्थ—उनके सिर पर सुन्दर जटाओं के मुकुट, छाती, भुजा और नेत्र बड़े-बड़े हैं, उनके शरद् ऋतु के चन्द्रमा जैसे मुख पर पसीनें की बूंदें शोभा पा रही हैं।

बरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन - सिय-सुन्दरताई । सब चितवहिं चित मन मतिलाई ॥

अर्थ—उस सुन्दर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसकी शोभा बहुत अधिक है और (उसका वर्णन करने के लिए) मुझमें बुद्धि बहुत कम है।

थके नारि-नर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ॥
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं । पूछत अति सनेह सकुचाहीं ॥

शब्दार्थ—थके=निश्चल हो गये, विमुग्ध हो गये । दिया=दीपक । से=सदृश।

अर्थ—प्रेम के प्यासे सब स्त्री-पुरुष (शोभा देखते हुए) इस प्रकार निश्चल हो गये जैसे दीपक को देखकर मृगा और मृगी हो जाती हैं । ग्राम की स्त्रियां सीता जी के निकट जाती हैं, किन्तु अत्यन्त स्नेह के कारण (कुछ) पूछते हुए सकुचाती हैं।

बारबार सब लागहिं पाये । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं । तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥

अर्थ—वे बार-बार सीताजी के चरणों में पड़ती हैं और कोमल, सीधे और सुन्दर वचनों से कहती हैं, कि हे राजकुमारी ! हम आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहती हैं, किन्तु स्त्री-स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरतीं हैं।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी । बिलगु न मानब जानि गँवारी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने । इन्हतें लहि दुति मरकत सोने ॥

शब्दार्थ—बिलग=बुरा । द्युति=कान्ति, चमक । [illegible] एक मणि, पन्ना।

अर्थ—हे स्वामिनि [illegible] ठाई को आप [illegible] और हमें गवांर जानकर बुरा न मानि [illegible] र ज [illegible] हैं, (और ऐसा मालूम होता है [illegible] और सुवर्ण [illegible] है। (पन्ना

अर्थ—दोनों ही श्याम और गौर वर्ण हैं, सुन्दर किशोर अवस्था है और सुन्दर शोभा के धाम हैं। इनके शरद्-चन्द्र के समान मुख और शरद्-कमल के समान नेत्र हैं ॥ ११६ ॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ॥

अर्थ—हे सुमुखि ! कहो तो ये करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले आपके कौन होते हैं ? उनकी ऐसी प्रेमभरी कोमल वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं और मन-ही-मन मुस्करायीं।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिक बयनी ॥

शब्दार्थ—बर बरनी=श्रेष्ठ वर्ण (रंग) वाली, सुन्दर रंग वाली। पिक=कोयल।

अर्थ—सुन्दर गौर वर्ण सीताजी उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगीं। वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा गयीं। (अर्थात् नहीं बताने में ग्राम-स्त्रियों के दुःखी होने का संकोच और बताने में लज्जा रूपी संकोच है)। अन्त में मृगा के बच्चे के समान नेत्रवाली कोकिल कण्ठा जानकीजी प्रेमसहित मधुर वचन बोलीं—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लषन लघु देवर मोरे ॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितइ भौंह करि बांकी ॥

अर्थ—जो सरल स्वभाव और सुन्दर गोरे शरीरवाले हैं, इनका नाम लक्ष्मण जी है और ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर अपने चन्द्रमुख को अंचल से ढककर और पति के शरीर की ओर देख, भौंहें टेढ़ी कर।

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि ॥
भई मुदित सब ग्रामबधूटी। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ॥

शब्दार्थ—खंजन=एक पक्षी। सैननि=इशारे से। बधूटी=स्त्री। रायरसि=राज कोश, राजा का खजाना।

अर्थ—खंजन पक्षी जैसी सुन्दर आंखों को तिर्छी करके सीताजी ने उन्हें इशारे से बताया कि ये (दूसरे) मेरे पति हैं। यह जानकर ग्राम की सब स्त्रियां इस प्रकार प्रसन्न हुईं मानो कंगालों ने राज कोश को लूट लिया हो।

दो०—अति सप्रेम सिय पाय परि बहुविधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिन होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ—वे अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पैरों में पड़ कर अनेक प्रकार से आशीर्वाद देती हैं, कि जब तक शेषनाग के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सदा सौभाग्यवती बनी रहो ॥ ११७ ॥

पारवती सम पति प्रिय होहू । देवि न हमपर छांड़ब छोहू ॥
पुनि पुनि विनय करिय करजोरी । जौं एहि मारग फिरिय बहोरी ॥

अर्थ—पार्वती के समान अपने पति की प्यारी बनी रहो। हे देवि ! हम पर से कृपा न छोड़ना (बनाये रखना) । हाथ जोड़कर हम बार-बार विनती करती हैं, कि यदि इसी रास्ते फिर लौटें—

दरसन देब जानि निज दासी । लखीं सीय सब प्रेमपियासी ॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषी । जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥

शब्दार्थ—कौमुदी=चांदनी, चन्द्रमा की किरण । पोषी=खिल गयी हों, पुष्ट हुई हो ।

अर्थ—तो हमें अपनी दासी जानकर अवश्य दर्शन देंगी । सीताजी ने उनको प्रेम की प्यासी देखकर मीठे वचन कह-कह कर उन्हें सन्तुष्ट किया, मानो चन्द्रमा की किरणों ने कुमुदिनियों को पुष्ट कर दिया हो ।

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी । पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी ॥
सुनत नारि नर भये दुखारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ॥

अर्थ—उसी समय लक्ष्मणजी ने श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा जान, कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा । यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गये । उनका शरीर रोमाञ्च युक्त हो गया और आंखों में जल भर आया ।

मिटा मोद मन भये मलीने । विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ॥
समुझि करम गति धीरज कीन्हा । सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥

अर्थ—आनन्द जाता रहा (अथवा उनके मन से आनन्द जाता रहा, वे उदास हो गये) । उनके मन उदास हो गये, मानों विधाता धन-राशि देकर उसे छीन लेता हो । फिर कर्म की गति समझ कर सबने धैर्य धारण किया और सुगम मार्ग निश्चय कर उन्हें बता दिया ।

दो०–लषन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ–तव श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ प्रस्थान किया और प्रिय वचन कहकर सब को लौटाया, किन्तु उनके मन अपने साथ ले लिये।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं । दैवहिं दोषु देहिं मन माहीं ॥
सहित बिषाद परसपर कहहीं । बिधि करतब उलटे सब अहहीं ॥

अर्थ–लौटते हुए स्त्री-पुरुष बहुत पछताते हैं और मन ही मन ब्रह्मा को दोष देते हैं । दुःख के साथ आपस में कहते हैं कि ब्रह्मा के सभी काम उल्टे हैं ।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू । जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूख कलप तरु सागर खारा । तेहि पठये बन राजकुमारा ॥

शब्दार्थ–निपट=बिलकुल । निरंकुस=मनमानी करने वाला, अपने मनका । निसंकू=निडर । सरुज=रोगी, रोग युक्त (घटने बढ़ने को रोग माना है) ।

अर्थ–वह बिलकुल मनमानी करनेवाला, निर्दय और निडर है । जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलंकी कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा बनाया, उसी ब्रह्मा ने इन राजकुमारों को वन भेजा है ।

जौं पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिन पदत्राता । रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥

अर्थ–विधाता ने यदि इन्हें वनवास दिया, तो भोग-विलास की सारी सामग्रियों को उसने व्यर्थ ही बनाया । जब ये बिना जूते के पैदल ही चल रहे हैं, तब विधाता ने अनेक प्रकार की सवारियों की रचना व्यर्थ ही की है ।

ए महि परहिं डासि कुसपाता । सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुवर-बास इन्हहिं बिधि दीन्हा । धवल धाम रचि रचि श्रम कीन्हा ॥

अर्थ–जब ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं, तब विधाता सुन्दर सेज किस लिए बनाता है ? विधाता ने जब बड़े-बड़े पेंड़ों के नीचे ही इनको निवास दिया है तब उज्ज्वल महलों को बनाकर (व्यर्थ) क्यों परिश्रम किया ?

दो०–जौं ए मुनि पट-धर जटिल सुन्दर सुठि सुकुमार ।
बिबिध भांति भूषन बसन बादि किये करतार ॥११९॥

शब्दार्थ–जटिल=जटा वाला, जटा धारण करने वाला । सुठि=अत्यन्त ।

अर्थ—यदि ये सुन्दर, अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियों का वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो तरह-तरह के भूषण और वस्त्र विधाता ने व्यर्थ ही बनाये।

जौं ए कंद मूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥
एक कहहिं ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भये बिधि न बनाये॥

अर्थ—यदि ये कन्द, मूल, फल खाते हैं, तो संसार में अमृत आदि भोजन व्यर्थ .. । कोई कहता है, कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। ये अपने आप प्रकट हुए हैं, इन्हें ब्रह्मा ने नहीं बनाया है।

जहँ लगि बेद कही बिधि करनी। स्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दसचारी। कहँ अस पुरुष कहां असि नारी॥

शब्दार्थ—करनी=करतूत, काम। स्रवन=कान।

अर्थ—हमारे कान, आंख और मन में अनुभव करने वाली करतूतों का वर्ण करके जहां तक वेदों ने कहा है, वहां तक चौदहों लोकों में ढूंढ़ कर देख लो कि ऐ पुरुष और ऐसी स्त्री कहाँ हैं?

इन्हहिं देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आये। तेहि इरिषा बन आनि दुराये॥

शब्दार्थ—अनुरागा=प्रेमाभिभूत हो गया, मुग्ध हो गया। पटतर=समत बराबरी। ऐक=ऐक्य, समता, बराबरी। इरिषा=ईर्ष्या, डाह। दुराये=छिपाया है

अर्थ—इनको देखकर विधाता का मन मुग्ध हो गया और वह इनकी ही सम की दूसरा स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, किन्तु इनकी बराब का एक भी नहीं बना; उसी ईर्ष्या से उसने इन्हें वन में ला छिपाया है।

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहिं परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुन्य-पुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥

शब्दार्थ—लेखे=गिनती, समझ।

अर्थ—एक कहते हैं कि हम बहुत नहीं जानते। अपने को ही हम परम ध मानते हैं। हमारी समझ में फिर वे भी अत्यन्त पुण्यवान् हैं, जो इन्हें देख रहे जो देखेंगे और जिन्होंने देखा है।

दो०—एहि विधि कहि कहि वचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥१२०॥

अर्थ—इस प्रकार प्रिय वचन कह-कह कर वे आंखों में आंसू भर लेते हैं, और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले कठोर रास्ते पर कैसे चलेंगे।

नारि सनेह विकल बस होहीं। चकई सांझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहहिं बरबानी॥

शब्दार्थ—गहबरि=स्त्रियां।

अर्थ—स्त्रियां स्नेह वस विकल हो रही हैं, जैसे सन्ध्या समय चकवी सोहती है (दुःखी होती है)। इनके चरण कमल को कोमल तथा मार्ग को कठोर जानकर वे व्यथित हृदय से सुन्दर वाणी कहती हैं—

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमन मय मारगु कीन्हा॥

शब्दार्थ—अरुनारे=लाल।

अर्थ—इनके कोमल लाल चरणों को छूते ही पृथ्वी इस तरह सकुचाती है; जैसे हमारे हृदय। ईश्वर ने यदि इन्हें वन दिया, तो रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया।

जौं मांगा पाइय बिधि पाहीं। ए रखिअहि सखि आंखिन्ह माहीं॥
जे नरनारि न अवसर आये। तिन्ह सिय राम न देखन पाये॥

अर्थ—यदि ब्रह्मा से मुंह मांगा वर मिले, तो हे सखि! [illegible] में ही रखें। जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आये, वे [illegible] नहीं देख सके।

सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई। [illegible]॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। [illegible]॥

शब्दार्थ—समरथ=समर्थ, [illegible]

अर्थ—उनके सुन्दर [illegible] कि हे भाई! [illegible] वे कहां तक गये होंगे? [illegible] उनके दर्शन [illegible] हैं और [illegible] हैं।

दो०— [illegible]
होहिं [illegible]

शब्दार्थ—अबला=स्त्री। मीजहिं=मलते हैं। इमि=इस तरह।

अर्थ—स्त्रियां, बालक और बूढ़े दर्शन न पाने से हाथ मलते और पछताते हैं। इस तरह श्रीरामचन्द्रजी जहां जाते हैं, वहीं के लोग प्रेम के वश हो जाते हैं।

गांव गांव अस होइ अनंदू। देखि भानु-कुल -कैरव चंदू॥
जे यह समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं॥

शब्दार्थ—कैरव=कुमुदिनी। भानुकुल कैरव चंदू=सूर्य वंश रूपी कुमुदिनी के चन्द्रमा।

अर्थ—सूर्य वंश रूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्रमा के सदृश श्रीरामचन्द्रजी को देखकर प्रत्येक गांव में ऐसा ही आनन्द हो रहा है। जो कोई उनके वनवास का समाचार सुन पाता है, वही राजा और रानी को दोष लगाता है।

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेहि लोचन लाहू॥
कहहिं परसपर लोग लोगाई। बातें सरल सनेह सुनाई॥

अर्थ—कोई कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें नेत्रों का लाभ दिया। सभी स्त्री-पुरुष आपस में इस प्रकार की सीधी (छल-रहित), स्नेहमयी और सुन्दर बातें कहते हैं।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहां ते आये॥
धन्य सो देस सैल बन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊं॥

शब्दार्थ—जाये=पैदा किया। सैल (शैल)=पर्वत। ठाऊँ=स्थान।

अर्थ—जिन माता-पिता ने इन्हें पैदा किया वे धन्य हैं। वह नगर धन्य है जहां से ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन, गांव तथा वह सब स्थान धन्य हैं जहां-जहां ये जाते हैं।

सुख पायउ विरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भांति सनेही॥
राम-लषन -पथि-कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

शब्दार्थ—विरंचि=ब्रह्मा। पथि (पथी)=यात्री, पथिक।

अर्थ—ब्रह्मा ने उनको भी बना कर सुख पाया है, जिनके ये सब तरह से स्नेही हैं। पथिक श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी की सुन्दर कथा सब रास्तों और वनों में छा गयी है।

दो०– एहि विधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत ।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

शब्दार्थ–सौमित्रि=लक्ष्मणजी ।

अर्थ–रघुवंश रूपी कमल के सूर्य श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार रास्ते के लोगों को सुख देते, सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ वन देखते हुए चले जा रहे हैं ।

आगे राम लषन बने पाछे । तापस बेष बिराजत काछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म-जीव-बिच माया जैसी ॥

शब्दार्थ–बने=सजे हैं । काछे=समीप, लाँग मारे, वनाये हुए । उभय=दोनों ।

अर्थ–तपस्वियों सा वेष वनाये आगे श्रीरामजी और पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं । दोनों के वीच में सीताजी कैसी शोभा पा रही हैं जैसे ब्रह्म और जीव के वीच में माया ।

वहुरि कहउँ छवि जसि मन वसई । जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा वहुरि कहउं जिय जोही । जनु वुध बिधु बिच रोहिनि सोही ॥

शब्दार्थ–मधु=वसन्त ऋतु । मदन=कामदेव । रति=कामदेव की स्त्री । जोही=खोजकर । वुध=चन्द्रमा का पुत्र । रोहिनि=चन्द्रमा की स्त्री । लसई=शोभित है ।

अर्थ–फिर जैसी शोभा मेरे मन में वस रही है उसको कहता हूँ–मानो कामदेव और वसन्त ऋतु के वीच में रति शोभित है । फिर अपने हृदय में (दूसरी) उपमा ढूढ़कर कहता हूँ–मानो चन्द्रमा और वुध के वीच में रोहिणी शोभा पा रही हो ।

प्रभु–पद-रेख वीच विच सीता । धरति चरन मग चलति सभीता ॥
सीय राम पद अंक वराये । लषन चलहिं मग दाहिन वायें ॥

शब्दार्थ–रेख=चिह्न, रेखा । वीच विच=वीचो-वीच, वीच-वीच में । धरति=रखती है । सभीता=डरती हुई । अंक=चिह्न । वराये=वचाकर ।

अर्थ–सीताजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरण चिह्नों के वीच-वीच में डरती हुई (कि मेरे चरण प्रभु के चरण चिह्नों पर न पड़ जायें) रास्ते में पैर रखती हैं और लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी दोनों के चरण चिह्नों को वचाते हुए दाहिने-वायें रास्ता चल रहे हैं ।

राम-लषन-सिय-प्रीति सुहाई । वचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छवि होही । लिये चोरि चित राम वटोही ॥

शब्दार्थ—चोरि=चुरा। बटोही=पथिक, यात्री।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी का सुन्दर प्रेम वाणी से परे (अनिर्वचनीय) है, उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है। उनकी शोभा को देख कर पशु-पक्षी भी आनन्द-मग्न हो जाते हैं। पथिक श्रीरामजी ने उनके चित्त को भी चुरा लिया है।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव-मग-अगम अनंद तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ ॥१२३॥

शब्दार्थ—भव-मग-अगम=संसार का अगम्य मार्ग। सिराइ=समाप्त करना, पार करना।

अर्थ—जिन-जिन लोगों ने सीताजी के साथ दोनों पथिक भाइयों को देखा, वे बिना परिश्रम ही संसार के कठिन मार्ग को पार कर गये (संसार से मुक्त हो गये)।

अजहुं जासु उर सपनेहुं काऊ। बसहिं लखन-सिय-राम बटाऊ ॥
राम-धाम-पथ पाइहिं सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥

शब्दार्थ—अजहुँ=आज भी। बटाऊ=पथिक। राम धाम=बैकुण्ठ धाम। पथ=रास्ता।

अर्थ—आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामजी बटोही रूप में बसें, वही श्रीरामचन्द्रजी के धाम (बैकुण्ठ) का रास्ता पायेगा, जिस रास्ते को कोई-कोई (विरले) मुनि पाते हैं।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बट सीतल पानी ॥
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥

अर्थ—तब श्री रामचन्द्रजी सीताजी को थकी हुई जानकर और निकट ही बटका वृक्ष और शीतल जल देख और कन्द, मूल, फल खाकर उस दिन वहीं ठहर गये; फिर प्रातःकाल स्नान करके चले।

देखत बन सर सैल सुहाये। बालमीकि आश्रम प्रभु आये ॥
राम दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन ॥

शब्दार्थ—मुनिवास=मुनि का आश्रम। पावन=पवित्र।

अर्थ—वन, तालाब और सुन्दर पर्वतों को देखते हुए, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के आश्रम में आये। श्रीरामचन्द्रजी ने सुन्दर पर्वत, वन और पवित्र जल से युक्त मुनिके सुन्दर आश्रम को देखा।

सरनि सरोज विटप बन फूले । गुंजत मंजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं । बिरहित बैर मुदित मन चरहीं ॥

शब्दार्थ—मधुप=भौंरा । विपुल=बहुत । रस-पराग=पुष्प-रस । बिरहित=बिना । बैर=शत्रुता । चरहीं=घूमते हैं ।

अर्थ—तालावों में कमल और वनों में वृक्ष फूले हुए हैं । पुष्प-रस में भूले हुए भौंरे गुंजार कर रहे हैं । वहुत से पशु-पक्षी कोलाहल कर रहे हैं और वैर-रहित हो प्रसन्न मन से घूम रहे हैं ।

दो०—सुचि सुन्दर आश्रम निरखि हरषे राजिवनैन ।
सुनि रघुवर-आगमन मुनि आगे आयेउ लैन ॥१२४॥

शब्दार्थ—हरषे=प्रसन्न हुए । राजिवनैन=कमल के समान नेत्र वाले । आयउ=आये, बढ़े । लैन=लेने ।

अर्थ—कमल नयन श्रीरामचन्द्रजी इस पवित्र और सुन्दर आश्रम को देख कर प्रसन्न हुए । श्रीरामजी का आना सुनकर वाल्मीकि मुनि आगे बढ़कर लेने आये ॥१२४॥

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा । आसिरवाद बिप्रवर दीन्हा ॥
देखि राम छवि नयन जुड़ाने । करि सनमान आश्रमहिं आने ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने मुनि को दण्डवत किया । ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया । श्रीरामचन्द्रजी की शोभा देख उनके नेत्र शीतल हो गये । सम्मान-पूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में लाये ।

मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये । कंद मूल फल मधुर मँगाये ॥
सिय सौमित्र राम फल खाये । तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥

अर्थ—मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने प्राणों से प्रिय अतिथि को पाकर, उनके लिए मीठे-मीठे कन्द, मूल और फल मँगवाये । सीताजी, लक्ष्मणजी और श्री-रामचन्द्रजी ने फलों को खाया । तब मुनि ने विश्राम करनेके लिए उन्हें सुन्दर आसन दिया ।

वालमिकि मन आनंद भारी । मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥

शब्दार्थ—निहारी=देखकर । स्रवन=कान ।

अर्थ—अपने नेत्रों से मंगल की मूर्ति श्रीरामचन्द्रजी को देखकर वाल्मीकिजी के मन को अपार आनन्द हुआ। फिर श्रीरामचन्द्रजी ने दोनों कर कमलों को जोड़कर, कानों को सुख देने वाले वचन बोले—

तुम्ह त्रिकाल-दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भांति दीन्ह बन रानी॥

शब्दार्थ—त्रिकाल=तीनों काल, भूत, वर्त्तमान, भविष्य। बिस्व (विश्व) ब्रह्माण्ड, जगत्। बदर=बेर। बखानी कह सुनाया।

अर्थ—हे मुनिनाथ! आप त्रिकालज्ञ हैं। समस्त ब्रह्माण्ड आपके हाथ प बेर के समान है। ऐसा कहकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने, जिस-जिस तरह से रानी ने उन्हें वनवास दिया था, सब बातें कह सुनायीं।

दो०—तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मों कहुं दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ॥१२५॥

शब्दार्थ—तात=पिता।

अर्थ—हे प्रभो! पिता की आज्ञा का पालन, माता का हित, भाई भरत का राजा होना तथा आपके दर्शन पाना—यह सब मेरे पुण्यों का ही प्रभाव है॥१२५॥

देखि पाय मुनि राय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावइ कोई॥

शब्दार्थ—उदबेग (उद्वेग)=कष्ट।

अर्थ—हे मुनिराज! आपके चरणों को देखकर, हमारे सभी पुण्य सफल हो गये। अब आपकी जहां आज्ञा हो और किसी मुनि. को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर-रोषू॥

शब्दार्थ—ददहीं=जलते हैं। भूसुर=ब्राह्मण।

अर्थ—क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी कष्ट पाते हैं, वे राजा बिना आग के ही जलकर भष्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों की प्रसन्नता सब मंगलों की जड़ है और ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों वंशों को जला डालता है।

अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करउँ कछु काल कृपाला॥

शब्दार्थ—परन (पर्ण)=पत्ता। साला=घर, कुटी।

अर्थ—ऐसा हृदय में समझ कर, वह स्थान बतलाइये, जहां मैं सीता और लक्ष्मण के साथ जाकर और तृण—पत्तों की सुन्दर कुटी बना कर हे दयालु ! कुछ दिनों तक वास करूँ।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥
कस न कहहु अस रघु-कुल-केतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

शब्दार्थ—साधु-साधु=धन्य-धन्य। केतू=पताका, शिरोमणि। संतत=हमेशा। सेतू=पुल, मर्यादा।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की स्वाभाविक सरल वाणी को सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकिजी 'धन्य-धन्य' कहते हुए बोले—हे रघुकुल शिरोमणि ! आप ऐसा क्यों न कहेंगे ? आप सदा वेदों की मर्यादा का पालन करनेवाले हैं।

छंद—श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीस अहीस महि धरु लषन सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल-निसिचर-अनी॥

शब्दार्थ—सृजति=रचती हैं, बनाती हैं। हरति=नाश करती हैं। सहस सीस=हजार सिर वाले, शेषनाग। अहीस=सर्पराज। सचराचर=जगत। धनी=पति, स्वामी। अनी=सेना।

अर्थ—हे राम ! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकी जी आपकी माया हैं, जो आप कृपा के भाण्डार की इच्छा से संसार की रचना, पालन और नाश करती हैं। जो हजार सिर रखनेवाले सर्पराज और अपने मस्तक पर पृथ्वी को धारण करने वाले शेषजी हैं वही तो चराचर के स्वामी लक्ष्मणजी हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण कर दुष्ट राक्षसों की सेना का संहार करने के हेतु चले हैं।

सो०—राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥१२६॥

शब्दार्थ—बुद्धिपर=बुद्धि से परे। नेति (न+इति) जिसका अन्त नहीं है, अनन्त। निगम=वेद, शास्त्र।

अर्थ—हे रामजी ! आपका स्वरूप वाणी से न कहने योग्य और बुद्धि से परे, अज्ञात, अकथनीय और अपार है । वेद जिसका वर्णन 'नेति-नेति' कहकर करता है।

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे । बिधि हरि संभु-नचावनि हारे ॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा । अउर तुम्हहिं को जाननिहारा ॥

शब्दार्थ—पेखन=देखने की वस्तु, दृश्य ।

अर्थ—हे राम ! यह जगत् दृश्य और आप उसके देखनेवाले हैं । आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचानेवाले हैं । वे भी आपके भेद को नहीं जानते, तो फिर आपको जाननेवाला दूसरा और कौन है ?

सोइ जानइ जेहि देहु जनाइ । जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई ॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन । जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥

अर्थ—जिसको आप जना देते हैं, वही आप को जानता है और जानते ही वह आप का ही स्वरूप हो जाता है । हे श्रीरामचन्द्रजी, हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चन्दन ! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं ।

चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नरतनु धरेउ संत-सुर-काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥

शब्दार्थ—विगत विकार=जन्म-मरणादि विकारों से रहित । प्राकृत=प्रकृति के तत्वों से बने, लौकिक ।

अर्थ—आपकी देह चैतन्य, आनन्दमय और विकार रहित है । इसको अधिकारी पुरुष ही जान सकते हैं । देवता और संतों के कार्य के लिए आपने मनुष्य का शरीर धारण किया है और लौकिक राजाओं की भांति आप कहते और कार्य करते हैं ।

सु
वे

दो०–पूछेहु मोहिं कि रहौं कहँ मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ ॥१२७॥

शब्दार्थ–ठाउँ=स्थान ।

अर्थ–आपने मुझसे पूछा कि मैं कहां रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि आप जहां न हों वह स्थान मुझे बता दीजिये तो फिर मैं आपको रहने का स्थान दिखा दूँ ॥ १२७ ॥

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने । सकुचि राम मन महँ मुसुकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी । बानी मधुर अमिय रस बोरी ॥

शब्दार्थ–बहोरी=फिर । बोरी=डुबोयी हुई । अमिय=अमृत ।

अर्थ–मुनि के प्रेम रस में सने हुए वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी सकुचाकर मन में ही मुस्कराये । बाल्मीकिजी हँसकर अमृत रस में डुबोयी हुई मधुर वाणी फिर बोले–

सुनहु राम अब कहहु निकेता । जहां बसहु सिय लषन-समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥

शब्दार्थ–निकेता=स्थान, वास-स्थान । सरि=नदी ।

अर्थ–हे रामचन्द्रजी ! सुनिये, अब मैं आपके रहने के लिए स्थान बताता हूँ, जहां सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ आप रहें । जिनके कान समुद्र के समान हों और आपकी कथा रूपी अनेक सुन्दर नदियां–

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे । तिन्हके हिय तुम्ह कहँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

शब्दार्थ–रूरे=सुन्दर । चातक=पपीहा । जलधर=मेघ, बादल ।

अर्थ–उनको निरन्तर भरती हैं तो भी वे (भरते नहीं) पूरे नहीं होते, उन्हीं के हृदय आपके रहने के सुन्दर घर हैं । जिन्होंने अपने नेत्रों को पपीहा बना रखा है और जो सदा आपके दर्शन रूपी मेघ के अभिलाषी हैं–

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

शब्दार्थ–निदरहिं=निरादर करते हैं । सह=साथ ।

अर्थ–और जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और तालावों का निरादर करते

हैं तथा आपके रूप रूपी जल की एक बूंद पाकर सुखी हो जाते हैं; हे रघुनाथजी! उनके हृदय रूपी सुख देनेवाले घरों में आप भाई और सीता-सहित निवास करें।

दो०—जस तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ राम बसहु मन तासु ॥१२८॥

शब्दार्थ—मानस=मानसरोवर। जीहा=जिह्वा, जीभ। मुकताहल=मोती।

अर्थ—हे रामजी! आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणों के समूह रूपी मोतियों को चुगती है, उसी के हृदय में आप रहें ॥ १२८ ॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥

शब्दार्थ—नासा=नासिका, नाक। निवेदित=अर्पित करना।

अर्थ—जिसकी नाक आपके पवित्र, सुन्दर और सुगन्धित प्रसाद को नित्य प्रति आदर के साथ ग्रहण करती है, जो आपको अर्पित करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद स्वरूप वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं—

सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेखी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥

अर्थ—जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता और प्रेमपूर्वक झुक जाते हैं; जिनके हाथ सदा श्रीरामचन्द्रजी (आप) के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में आपके सिवा किसी दूसरे का भरोसा नहीं है—

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मनमाहीं ॥
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा ॥

अर्थ—जिनके चरण आपके तीर्थों में चले जाते हैं, हे श्रीरामजी! उनके हृदय में आप बसें। जो आपके नाम का श्रेष्ठ मंत्र जपते हैं और कुटुम्ब सहित आपकी पूजा करते हैं—

तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जेंवाइ देहिं वहु दाना ॥
तुम्ह ते अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी ॥

शब्दार्थ—तरपन (तर्पण)=देवता-पितरों आदि को तृप्त करने के लिए जल देने की क्रिया।

अर्थ—जो अनेकों प्रकार से तर्पण और हवन आदि करते हैं और ब्राह्मणों को भोजन कराके वहुत से दान देते हैं; तथा जो गुरु को अपने हृदय में आपसे भी अधिक (वड़ा) जानकर, सब भाव से आदरपूर्वक उनकी सेवा करते हैं—

दो०—सब करि मांगहिं एक फलु राम-चरन-रति होउ ।
तिन्हके मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥१२९॥

अर्थ—यह सब करके जो सव का एक ही फल मांगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, हे रघुनन्दन ! उनके ही मन रूपी मन्दिर में सीताजी के साथ आप दोनों भाई निवास करें ॥ १२९ ॥

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया । तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया ॥

शब्दार्थ—काम = कामना, किसी बात की इच्छा । कोह = क्रोध । मद = अहंकार । मान = अभिमान । राग = अनुराग, किसी में प्रेम । दंभ = पाखण्ड, अहंकार ।

अर्थ—जिनके न काम है, न क्रोध है, न मद है, न अभिमान है और न मोह है ; न लोभ है , न क्षोभ है, न प्रीति है न शत्रुता है, न तो कपट, न दम्भ और न माया ही है, हे रघुराज ! आप उनके ही हृदय में वास कीजिये ।

सवके प्रिय सवके हितकारी । दुख-सुख सरिस प्रसंसागारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

शब्दार्थ—प्रसंसा = प्रशंसा, वड़ाई । गारी = गाली, निन्दा ।

अर्थ—जो सवके प्रिय और सव की भलाई करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा और निन्दा दोनों ही समान हैं, जो विचार करके सदा सत्य और प्रिय वचन वोलते हैं, तथा जो जागते और सोते निरन्तर आपकी ही शरण में रहते हैं—

तुम्हहिं छांड़ि गति दूसरि नाहीं । राम वसहु तिन्हके मनमाहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धन पराव विष तें विष भारी ॥

अर्थ—जिन्हें आपको छोड़ दूसरी कोई गति नहीं है, हे राम ! उन्हीं के मन में आप वसें । जो पराई स्त्री को माता के समान जानते हैं और जिनके लिए दूसरे का धन विप से भी वढ़ कर विषैला है—

जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं पर विपति विसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पियारे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

अर्थ—जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देख विशेष रूप से दु:खी होते हैं; हे राम ; जिनको आप प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, उन्हीं के मन आपके लिए सुन्दर शुभ भवन हैं।

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिनके सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्हके बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ—हे तात ! आप ही जिनके स्वामी, मित्र, पिता, माता और गुरु सब कुछ हों, उन्हीं के मन रूपी मन्दिर में सीताजी के साथ आप दोनों भाई निवास करें।

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं । बिप्र - धेनु-हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्हकर मन नीका ॥

शब्दार्थ—गहहीं = ग्रहण करते हैं। धेनु = गाय। लीका = थाप, गणना, मर्यादा।

अर्थ—जो अवगुणों को त्याग सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, जो ब्राह्मण और गो जाति के हित के लिए संकट सहते हैं, नीति निपुणता में जिनकी संसार में मर्यादा है, उन्हीं का सुन्दर मन आपका घर है।

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भांति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेहीं । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥

अर्थ—जो आपके गुणों और अपने दोषों को समझते हैं, जिन्हें सब तरह से आपका ही भरोसा है और जिनको राम (आपके) के भक्त प्रिय लगते हैं, उनके हृदय में आप जानकी सहित वास करें।

जाति पांति धन धरम बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुख दाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ लउ लाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥

शब्दार्थ—लउ (लौ) = लगन, प्रेम।

अर्थ—जाति-पांति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुखदाई घर—सबको छोड़कर जो आप में ही लौ लगाये रहते हैं, हे श्री रामजी ! आप उनके हृदय में रहिये।

सरग नरक अपबरग समाना । जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ॥
करम - बचन - मन राउर चेरा । राम करहु तिन्हके उर डेरा ॥

शब्दार्थ—अपवरग (अपवर्ग) = मोक्ष। चेरा = दास। डेरा = स्थान, निवास।

अर्थ—जिनको स्वर्ग, नरक और मोक्ष सब समान हैं, जो सब जगह आपको ही

धनुष-बाण धारण किये देखते हैं, जो मन-वचन और कर्म से आपके दास हैं, हे राम ! उन्हीं के हृदय में आप वासस्थान बनाइये ।

दो०–जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥१३१॥

अर्थ–जिसको कभी किसी वस्तु की चाह नहीं है, जिसका आप में स्वाभाविक प्रेम है, उसके मन में आप सदा रहिये; वही आपका अपना घर है ॥ १३१ ॥

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाये । बचन सप्रेम राम मन भाये ॥
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक । आश्रमु कहउं समय सुखदायक ॥

अर्थ–इस प्रकार मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने श्रीरामचन्द्रजी को घर दिखाया । उनके प्रेममय वचन श्रीरामजी के मन को अच्छे लगे । फिर मुनि ने कहा, हे सूर्यवंश के स्वामी ! सुनिये, अब मैं इस समय के अनुकूल सुख देनेवाला स्थान कहता हूँ–

चित्रकूट गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भांति सुपासू ॥
सैल सुहावन कानन चारू । करि केहरि-मृग-बिहंग बिहारू ॥

अर्थ–आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिये । वहां आपके लिए सब तरह की सुविधा है । सुहावना पर्वत और सुन्दर वन है । वह हाथी, सिंह और पशु-पक्षियों का विहार-स्थल है ।

नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रि प्रिया निज-तप-बल आनी ॥
सुरसरि धार नाउं मंदाकिनि । जो सब-पातक-पोतक - डाकिनि ॥

शब्दार्थ–पुनीत= पवित्र । पोतक=बच्चा । डाकिनि= डायन ।

अर्थ–वहां अत्यन्त पवित्र नदी है, जिसकी प्रशंसा पुराणों ने की है । उसे अत्रि ऋषि की पत्नी (अनुसूया) जी अपने तपोबल से लायी हैं । वह गंगाजी की एक धारा है और उसका नाम मन्दाकिनी है, जो समस्त पाप रूपी बच्चों को खा जाने के लिए डाकिनी के समान है ।

नोट–(१) चित्रकूट–यह पर्वत विन्ध्याचल का पिछला भाग है । प्रयाग से ६० मील के लगभग बांदा जिले में है । इसका घेरा ४ मील में है । इसको प्रमोद पर्वत भी कहते हैं । चित्रकूट के नीचे पयस्विनी और मन्दाकिनी नाम की दो नदियां बहती हैं । रामनवमी और दिवाली के दिन यहां दूर-दूर से यात्री आते हैं ।

(२)मन्दाकिनी—जब वृद्ध ऋषियों को गंगा स्नान जाने में कष्ट होने लगा तब अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूयाजी अपने तप के बल से गंगाजी की इस धार को यहां लायी। यह आकर पयस्विनी में मिल गयी यहां से पयस्विनी का ना लोप हो गया।

अत्रि आदि मुनि-वर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू॥

शब्दार्थ—कसहीं= कष्ट देते हैं। गिरिवरहू= पर्वतराज को।

अर्थ—वहां अत्रि आदि अनेक श्रेष्ठ मुनि वास करते हैं; जो योग, जप और तप द्वारा अपने शरीर को कष्ट पहुँचाते हैं। हे रामजी! आप वहां चलिये और सब के परिश्रम को सफल कीजिये तथा पर्वतराज चित्रकूट को भी गौरव दीजिये—

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित वर सिय समेत दोउ भाइ॥१३२॥

शब्दार्थ—अमित= अपार, असीम। गाइ= वर्णन करके।

अर्थ—महामुनि बाल्मीकिजी ने चित्रकूट पर्वत की अपार महिमा को वर्णन कर कह सुनाया। फिर सीताजी के सहित दोनों भाइयों ने आकर नदियों में श्रेष्ठ मन्दाकिनी में स्नान किया॥१३२॥

रघुबर कहेउ लषन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फेरेउ धनुष जिमि नारा॥

शब्दार्थ—घाटू= घाट। कतहुँ= कहीं। ठाहर=ठहरने का स्थान। ठाटू= प्रबन्ध। पय= पयस्विनी। उतर= उत्तर। करारा= किनारा। नारा= नाला।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे लक्ष्मण! यह घाट तो बड़ा ही अच्छा है। अब यहीं कहीं ठहरने के स्थान का प्रबन्ध करो। तब लक्ष्मणजी ने नदी के उत्तरी किनारे को देखा, जो ऐसा मालूम होता था मानो कोई नाला धनुष के जैसा चारों ओर फिरा हुआ है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥

शब्दार्थ—पनच= प्रत्यञ्चा, धनुष की डोरी। सर= बाण। कलुष= पाप।

कलि= कलियुग। अचल= दृढ़, पक्का। अहेरी= शिकारी। घात= दांवँ, निशाना, वार। मुठभेरी= सामना, टक्कर।

अर्थ—नदी तो मानों उस धनुष की डोरी है, शम, दम और दान वाण हैं, कलियुग के समस्त पाप अनेकों प्रकार के शिकार हैं और चित्रकूट मानो पक्का शिकारी है, जो सामना होते ही उन पाप रूपी शिकारों को मार गिराता है, उसका वार कभी खाली नहीं जाता।

अस कहि लषन ठांव देखरावा। थल बिलोकि रघुबर सुख पावा॥
रमेउ राममन देवन्ह जाना। चले सहित सुरपति पर धाना॥

शव्दार्थ—रमेउ= टिक गया, जँच गया। परधाना (प्रधान)=नायक, स्वामी।

अर्थ—ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखलाया। स्थान को देख कर श्रीरामचन्द्रजी वहुत सुखी हुए। देवताओं ने जब यह जाना कि श्रीरामजी का मन वहां टिक गया, तव वे अपने नायक इन्द्र के साथ चले।

कोल-किरात-बेष सब आये। रचे परन तृन-सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

शव्दार्थ—मंजु= सुन्दर। साला= कुटी। ललित= अत्यन्त सुन्दर।

अर्थ—सव देवता कोल-भीलों के वेष में आये और उन्होंने पत्तों और घासों के सुन्दर घर वना दिये। उन्होंने एक छोटी और एक वड़ी दो ऐसी सुन्दर कुटियां वनायीं जिनका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—लषन-जानकी-सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदन मुनि बेष जनु रति-रितुराज समेत॥१३३॥

शव्दार्थ—राजत= शोभायमान हैं। रुचिर= सुन्दर। निकेत= स्थान, कुटी।

अर्थ—लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उस सुन्दर पर्णशाला में ऐसे शोभायमान हैं मानो कामदेव मुनि के वेष में रति और ऋतुराज वसन्त के साथ सुशोभित हों।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आये तेहि काला॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥

शव्दार्थ—अमर= देवता।

अर्थ—उसी समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल सभी चित्रकूट में आये।

श्रीरामचन्द्रजी ने सब किसी को प्रणाम किया। देवता अपने नेत्रों का फल पा कर प्रसन्न हुए।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि विनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज-निज सदन सिधाये॥

अर्थ—फूल वर्षा कर देवता गण बोले,—हे नाथ! (आपका दर्शन पाकर) आज हम सनाथ (सुखी) हो गये। फिर प्रार्थना करके उन्होंनें अपने दुःसह दुःख को कह सुनाया और प्रसन्न हो अपने-अपने वासस्थान को गये।

चित्रकूट रघुनन्दन छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनि वृंदा। कीन्ह दंडवत रघु कुल चंदा॥

शब्दार्थ—छाये= आ बसे। बृन्द= समूह।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट में आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुन कर मुनि लोग वहां आये। मुनियों को आनन्दित हो आते देख कर रघुवंश के चन्द्रमा श्रीराम-चन्द्रजी ने प्रणाम किया।

मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥
सिय सौमित्र राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

शब्दार्थ—साधन= साधना, तपस्या, सिद्धि। लेखहिं= गिनते हैं, समझते हैं।

अर्थ—मुनि लोग श्रीरामचन्द्रजी को हृदय से लगा लेते हैं और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामजी की शोभा को देखते हैं और अपनी सारी साधनाओं को सफल हुआ समझते हैं।

दो०—जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किये मुनिवृन्द।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हिसुछंद॥१३४॥

शब्दार्थ—जथा जोग (यथा योग्य)= जो जिस लायक था वैसा सुछंद=स्वच्छन्द।

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने मुनिवृन्द का यथा योग्य सत्कार करके उन्हें विदा किया। अब वे मुनि अपने आश्रमों में स्वतन्त्रता से योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे॥ १३४॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥

शब्दार्थ—नव निधि= निधियां ९ हैं—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व (ये कुवेर के खजानों के नाम हैं)।

अर्थ—यह खवर जव कोल-भीलों ने पायी तो इतने प्रसन्न हुए मानो नवों निधियां उनके घरों में आ गयी हों। वे दोनों में कन्द, मूल और फल भर-भरकर चले, मानो दरिद्र सोना लूटने जा रहे हों।

तिन्ह महं जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहिं पूछहिं मग जाता॥
कहत सुनत रघुवीर निकाई। आइ सवन्हि देखे रघुराई॥

शब्दार्थ—अपर= दूसरे। निकाई= श्रेष्ठता, सुन्दरता।

अर्थ—उनमें से जो दोनों भाइयों को देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्ते में जाते हुए पूछते हैं। इस प्रकार उन सव लोगों ने श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर उनका दर्शन किया।

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक सरीर नयन जल बाढ़े॥

शब्दार्थ—जोहारु= प्रणाम।

अर्थ—भेंट को आगे रखकर सव प्रणाम करते हैं और वड़े प्रेम से प्रभु श्रीराम-चन्द्रजी को देखते हैं। वे सव चित्र में लिखे हुए के समान जहां के तहां खड़े हैं। उनके शरीर पुलकायमान हो रहे हैं और नेत्रों में आंसू भर आये हैं।

राम सनेह मगन सव जाने। कहि प्रिय वचन सकल सनमाने॥
प्रभुहिं जोहारि वहोरि वहोरी। वचन विनीत कहहिं करजोरी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने सवको प्रेम मग्न समझ, प्यारे वचन कहकर सव-का सम्मान किया। वे वार-वार श्रीरामजी को प्रणाम करके हाथ जोड़ नम्र वचन कहते हैं—

दो—अव हम नाथ सनाथ सव भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसल राय॥१३५॥

शब्दार्थ—सनाथ= सुखी।

अर्थ—हे नाथ! अव आपके चरणों के दर्शन कर हम सव सनाथ हो गये। हे कोशल-राज! हमारे ही भाग्य से आपका यहां आना हुआ है॥ १३५॥

धन्य भूमि बन पंथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥
धन्य बिहंग मृग काननचारी । सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी ॥

शब्दार्थ–पंथ= मार्ग, रास्ता । धारा= रखा । कानन चारी= वन में विचरनेवाले

अर्थ–हे नाथ ! आपने जहां-जहां अपने चरण रखे हैं, वह भूमि, वे वन, मार्ग और वे पहाड़ धन्य हैं । वे वन में विचरनेवाले पशु और पक्षी धन्य हैं, आपके दर्शन कर उनके भी जन्म सफल हो गये ।

हम सब धन्य सहित परिवारा । दीख दरस भरि नयन तुम्हारा ॥
कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी । इहां सकल रितु रहब सुखारी ॥

अर्थ–हम सब भी परिवार सहित धन्य हैं, जो नेत्र भर आपके दर्शन किये आपने अच्छा स्थान सोचकर निवास किया है । यहां आप सब ऋतुओं में सुखी रहेंगे ।

हम सब भांति करब सेवकाई । करि-केहरि-अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा । सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥

शब्दार्थ–अहि= सर्प । बराई= बचाकर, अलग कर । बेहड़= बीहड़, विकट । जोहा= देखा ।

अर्थ–आपको हाथी, सिंह, सर्प और बाघ से बचाकर, हम लोग सब तरह से आपकी सेवा करेंगे । हे प्रभो ! यहां का भयानक वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह सभी पग-पग हमारे देखे हुए हैं ।

तहं तहं तुम्हहि अहेर खेलाउब । सर निरझर जल ठाउँ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचब आयसु देता ॥

शब्दार्थ–निरझर (निर्झर)= झरना ।

अर्थ–वहां-वहां हम आपको शिकार खेलायेंगे । तालाब, झरने आदि अच्छे-अच्छे स्थान दिखायेंगे । हम सकुटुम्ब आपके दास हैं । हे नाथ ! हमें आज्ञा देने में आप संकोच न कीजियेगा ।

दो०–बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुनाऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ॥१३६॥

शब्दार्थ–ऐन= घर ।

अर्थ–जो वेद के वचनों और मुनियों के मनकी पहुँच के बाहर हैं, वे करुणा

के घर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भीलों की बातें इस तरह सुन रहे हैं, जैसे पिता बालक की बात सुनता है।

रामहि केवल प्रेम पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम सकल वनचर तब तोषे । कहि मृदु वचन प्रेम परितोषे ॥

शब्दार्थ—वनचर= वनवासी । तोषे= प्रसन्न किया ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो, वह जान ले। तब श्रीरामजी ने समस्त वनवासियों को प्रसन्न किया और मीठे वचन कहकर प्रेम से सन्तुष्ट कर दिया।

बिदा किये सिर नाइ सिधाये । प्रभु गुन कहत सुनत घर आये ॥
एहि विधि सिय समेत दोउ भाई । बसहिं विपिन सुर मुनि सुखदाई ॥

अर्थ—श्रीरामजी ने फिर उन्हें विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के गुण कहते-सुनते घर आये। इस प्रकार देवता और मुनियों को सुख देनेवाले दोनों भाई सीताजी के सहित वन में रहने लगे।

जब तें आइ रहे रघुनायक । तब तें भयउ बनु मंगलदायक ॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना । मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥

शब्दार्थ—विटप= वृक्ष। बलित=लिपटी हुई। बेलि= लता। बिताना= मण्डप।

अर्थ—जब से श्रीरघुनाथजी आकर रहने लगे, तब से वन मंगलदायक हो गया। नाना प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं और उनपर सुन्दर लिपटी हुई लताओं के सुन्दर मण्डप तन गये हैं।

सुर तरु सरिस सुभाय सुहाये । मनहुं विबुधवन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर स्रेनी । त्रिविध बयारि बहै सुख देनी ॥

शब्दार्थ—विबुधवन= देवताओं का वन, नन्दन-वन। मंजुतर= अधिक सुन्दर। मधुकर= भौंरा। स्रेनी= समूह, श्रेणी। बयारि= हवा।

अर्थ—ये कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक सुन्दर हैं; मानों ये देवताओं के वन को छोड़कर यहां आये हैं। भौंरों का दल बहुत ही सुन्दर गुंजार कर रहा है और सुख देनेवाली तीनों प्रकार की हवाएँ वह रही हैं।

दो०—नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर ।
भांति भांति बोलहिं बिहँग स्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥

शब्दार्थ–नीलकंठ= एक प्रकार का पक्षी। कलकंठ= (सुन्दर गलावाली) कोयल। सुक= सुग्गा, तोता। चातक= पपीहा। चक्क= चकवा। चकोर= एक पक्षी। चितचोर= चित्त को चुरानेवाले, मनोहर।

अर्थ–नीलकण्ठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी मन को हरनेवाली और कानों को सुख देनेवाली तरह-तरह की बोलियां बोलते हैं ॥१३७॥

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृन्द बिसेखी ॥

शब्दार्थ–कोल= सूअर। कुरंगा= हिरन। बिगत बैर= शत्रुता छोड़कर। अहेर= शिकार।

अर्थ–हाथी, सिंह, बन्दर, सूअर और हिरन (आपस की) शत्रुता छोड़कर सभी साथ-साथ घूमते हैं। शिकार के लिए घूमते हुए श्रीरामचन्द्रजी की शोभा देखकर पशुओं के समूह बहुत ही प्रसन्न होते हैं।

बिबुध बिपिन जहँ लगि जगमाहीं। देखि राम बन सकल सिहाहीं ॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकल सुता गोदावरि धन्या ॥

शब्दार्थ–जहँ लगि= जहां तक, जितने। सरसइ= सरस्वती नदी। दिनकर-कन्या= सूर्य की पुत्री, यमुना। मेकलसुता= नर्मदा नदी। धन्या= पुण्यमयी।

अर्थ–संसार में जहांतक देवताओं के वन हैं, वे श्रीरामचन्द्रजी के वन को देखकर प्रशंसा करते हैं। गंगा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा और पुण्यमयी गोदावरी आदि नदियां–

सब सर सिंधु नदी नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुर बासू ॥

शब्दार्थ–उदयगिरि=उदयाचल। अस्तगिरि=अस्ताचल।

अर्थ–सभी तालाव, समुद्र, नदी और अनेक नद मन्दाकिनी की प्रशंसा करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश पर्वत, मन्दराचल और सुमेरु पर्वत जो देवताओं के वासस्थान हैं–

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते ॥
बिंध मुदित मन सुख न समाई। स्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई ॥

शब्दार्थ–सैल=शैल, पर्वत। जेते=जितने। तेते=उतने, वे सब। बिपुल=बहुत

अर्थ—और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं वे सभी चित्रकूट का यशगान कर रहे हैं। विना परिश्रम के ही वहुत वड़ाई पाकर विन्ध्याचल इतना प्रसन्न है कि उसके मन में सुख समाता ही नहीं।

दो०—चित्रकूट के विहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ—चित्रकूट के जितने पशु-पक्षी तथा लता, वृक्ष और तिनके आदि की जितनी जातियां (किस्में) हैं वे सभी पुण्यके ढेर और धन्य हैं, ऐसा देवता लोग दिन-रात कहा करते हैं ॥१३८॥

नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी ॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम पद के अधिकारी ॥

शब्दार्थ—नयनवंत=आंखवाले। बिसोकी=शोकरहित, सुखी। परसि=छूकर। अचर= न चलनेवाले, स्थावर, पर्वत, वृक्ष आदि।

अर्थ—आंखवाले श्रीरामचन्द्रजी की सुन्दर मूर्ति को देख, अपने जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं और अचर उनके चरणों की धूलि को छूकर सुखी होते हैं और इस प्रकार ये सब परमपद के अधिकारी हो गये।

सो वन सैल सुभाय सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिय कवनि बिधि तासू। सुख सागर जहँ कीन्ह निवासू ॥

अर्थ—वह वन और पर्वत स्वाभाविक सुन्दर, पवित्र से भी अधिक पवित्र और मंगलमय हैं। उसकी महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय, जहां सुख के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी ने ही निवास किया।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लषन राम रहे आई ॥
कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन ॥

शब्दार्थ—पय-पयोधि=क्षीर सागर। सुखमा=सुन्दरता, शोभा। सत=सौ। सहस=हजार। सहसानन=हजार मुखवाले, शेषनाग।

अर्थ—क्षीर सागर और अयोध्या को छोड़कर जहां सीताजी, लक्ष्मणजी और श्रीरामचन्द्रजी ने आकर निवास किया है, उस वन की जैसी सुन्दरता है उसका वर्णन यदि सौ हजार (लाख) शेषजी भी करें तो नहीं कर सकते।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केहीं । डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥
सेवहिं लषन करम मन बानी । जाइ न सील सनेह बखानी ॥

शव्दार्थ—डाबर=गड़हा । कमठ=कछुआ ।

अर्थ—वह मैं किस प्रकार वर्णन करके कह सकता हूँ । कहीं गड़हे का कछुआ मन्दर पर्वत को उठा सकता है ! लक्ष्मणजी मन, कर्म और वचन से श्रीराम सीता की सेवा करते हैं । उनके शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

दो०—छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेह ।
करत न सपनेहुँ लषन चित बन्धु मातु पितु गेह ॥१३९॥

शव्दार्थ—आपु=अपने । चित=ध्यान, सोच, याद ।

अर्थ—क्षण-क्षण श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी स्वप्न में भी भाई, माता, पिता और घर की याद नहीं करते ॥१३९॥

राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु पिय-बिधु-बदननिहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥

शव्दार्थ—चकोर कुमारी=चकोर की लड़की, चकोरी ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीताजी अयोध्या, परिवार के लोग और घर की याद भुलाकर सुखी रहती हैं । वे क्षण-क्षण पति (श्रीरामजी) के चन्द्रमा रूपी मुख को देखकर वैसे प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोरी चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न रहती है ।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मन राम चरन अनुरागा । अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥

शव्दार्थ—नाह=नाथ, स्वामी । नित=नित्य, हमेशा ।

अर्थ—अपने प्रति स्वामी का प्रेम निरन्तर बढ़ता हुआ देखकर सीताजी उस प्रकार प्रसन्न हैं जैसे दिन में चकवी । सीताजी का मन श्रीरामजी के चरणों में ऐसा अनुरक्त है कि उन्हें हजारों अयोध्या के समान वन प्यारा लग रहा है ।

परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुरसम मुनि तिय मुनिवर । असन अमिय सम कंद मूल फर ॥

शव्दार्थ—प्रियतम=स्वामी, श्रीरामचन्द्रजी । तिय=स्त्री, पत्नी । फर=फल ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी के साथ सीताजी को पत्ते की कुटिया प्यारी लगती है। हरिन और पक्षी प्यारे परिवार के समान मालूम होते हैं। मुनि पत्नियां सास के समान और श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान तथा कन्द, मूल और फल अमृत के समान भोजन मालूम होते हैं।

नाथ साथ साथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होंहि बिलोकत जासू। तेहिकि मोह सक बिषय बिलासू ॥

शब्दार्थ—मयन=कामदेव। सयन=बिस्तरा, बिछौना। सय=सौ, सैकड़ों। विषय-बिलासू=भोग-विलास।

अर्थ—स्वामी के साथ में (कुश की) सुन्दर चटाई सैकड़ों कामदेव के बिछौना के समान सुख देनेवाली है। जिनके केवल देखने से जीव लोकपाल हो जाते हैं उनको भोग-विलास क्या कभी मोहित कर सकते हैं?

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।
रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु ॥१४०॥

शब्दार्थ—तृन सम=अत्यन्त तुच्छ। जन=भक्त।

अर्थ—जिन श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते ही भक्त जन भोग-विलास को तिनके के समान छोड़ देते हैं, उन्हीं श्रीरामजी की प्रिया संसार की माता सीता जी के लिए भोग-विलास का छोड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥१४०॥

सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातनि कथा कहानी। सुनहिं लखन सिय अति सुखमानी ॥

अर्थ—सीताजी और लक्ष्मणजी जिस प्रकार सुख पावें श्रीरामचन्द्रजी वही (कार्य) करते और वही (बात) कहते हैं। श्रीरामचन्द्रजी प्राचीन कथा कहानियां कहते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं।

जब जब राम अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई ॥

अर्थ—जब-जब श्रीरामजी अयोध्या की याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आता है। माता, पिता, परिवार, भाइयों और भरत के शील, स्नेह और सेवा को याद करके—

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी । धीरज धरहिं कुसमउ बिचारी ॥
लखि सियलखनु बिकल होइजाहीं । जिमि पुरुषहि अनुसर परिछांहीं ॥

शब्दार्थ–अनुसर=पीछे पीछे चलती है, अनुसरण करती है ।

अर्थ–कृपा के समुद्र प्रभु श्रीरामचन्द्रजी दुखी हो जाते हैं, किन्तु कुसमय सोच कर धीरज धर लेते हैं । उनकी यह अवस्था देख सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे छाया मनुष्य के पीछे-पीछे चलती है ।

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदन । धीर कृपाल भगत उर चंदन ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि सुख लहहिं लखन अरु सीता ॥

शब्दार्थ–भगत-उर-चंदन=भक्तों के हृदय को चन्दन के समान ।

अर्थ–तब धीर, दयालु और भक्तों के हृदय को शीतल करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्यारी जानकी और भाई लक्ष्मणजी की वैसी अवस्था देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं; जिनको सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी दोनों ही सुख पाते हैं ।

दो०–राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥१४१॥

शब्दार्थ–परन निकेत=पर्णकुटी । वासव=इन्द्र । अमरपुर=स्वर्ग । सची (शची)=इन्द्राणी । जयंत=इन्द्र के पुत्र का नाम है ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और सीताजी के साथ पर्णकुटी में इस प्रकार शोभायमान हैं जैसे इन्द्र अपनी स्त्री शची और पुत्र जयन्त के साथ स्वर्ग में ।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥
सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं । जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं ॥

शब्दार्थ–जोगवहिं=बचाते हैं । गोलक=पुतली । अविवेकी=अज्ञानी, मूर्ख ।

अर्थ–प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी की और लक्ष्मणजी की रक्षा किस तरह करते हैं, जैसे पलक आंख की पुतली की करती है । और सीताजी तथा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी की सेवा इस प्रकार करते हैं जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीर की करता है ।

एहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी । खग मृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउं राम बन गवँन सुहावा । सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा ॥

अर्थ—पशु, पक्षी, देवता और तपस्वियों का हित करनेवाले प्रभु श्रीरामजी इस प्रकार सुख से वन में रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि—मैंने श्रीरामचन्द्र-जी का सुन्दर वन-गमन वर्णन किया, अब सुमन्त्र जिस प्रकार अयोध्या में आये वह सुनो।

फिरेउ निषाद प्रभुहिं पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को पहुँचा कर जब निषादराज लौटा तब उसने आकर मन्त्री के साथ रथ को देखा। मन्त्री को व्याकुल देखकर निषादराज को जैसा दुःख हुआ वह कहा नहीं जाता।

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनि तल व्याकुल भारी॥
देखि-दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख विहंग अकुलाहीं॥

शब्दार्थ—धरनितल=पृथ्वीतल।

अर्थ—(निषादराज को देखते ही) मन्त्री हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! पुकारते हुए बहुत व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े। और घोड़े दक्षिण दिशा की ओर देखकर हिहिनाने लगे मानो पक्षी पंख के न होने से छटपटा रहे हों।

दो०—नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचनवारि।
व्याकुल भयउ निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥१४२॥

शब्दार्थ—बाजि=घोड़ा।

अर्थ—(वे घोड़े) न घास चरते हैं न पानी पीते हैं, केवल आंखों से आंसू बहाते हैं। रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के घोड़ों की यह दशा देख सब निषाद व्याकुल हो गये॥१४२॥

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादू॥
तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥

शब्दार्थ—परमारथ ज्ञाता=पवित्र ज्ञान को जानने वाले, तत्व के ज्ञाता।

अर्थ—तब निषादराज धैर्य धारण कर बोला—हे सुमन्त्रजी! अब शोक को छोड़िये। आप तो पंडित और परमार्थ को जाननेवाले हैं, इसलिए, ब्रह्मा को उल्टा जानकर धीरज धरिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदुबानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथ सकइ न हांकी । रघुबर बिरह पीर उर बांकी ॥

शब्दार्थ—बरबस=जबर्दस्ती, बलपूर्वक । पीर=पीड़ा । बांकी=टेढ़ी, कठोर ।

अर्थ—कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर निषादराज ने बलपूर्वक ला कर उन्हें रथ पर बैठाया । किन्तु शोक के मारे वे ऐसे शिथिल हो रहे थे कि रथ को हांक नहीं सकते थे । उनके हृदय में श्रीरामचन्द्रजी के वियोग की पीड़ा अत्यन्त कठोर थी ।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे । बन मृग मनहु आनि रथ जोरे ॥
अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे । राम बियोग बिकल दुख तीछे ॥

शब्दार्थ—चरफराहिं=तड़फड़ाते हैं । घोरे=घोड़े । जोरे=जोते । अढुकि पड़ना=ठोकर खाकर गिरने-गिरने हो जाना । फिरि=मुड़कर । हेरहिं=देखते हैं । तीछे=तीव्र, कठिन ।

अर्थ—घोड़े तड़फडाते हैं, रास्ते में आगे नहीं बढ़ते; मानों जंगली पशु लाकर रथ में जोत दिये गये हों । ठोकर खाकर गिरने-गिरने को हो जाते हैं और मुड़कर पीछे की ओर देखने लगते हैं । वे श्रीरामचन्द्रजी के विरह के कठिन दुःख से व्याकुल हो रहे हैं ।

जो कह राम लखनु बैदेही । हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती । बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भांती ॥

शब्दार्थ—हिंकरि=हिनहिनाकर । हित=प्रेम । फनिक=सर्प ।

अर्थ—जो कोई राम, लक्ष्मण अथवा सीता का नाम ले लेता है, उसकी ओर वे हिनहिना कर प्रेम से देखने लगते हैं । घोड़ों की विरह-दशा कैसे कही जा सकती है ? वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे मणि के खो जाने से सर्प व्याकुल होता है ।

दो०—भयउ निषाद बिषाद बस देखत सचिव तुरंग ।
बोलि सुसेवक चारि तब दिये सारथी संग ॥१४३॥

अर्थ—मन्त्री और घोड़ों की वह अवस्था देखते ही निषाद शोक के वश हो गया और तब उसने चार अच्छे सेवकों को बुलाकर सारथी के साथ कर दिये ।१४३

गुह सारथिहिं फिरेउ पहुँचाई । बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई ॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा । होहिं छनहिं छन मगन बिषादा ॥

अर्थ—निषादराज गुह सारथी (सुमन्त्र) को कुछ दूर तक पहुँचा कर लौटा उसके विरह-दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। उधर चारों निषाद रथ लेकर अयोध्या को चले। वे भी घोड़ों और सारथी की दशा देख क्षण-क्षण शोक में डूबे जाते थे।

सोच सुमंत्र विकल दुखदीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥
रहिहि न अंतहु अधमु सरीरू। जस न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥

शब्दार्थ—अधमु=नीच,तुच्छ। विछुरत=बिछुड़ते, अलग होते। धिग=धिक्कार।

अर्थ—व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमन्त्रजी सोचने लगे कि रघुवीर श्रीरामचन्द्रजी के बिना जीवन को धिक्कार है। यह अधम शरीर अन्त में तो रहेगा ही नहीं, फिर श्रीरामचन्द्रजी के बिछुड़ते ही इसने (छूटकर) यश (क्यों) नहीं ले लिया?

भये अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुं न हृदय होत दुइ टूका॥

शब्दार्थ—अघ=पाप। भाजन=पात्र। पयाना=प्रस्थान, छूटना। टूका=टुकड़े।

अर्थ—मेरे ये प्राण कलंक और पाप के पात्र हो गये। किस कारण ये शरीर से निकलते (छूटते) नहीं। हाय! नीच मन, तूने मौका खो दिया! अब भी यह हृदय दो टुकड़े (क्यों) नहीं होता।

मींजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गवांई॥
बिरद बांधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥

शब्दार्थ—बिरद=यश। बर=श्रेष्ठ। बीरु=वीर। सुभग=श्रेष्ठ योद्धा।

अर्थ—सुमन्त्रजी हाथ मलकर और सिर पीटकर पछताते हैं, मानों कोई कृपण धन का भाण्डार खो बैठा हो अथवा कोई श्रेष्ठ योद्धा यशका सर पेंच बांध कर और बड़ा वीर कहलाकर समर भूमि से भाग चला हो।

दो०—विप्र विवेकी वेद विद संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मदपान करि सचिव सोच तेहि भांति॥१४४॥

शब्दार्थ—विद=ज्ञाता, जानकार, पंडित। वेद विद=वेद को जाननेवाला। सुजाति=कुलीन,उत्तम जाति का। मद=शराब।

अर्थ—(अथवा) जैसे कोई ज्ञानी, वेदज्ञ, साधु सम्मत आचरणवाला कुलीन

ब्राह्मण धोखे से शराव पीकर पछताने लगे, वैसे ही मन्त्री सुमन्त्रजी सोच कर रहे हैं।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी॥
रहइ करम बल परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू॥

शब्दार्थ–साधु=उत्तम आचरणवाली। तिमि=वैसे ही। नाहू=नाथ, पति।

अर्थ–(अथवा) जिस प्रकार कोई उत्तम आचरण वाली, चतुर और कर्म, मन और वाणी (वचन) से पति को ही देवता माननेवाली स्त्री भाग्यवश पति को छोड़कर अलग रहे और जैसे कष्ट उसके हृदय में हों वैसी ही कठिन पीड़ा मन्त्री के हृदय में हो रही है।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न स्त्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुंह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥

शब्दार्थ–डीठि=दृष्टि, ज्योति। थोरी=थोड़ी, कम। भोरी=विगड़, वे ठिकाने। अधर= ओठ। लाटी लगना=सूखना, पानी न आना। जिउ=जीव। अवधि=१४ वर्ष का समय। कपाटी=किवाड़।

अर्थ–आंखों में जल भर आया है, दृष्टि मन्द पड़ गयी है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता और व्याकुल हुई बुद्धि वेठिकाने हो गयी है। ओठ और मुंह सूख गये हैं और हृदय में अवधि रूपी किवाड़ के लगने के कारण प्राण नहीं निकल रहे हैं।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि बिपुल मन व्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥

शब्दार्थ–विवरन (विवर्ण)=कान्तिहीन, रंग उतरना। निहारी=देखा। विपुल=वहुत। व्यापी=फैल गयी, छा गयी। जमपुर (यम पुर)=यमराज पुरी, नरक।

अर्थ–सुमन्त्रजी के चेहरे का रंग उतर गया है, देखे नहीं वनता, मानो माता-पिता को मार डाला हो। मन में (श्रीरामचन्द्रजी के वियोग की) हानि की वहुत वड़ी पीड़ा छा गयी है और इतना चिन्तित हो रहे हैं जैसे पापी नरक के रास्ते में सोच कर रहा हो।

वचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखव जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहिं बिलोकत सोई॥

अर्थ–मुंह से वचन नहीं निकलते और हृदय में पछताते हैं कि अयोध्या में

कर मैं क्या देखूंगा। जो कोई बिना रामचन्द्रजी के रथ को देखेगा वही मुझे
ने में संकोच करेगा।

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मैं सबहिं तब हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ—जब नगर के व्याकुल स्त्री-पुरुष दौड़कर मुझ से पूछेंगे, तब मैं हृदय
र वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा ॥१४५॥

पुछिहहिं दीन दुखित जब माता। कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता॥
पूछिहि जबहि लखन महतारी। कहिहउँ कवन संदेस सुखारी॥

अर्थ—जब सभी दुखी माताएँ दीन होकर मुझसे पूछेंगी, तब हे विधाता!
उन्हें क्या कहूँगा! जब लक्ष्मणजी की माता पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन सा सुख-
यी सन्देश सुनाऊँगा।

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥
पूछत उतरु देब मैं तेही। गे बन राम लखनु बैदेही॥

शब्दार्थ—सुमिरि=याद करके। धेनु=गाय। लवाई=तुरत (थोड़े दिन) की
ाई हुई।

अर्थ—थोड़े दिन की व्याई हुई गाय जैसे अपने बछड़े को यादकर दौड़ी हुई
ती है वैसे ही रामजी की माता दौड़ी आकर जब मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें
ही उत्तर दूंगा कि सीताजी, रामजी और लक्ष्मणजी वन को चले गये।

जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥
पुछिहहिं जबहि राउ दुख दीना। जीवनु जासु रघुनाथ अधीना॥

अर्थ—जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना होगा। हाय! अयोध्या में [illegible]
ब मुझे यही सुख लेना है! दुःख से दीन महाराज दशरथजी, [illegible]
रामचन्द्रजी के अधीन है, जब पूछेंगे—

देइहौं उतरु कवन मुंह लाई। आयउँ कुशल [illegible]
सुनत लखन सिय राम संदेसू। तृन जिमि [illegible]

अर्थ—तब मैं कौन-सा मुंह लेकर उन्हें उत्तर [illegible]
र कुशलपूर्वक लौट आया। लक्ष्मणजी [illegible]
[illegible] सुनकर राजा तो तिनके के समान [illegible]

दो०–हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौं मोहिं दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर ॥१४६॥

शब्दार्थ–बिदरेउ=फटा। जातना (यातना)=कष्ट, पीड़ा। जातना सरीर वह शरीर जो पापी जीवों को नरक (कष्ट) भोगने के लिए मिलता है ॥१४६॥

अर्थ–प्रियतम श्रीरामचन्द्रजी रूपी जल के बिछुड़ते ही जब मेरा यह कीचड़ रूपी हृदय नहीं फटा तब मालूम होता है कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है ॥१४६॥

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथ आवा॥
बिदा किये करि बिनय निषादा। फिरे पायं परि बिकल बिषादा॥

अर्थ–सुमन्त्रजी इस प्रकार रास्ते में पछताते जा रहे थे कि इतने में ही रथ तमसा नदी के तट पर आ पहुँचा। तब उन्होंने प्रार्थना करके निषादों को विदा किया और वे प्रणाम कर शोक से व्याकुल हो लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु बांभन गाई॥
बैठि बिटप तर दिवसु गँवावा। सांझ समय तब अवसरु पावा॥

शब्दार्थ–पैठत=प्रवेश करते। बांभन=ब्राह्मण। गाई=गाय। बिटपतर=वृक्षतले। गवांवा=विताया, काटा।

अर्थ–अयोध्या में प्रवेश करते मन्त्री को संकोच हो रहा है, मानों उन्होंने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की हो। इसलिए (बाहर ही) एक वृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने दिन बिताया और सन्ध्या होने पर नगर में जाने का मौका पाया।

अवध प्रवेस कीन्ह अंधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुवारे॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूप द्वार रथ देखन आये॥

अर्थ–अँधेरा होने पर मन्त्री ने अयोध्या में प्रवेश किया और दरवाजे पर रथ खड़ाकर चुपके से महल में गये। जिन लोगों ने यह समाचार सुन पाया, वे देखने के लिए राज-द्वार पर आ गये।

रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर व्याकुल कैसे। निघटत नीर मीनगन जैसे॥

शब्दार्थ–गरहिं=गलते हैं। गात=शरीर। आतप=गरमी, धूप। ओरे=ओले।

अर्थ–रथ को पहचान कर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर

लने लगे जैसे धूप में ओले गलते हैं। नगर के स्त्री-पुरुष किस प्रकार व्याकुल हो
हे हैं जैसे जल के घटने पर मछलियां।

दो०–सचिव आगमन सुनत सब विकल भयउ रनिवास।
भवन भयंकरु लाग तेहि मानहुं प्रेत निवास ॥१४७॥

शब्दार्थ–रनिवासु=अन्तःपुर, राजमहल।

अर्थ–मन्त्री का आना सुनते ही सारा महल व्याकुल हो उठा और राजमहल
उनको ऐसा भयानक लगने लगा, मानों प्रेतों के रहने का स्थान हो ॥१४७॥

अति आरति सब पूछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥
सुनइ न स्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहां नृप जेहि तेहि बूझा॥

शब्दार्थ–आरति=दुःख। सूझा=दिखाई देना।

अर्थ–सब रानियां अत्यन्त दुःखी हो पूछती हैं, किन्तु सुमन्त्रजी के मुंह से उत्तर
नहीं निकलता, उनकी वाणी व्याकुल हो गयी है। कानों से सुनाई नहीं देता
और न आंख से सूझता ही है। वे जिस तिस (हर एक) से पूछ रहे हैं कि बताओ
राजा कहां हैं।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौशल्या गृह गईं लवाई॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिय रहित जनु चंदु बिराजा॥

शब्दार्थ–अमिय=अमृत, सुधा।

अर्थ–दासियां मन्त्री को व्याकुल देख उन्हें कौसल्या के भवन में ले गयीं।
वहां जाकर सुमन्त्रजी ने राजा को कैसा देखा जैसे अमृत से रहित चन्द्रमा हो।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमि तल निपट मलीना॥
लेइ उसास सोच एहि भांती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥

शब्दार्थ–सयन=शय्या। निपट=बिलकुल, अत्यन्त। मलीना=दुःखी। उसास=
लम्बी सांस। खसेउ=गिर पड़े। जजाती (ययाति)=एक राजा का नाम है।

अर्थ–महाराज दशरथजी बिना आसन, शय्या और आभूषण के, अत्यन्त
दुःखी हो, पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लम्बी सांसें ले रहे हैं। वे इस प्रकार चिन्तित
हैं: जिस प्रकार राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर चिन्ता कर रहे थे।

ययाति–राजा ययाति नहुष के पुत्र थे। अनेक यज्ञ तथा शुभ कर्मों के कारण
वे सदेह स्वर्ग गये। वहां जाकर अभिमान वश हो, देवतादि तथा ऋषियों का अपमान

करना आरम्भ किया। इससे इन्द्र एक दिन इनसे पूछने लगे—हे राजा! आपने कौन से ऐसे कर्म किये जिनके कारण आप सशरीर स्वर्ग आये। अभिमानी ययाति ने अपने समस्त पुण्य-कार्यों को कह सुनाया। कहते ही उनका पुण्य क्षीण हो गया। इन्द्र ने उन्हें नीचे ढकेल दिया और वे पृथ्वी पर आ गिरे। गिरते समय उन्हें बड़ा ही सोच हुआ था। कुछ दिनों बाद अपने दौहित्रों के द्वारा वे पुनः स्वर्गवासी हुए।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥

अर्थ—राजा अपने हृदय को शोक से वारम्बार इस प्रकार भर लेते हैं, जैसे पंखों के जलने पर पृथ्वी पर पड़े सम्पाती। राजा फिर वार-बार राम! हा राम! हा प्यारे राम! हा लक्ष्मण! हा जानकी! कहने लगते हैं।

सम्पाती—ये जटायु के वड़े भाई थे। एक बार इन्द्र को युद्ध में जीत लेने से इन दोनों भाइयों को अपने बल का वड़ा गर्व हुआ और ये दोनों सूर्य के पास उनके रथ के साथ-साथ चलने की ठान ऊपर को उड़े। जब ये सूर्य के कुछ निकट आये तो गर्मी के कारण इन्हें मूर्च्छा सी आने लगी। जटायु तो वहीं से लौट आये परन्तु सम्पाती ऊपर को ही बढ़ते गये। अन्त में सूर्य के तेज के कारण इनके दोनों पंख जल गये। पंख जलते ही सम्पाती विन्ध्य पर्वत पर निशाकर नाम ऋषि के आश्रम के निकट आ गिरे और ऋषि के वचनानुकूल सीताजी की खोज में सुग्रीव द्वारा भेजे गये जामवन्त, हनुमानादि बानरों से जब इनका साक्षात्कार हुआ तब उन लोगों ने इन्हें समुद्र के समीप ले जाकर उसमें स्नान कराया तब इनका शरीर पूर्ववत् हो गया।

दो०—देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहं रामु॥१४८॥

अर्थ—मन्त्री ने उन्हें देखते ही 'जय जीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठ वैठे और वोले—हे सुमन्त्र! कहो, राम कहां हैं?

भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूंछत राउ नयन भरि बारी॥

शब्दार्थ—वूड़त=डूवता हुआ। अधार=सहारा, अवलम्ब।

अर्थ—राजा ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए मनुष्य को कुछ सहारा मिल गया हो। फिर प्रेम के साथ पास बैठाकर आंखों में आंसू भरकर राजा उनसे पूछने लगे—

राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहिं सिधाये। सुनत सचिव लोचन जल छाये॥

शब्दार्थ—आने=लाये। फेर=लौटा। सिधाये=चले गये।

अर्थ—हे प्यारे मित्र! राम की कुशल कहो। राम, लक्ष्मण और जानकी कहां हैं? तुम उन्हें लौटा लाये या वे वन को ही चले गये? यह सुनते ही मन्त्री के नेत्रों में जल भर आया।

सोक बिकल पुनि पूछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

अर्थ—शोक से व्याकुल हो राजा फिर पूछने लगे—सीता, राम और लक्ष्मण का सन्देश तो कहो। श्रीरामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को बार-बार स्मरण करके राजा हृदय में सोचते हैं—

राज सुनाइ दीन्ह बनवासू। सुनि मन भयउ न हरषु हरासू॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

शब्दार्थ—हरासू (ह्रास)=दुःख, शोक।

अर्थ—(कि) मैंने राज्य देने की बात कहकर, वनवास दे दिया और यह सुनकर जिसके हृदय में आनन्द और शोक (कुछ भी) नहीं हुआ, वैसे लड़के के बिछुड़ते मेरे प्राण नहीं गये—मैं मर नहीं गया—तो मेरे समान बड़ा पापी और कौन है!

दो०—सखा रामु सिय लखनु जहं तहां मोहि पहुंचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहौं सति भाउ॥१४९॥

शब्दार्थ—सतिभाउ=सच्चे भाव से।

अर्थ—हे सखा! जहां राम, सीता और लक्ष्मण हैं वहीं मुझे भी पहुँचा दो। नहीं तो मैं सच्चे भाव से कह रहा हूँ कि मेरे प्राण अब शीघ्र ही चलना चाहते हैं।

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥

अर्थ—राजा मंत्री से बार-बार पूछते हैं कि मेरे पुत्रों का सन्देश सुनाओ।

करना आरम्भ किया। इससे इन्द्र एक दिन इनसे पूछने लगे—हे राजा! आपने कौन से ऐसे कर्म किये जिनके कारण आप सशरीर स्वर्ग आये। अभिमानी ययाति ने अपने समस्त पुण्य-कार्यों को कह सुनाया। कहते ही उनका पुण्य क्षीण हो गया। इन्द्र ने उन्हें नीचे ढकेल दिया और वे पृथ्वी पर आ गिरे। गिरते समय उन्हें बड़ा ही सोच हुआ था। कुछ दिनों बाद अपने दौहित्रों के द्वारा वे पुनः स्वर्ग वासी हुए।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥

अर्थ—राजा अपने हृदय को शोक से बारम्बार इस प्रकार भर लेते हैं, जैसे पंखों के जलने पर पृथ्वी पर पड़े सम्पाती। राजा फिर बार-बार राम! हा राम! हा प्यारे राम! हा लक्ष्मण! हा जानकी! कहने लगते हैं।

सम्पाती—ये जटायु के बड़े भाई थे। एक बार इन्द्र को युद्ध में जीत लेने से इन दोनों भाइयों को अपने बल का बड़ा गर्व हुआ और ये दोनों सूर्य के पास उनके रथ के साथ-साथ चलने की ठान ऊपर को उड़े। जब ये सूर्य के कुछ निकट आये तो गर्मी के कारण इन्हें मूर्च्छा सी आने लगी। जटायु तो वहीं से लौट आ परन्तु सम्पाती ऊपर को ही बढ़ते गये। अन्त में सूर्य के तेज के कारण इनके दो पंख जल गये। पंख जलते ही सम्पाती विन्ध्य पर्वत पर निशाकर नाम ऋषि आश्रम के निकट आ गिरे और ऋषि के वचनानुकूल सीताजी की खोज में सुग्री द्वारा भेजे गये जामवन्त, हनुमानादि बानरों से जब इनका साक्षात्कार हुआ अ उन लोगों ने इन्हें समुद्र के समीप ले जाकर उसमें स्नान कराया तब इनका शरी पूर्ववत् हो गया।

दो०—देखि सचिव जय जीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहं रामु॥१४८॥

अर्थ—मन्त्री ने उन्हें देखते ही 'जय जीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठ बैठे और बोले—हे सुमन्त्र! कहो, राम कहां हैं

भूप सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूंछत राउ नयन भरि बारी॥

शब्दार्थ—बूड़त=डूबता हुआ। अधार=सहारा, अवलम्ब।

अर्थ—राजा ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए मनुष्य को कुछ सहारा मिल गया हो। फिर प्रेम के साथ पास बैठाकर आंखों में आंसू भरकर राजा उनसे पूछने लगे—

राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु वैदेही॥
आने फेरि कि वनहिं सिधाये। सुनत सचिव लोचन जल छाये॥

शब्दार्थ—आने=लाये। फेर=लौटा। सिधाये=चले गये।

अर्थ—हे प्यारे मित्र! राम की कुशल कहो। राम, लक्ष्मण और जानकी कहां हैं? तुम उन्हें लौटा लाये या वे वन को ही चले गये? यह सुनते ही मन्त्री के नेत्रों में जल भर आया।

सोक विकल पुनि पूछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥

अर्थ—शोक से व्याकुल हो राजा फिर पूछने लगे—सीता, राम और लक्ष्मण का सन्देश तो कहो। श्रीरामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को बार-बार स्मरण करके राजा हृदय में सोचते हैं—

राज सुनाइ दीन्ह वनवासू। सुनि मन भयउ न हरषु हरासू॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥

शब्दार्थ—हरासू (ह्रास)=दुःख, शोक।

अर्थ—(कि) मैंने राज्य देने की बात कहकर, वनवास दे दिया और यह सुनकर जिसके हृदय में आनन्द और शोक (कुछ भी) नहीं हुआ, वैसे लड़के के बिछुड़ते मेरे प्राण नहीं गये—मैं मर नहीं गया—तो मेरे समान बड़ा पापी और कौन है!

दो०—सखा रामु सिय लखनु जहं तहां मोहि पहुंचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहौं सति भाउ॥१४९॥

शब्दार्थ—सतिभाउ=सच्चे भाव से।

अर्थ—हे सखा! जहां राम, सीता और लक्ष्मण हैं वहीं मुझे भी पहुँचा दो। नहीं तो मैं सच्चे भाव से कह रहा हूँ कि मेरे प्राण अब शीघ्र ही चलना चाहते हैं।

पुनि पुनि पूछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ वेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥

अर्थ—राजा मंत्री से बार-बार पूछते हैं कि मेरे पुत्रों का सन्देश सुनाओ।

हे सखा ! तुम शीघ्र यही उपाय करो कि राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आंखों से दिखा दो ।

सचिव धीर धरि कह मृदु वानी । महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥
बीर सुधीर धुरंधर देवा । साधु समाज सदा तुम्ह सेवा ॥

अर्थ—मन्त्री ने धीरज धरकर कोमल वचनों में कहा—हे महाराज ! आप पण्डित और ज्ञानी पुरुष हैं । आप वीर, धैर्यवानों में श्रेष्ठ और धुरन्धर देव स्वरूप हैं तथा आपने हमेशा साधु समाज की सेवा की है ।

जनम मरन दुख सुख सब भोगा । हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा ॥
काल करम बस होंहि गोसांई । बरबस राति दिवस की नाईं ॥

शब्दार्थ—बरबस=जबर्दस्ती । नाईं=समान, सदृश ।

अर्थ—जीवन-मरण, दुख और सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय-मिलन तथा विछोह, हे गोसाईं ! समय और कर्म के वश रात्रि और दिन की भांति ये सब वलात्कार ही होते हैं ।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी । छाड़िय सोच सकल हितकारी ॥

शब्दार्थ—विलखाहीं=रोते हैं । जड़=मूर्ख ।

अर्थ—(किन्तु) मूर्ख सुख में प्रसन्न होते, और दुःख में रोते हैं । तथा धीर पुरुष दोनों को मन में समान समझकर धीरज रखते हैं । इसलिए हे सबके हितकारी ! आप ऐसे ज्ञान का विचारकर, चिन्ता त्यागकर धीरज धरिये ।

दो०—प्रथम बासु तमसा भयेउ दूसर सुरसरि तीर ।
न्हाइ रहे जलपान करि सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

अर्थ—हम लोगों का पहला निवास तमसा के तीर हुआ और दूसरे दिन गंगा जी के तट पर । फिर सीता के सहित दोनों भाई उस दिन स्नान कर के जल पी कर ही रह गये ॥१५०॥

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई । सो जामिनि सिंगरौर गवाईं ॥
होत प्रात वट छीर मंगावा । जटा मुकुट निज सीस बनावा ॥

शब्दार्थ—सिंगरौर=श्रृंगवेरपुर । केवट=मलाह, निपाद ।

अर्थ—निपादराज गुह ने वहुत सेवा की । वह रात श्रृंगवेरपुर ही में वीती ।

सवेरा होते ही श्रीरामचन्द्रजी ने वड़ का दूध मंगाया और (दोनों भाइयों ने) अपने सिर पर जटाओं के मुकुट वनाये।

राम सखा तव नाव मंगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई ॥
लखन वान धनु धरे वनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥

अर्थ—तव रामसखा निपाद ने नाव मंगवायी और प्यारी जानकी जी को पहले नाव पर चढ़ाकर फिर श्रीरामचन्द्रजी चढ़े। लक्ष्मणजी ने धनुष वाण सजाकर रख दिये और प्रभु श्रीरामजीकी आज्ञा पा आप चढ़े।

विकल विलोकि मोहि रघुवीरा। वोले मधुर वचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। वार वार पद पंकज गहेहू ॥

अर्थ—मुझे व्याकुल देख श्रीरामचन्द्रजी धैर्य धारण कर मीठे वचनों में वोले—हे तात ! पिता जी से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से उनके चरण कमलों को वार-वार पकड़ना।

करवि पाय परि विनय वहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
वन मग मंगल कुशल हमारे। कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारे ॥

शव्दार्थ—करवि=करेंगे, करना। अनुग्रह=दया। वन मग=वन-यात्रा।

अर्थ—फिर उनके चरणों में पड़कर विनती करेंगे कि हे पिताजी ! आप मेरे लिए कोई चिन्ता न करें। आपकी कृपा दया तथा पुण्य से वन की यात्रा में हमारा सव प्रकार से कुशल मंगल होगा।

छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सव सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतन जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी ॥

शव्दार्थ—परितोषि=सन्तुष्ट कर। घनी=वहुत। धनी=पति, स्वामी। कोसल धनी=राजा दशरथजी।

अर्थ—हे पिता जी ! आपकी कृपा से वन जाते हुए मैं सव तरह के सुख पाऊँगा। आपकी आज्ञा का पालन कर आपके चरणों का दर्शन करने के लिए फिर सकुशल लौट आऊँगा। मेरी ओर से सव माताओं के चरणों में पड़कर और वहुत

प्रार्थना करके उन्हें सन्तुष्ट करना। तुलसीदासजी कहते हैं कि—तुम सदा वही यत्न करना जिससे कोशलेश पिताजी सब तरह कुशल से रहें।

सो०—गुरु सन कहब संदेसु बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु जेंहि न सोच मोंहि अवधपति ॥१५१॥

शब्दार्थ—पद पदुम (पद्म)=चरण कमल।

अर्थ—बार-बार गुरुजी के चरण कमलों को पकड़कर आप मेरा सन्देश उनसे कहना कि वे अवधपति पिताजी को वही उपदेश देते रहेंगे, जिससे वे मेरी चिन्ता न करें ॥१५१॥

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायेहु बिनती मोरी ॥
सोइ सब भांति मोर हितकारी। जाते रह नरनाहु सुखारी ॥

शब्दार्थ—निहोरी=प्रार्थना करके। नरनाह=नरनाथ, राजा।

अर्थ—हे तात ! सभी नगरवासी और कुटुम्बियों से प्रार्थना करके मेरी विन[illegible] सुनाना कि वही सब तरह से मेरी भलाई करनेवाला है जिसकी चेष्टा से महार[illegible] सुखी रहें।

कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिय राज पदु पाये ॥
पालेहु प्रजहिकरम मनबानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥

शब्दार्थ—तजिय=छोड़ना। सेयेहु=सेवा करना।

अर्थ—भरत के आने पर उनसे मेरा यह सन्देशा कहना कि राजा का पद पाक[illegible] नीति को छोड़ न देना; मन-वचन और कर्म से प्रजा का पालन करना तथा स[illegible] माताओं को एक समान जानकर उनकी सेवा करना।

अउर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥
तात भांति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेंहि करइ न काऊ ॥

अर्थ—और हे भाई ! पिता, माता और स्वजनों की सेवा करके भाईपने [illegible] निर्वाह करना। हे तात ! राजा (पिताजी) को इस प्रकार रखना जिससे वे क[illegible] मेरी चिन्ता न करें।

लखन कहे कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥

शब्दार्थ—बरजि=मना करके। लरिकाई=लड़कपन।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने कुछ कड़े वचन कहे, श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें मना करके फिर मुझसे प्रार्थना करते हुए, वार-वार अपनी सौगन्ध देकर कहा, कि हे तात ! लक्ष्मण का यह लड़कपन आप वहां न कहना ।

दो०—कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह ।
थकित वचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

शब्दार्थ—सिथिल (शिथिल)=सुस्त, ढीला । थकित=रुक गयी । पल्लवित=रोमाञ्चयुक्त ।

अर्थ—सीताजी प्रणाम करके कुछ कहना ही चाहती थीं कि वे स्नेह से सुस्त पड़ गयीं, वोली रुक गयी, आंखों में जल भर आया और रोमाञ्चयुक्त शरीर पुलकायमान हो गया ॥१५२॥

तेहि अवसर रघुवर रुख पाई । केवट पारहिं नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलक चले एहि भांती । देखेउँ ठाढ़ कुलिश धरि छाती ॥

शब्दार्थ—तिलक=शिरोमणि । ठाढ़=खड़े । कुलिस=वज्र ।

अर्थ—उसी समय श्रीरामचन्द्रजी का रुख पाकर मल्लाह ने पार जाने के लिए नाव चला दी । रघुवंश शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी इस तरह चल दिये और मैं वहीं हृदय पर वज्र रखकर खड़ा देखता रहा ।

मैं आपन किमि कहउं कलेसू । जियत फिरउं लेइ राम संदेसू ॥
अस कहि सचिव वचन रहि गयऊ । हानि गलानि सोच वस भयऊ ॥

शब्दार्थ—किमि=कैसे । गलानि (ग्लानि)=खिन्नता, दुःख ।

अर्थ—मैं अपना क्लेश किस भांति कहूँ; जो जीते जी श्रीरामचन्द्रजी का सन्देश ले कर लौट आया । ऐसा कहकर मन्त्री चुप और हानि के दुःख और शोक के वश हो गये ।

सूत वचन सुनतहिं नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
तलफत विषम मोह मन मापा । माजा मनहुं मीन कहँ व्यापा ॥

शब्दार्थ—सूत=सारथी, सुमन्त्र । तलफत=तड़पने लगे । मापा=मतवाला हो गया, व्याकुल हो उठा । मांजा=पहली वर्षा का जल । व्यापा=व्याप गया हो, लग गया हो ।

अर्थ—सारथी सुमन्त्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े और हृदय

में भयानक पीड़ा होने लगी। वे तड़पने लगे और कठिन मोह से उनका मन मतवाला हो गया मानो मछली को पहली वर्षा का जल लग गया हो।

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥

शब्दार्थ—बिलाप=चिल्लाना।

अर्थ—सब रानियां चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगीं। उस बड़ी विपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। उनका रोना-चिल्लाना सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया।

दो०—भयेउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहंगबन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥१५३॥

शब्दार्थ—राउर=राज महल, रनिवास। बिपुल=बड़ा, विस्तृत, गम्भीर।

अर्थ—राजा के रनिवास में रोने का शोर सुनकर अयोध्या में अत्यन्त कोलाहल मच गया; मानों रात के समय चिड़ियों के बड़े वन में कठिन वज्र गिरा हो।

प्रान कंठगत भयेउ भुआलू। मनि बिहीन जनु व्याकुल व्यालू॥
इंद्री सकल बिकल भईं भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी॥

शब्दार्थ—कंठगत भयउ=कंठ में आ गये। ब्यालू (व्याल)=सर्प।

अर्थ—राजा के प्राण कंठ में आ गये और वे ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणि के बिना सर्प। सब इन्द्रियां अत्यन्त व्याकुल हो गयीं मानों तालाब में जल के बिना कमलों का समूह मुरझा गया हो।

कौसल्या नृप दीख मलाना। रबिकुल रबि अथयेउ जिय जाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥

शब्दार्थ—मलाना (म्लान)=उदास, दुखी। अथयेउ=डूबा, अस्त हुआ। अनुसारी=अनुसार।

अर्थ—कौशल्या ने राजा को दुखी देखा और मन में समझ गयीं कि अब सूर्य वंश का सूर्य डूब चला। तब श्रीरामचन्द्रजी की माता कौशल्या हृदय में धीरज धारण कर समयानुकूल वचन बोलीं।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥

शब्दार्थ–पयोधि=समुद्र। करनधार (कर्णधार)=खेनेवाले। पथिक=यात्री। समाजू=दल, समूह।

अर्थ–हे नाथ! आप अपने मन में समझ कर विचार कीजिये कि श्रीरामचन्द्र-जी के विरह का समुद्र अपार है। अयोध्या जहाज है और आप उसको खेनेवाले हैं। सब प्रिय जन अर्थात् कुटुम्बी और प्रजा आदि रूपी यात्रियों का दल उस पर चढ़ा हुआ है।

धीरज धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू॥
जौं जिय धरिअ विनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

अर्थ–आप धैर्य रखेंगे तो यह जहाज किनारे लग जायगा, नहीं तो सब परिवार डूब मरेगा। हे प्रियपति! यदि आप मेरी प्रार्थना अपने हृदय में धारण करेंगे, तो श्रीराम, लक्ष्मण और सीता फिर आ मिलेंगी।

दो०–प्रिया वचन मृदु सुनत नृप चितयउ आंखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचेउ सीतल वारि॥१५४॥

शब्दार्थ–उघारि=खोलकर।

अर्थ–प्रिय पत्नी कौशल्या के कोमल वचन सुनते ही राजा ने [illegible] देखा। मानो तड़पती हुई दुखी मछली के ऊपर किसी ने शीतल [illegible]

धरि धीरज उठि वैठि भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ [illegible]
कहां लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय [illegible]

अर्थ–राजा धैर्य धारण कर उठकर वैठ गये [illegible] कहो, दयालु राम कहां हैं? लक्ष्मण और प्यारे [illegible] जानकी कहां हैं?

विलपत राउ विकल वहु भांती। [illegible] न राती॥
तापस अंध साप सुधि आई। [illegible] सुनाई॥

शब्दार्थ–सिरात=वीतती, समाप्त [illegible]

अर्थ–राजा व्याकुल हो अनेक [illegible] के समान हो गयी, वीतती ही नहीं [illegible] आ गयी और उन्होंने सब कथा [illegible]

नोट—तापस अंध—महाराज दशरथ कौशल्या से कहते हैं—युवावस्था में एक दिन शिकार की तलाश में घूमता हुआ नदी के तट पहुँचा। रात हो आयी थी। कुछ दिखाई नहीं देता था। उसी समय अन्धे माता-पिता का पुत्र ऋषि कुमार अपने माता-पिता के लिए जल लेने को नदी तीर आया। उसने जल में घड़ा डुबाया तो घड़ा डूबने का शब्द मुझे हाथी के शब्द जैसा जान पड़ा। उसी क्षण मैंने शब्दवेधी वाण छोड़ दिया और वह ऋषि पुत्र के वक्षस्थल में जा घुसा। 'हाय ! मैं मारा गया', यह शब्द करता वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। मनुष्य का शब्द सुनते ही दौड़ा हुआ वहां जाकर मैंने देखा कि एक ऋषि पृथ्वी पर पड़े छटपटा रहे हैं। उनसे मैंने अपना परिचय दिया और अज्ञान में जो अपराध हुआ था, उसके लिए क्षमा मांगी। उन्होंने कहा—अच्छा, आप शीघ्र जल ले जाकर मेरे माता-पिता को पिलायें। वे अन्धे बहुत प्यासे हैं। मैं घड़े में जल ले कर उनके पास गया और उनसे सारा हाल कहकर दुखी हृदय से क्षमा मांगी। तदुपरान्त उनके कथनानुसार मैं उन्हें उनके पुत्र श्रवणकुमार के शव के पास लाया। उन्होंने भी पुत्र के साथ-साथ वहीं अपने प्राण छोड़ दिये। किन्तु मरते समय अन्धे तपस्वी ने मुझ से कहा—राजन् ! जाओ, जैसे पुत्र-वियोग में मैं मर रहा हूँ, वैसे ही तुम्हारी भी मृत्यु होगी।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

शब्दार्थ—पनु=प्रण। निबाहा=पूरा किया।

अर्थ—उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये और बोले कि राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। उस शरीर को रख कर ही मैं क्या करूंगा, जिसने मेरे प्रेम के प्रण को पूरा न किया।

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जियत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥

शब्दार्थ—पिरीते प्यारे। चातक=पपीहा। जलधर=मेघ।

अर्थ—हा रघुकुल को आनन्द देने वाले प्राण प्रिय राम ! तुम्हारे विना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा पिता के चित्त रूपी के लिए मेघ राम !

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुवर बिरह राउ गयेउ सुर धाम ॥१५५॥

अर्थ—महाराज दशरथजी बारंबार राम-राम कहते हुए श्रीरामचन्द्रजी के विरह में शरीर छोड़कर स्वर्ग सिधारे ॥१५५॥

जिअन मरन फल दसरथ पावा । अंड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम विधु बदन निहारा । राम बिरह करि मरन सवांरा ॥

शब्दार्थ—अंड=ब्रह्माण्ड । अमल=निर्मल, पवित्र । सँवारा=सुधारा, बनाया । करि=कारण, द्वारा, में, वास्तव में ।

अर्थ—महाराज दशरथजी ने ही वास्तव में जीने और मरने का फल पाया; उनका निर्मल यश अनेक ब्रह्माण्डों में छा गया । जीते जी तो उन्होंने श्री रामचन्द्र-जी के चन्द्र मुख के दर्शन किये और राम-विरह में शरीर त्याग अपना मरण सुधार लिया ।

सोक विकल सब रोवहिं रानी । रूप सील बल तेज बखानी ॥
करहिं विलाप अनेक प्रकारा । परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥

अर्थ—सब रानियां शोक से व्याकुल हो, महाराज के रूप, शील, बल और प्रताप का वर्णन करती हुई रोती हैं । वे अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और बारम्बार पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिरती हैं ।

बिलपहिं विकल दास अरु दासी । घर घर रुदन करहिं पुरबासी ॥
अथयउ आजु भानु कुल भानू । धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥

शब्दार्थ—अवधि=सीमा ।

अर्थ—दास और दासियां विकल होकर रो रही हैं और नगर निवासी घर-घर रो रहे हैं । कहते हैं कि धर्म की सीमा रूप और गुण के घर, सूर्य वंश के सूर्य आज अस्त हो गये ।

गारी सकल कैकइहि देहीं । नयन विहीन कीन्ह जग जेहीं ॥
एहि विधि बिलपत रैनि बिहानी । आये सकल महा मुनि ग्यानी ॥

शब्दार्थ—रैनि=रात । विहानी=बीत गयी, अन्त हुआ ।

अर्थ—सभी कैकेयी को गाली देते हैं जिसने संसार भरको बिना आंख का (अंधा)

कर दिया। इस प्रकार बिलाप करते हुए रात वीत गयी। सवेरा होते ही सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आये।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहिं कर निज बिज्ञान प्रकास ॥१५६॥

शब्दार्थ—समय सम=समय के अनुकूल। निवारेउ=निवारण (दूर) किया।

अर्थ—तब वशिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर, अपने ज्ञान के प्रकाश से सब के शोक का निवारण किया ॥१५६॥

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहु कहहु जनि काहू ॥

शब्दार्थ—कतहुँ=कहीं। काहू=किसी से।

अर्थ—वशिष्ठजी ने नाव में तेल भरकर उसी में राजा के मृतक शरीर को रखवा दिया। फिर दूत को बुलाकर ऐसा कहा—जल्दी से दौड़कर भरतजी के पास जाओ, लेकिन राजा की खबर कहीं किसी से भी मत कहना।

एतनेइ कहेउ भरत सन जाई। गुरु बोलाइ पठय दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाये। चले बेगि बर बाजि लजाये ॥

शब्दार्थ—एतनेइ=इतनाहीं। धावन=दूत। बर=श्रेष्ठ। वाजि=घोड़े।

अर्थ—जाकर भरत से इतना हीं कहना कि दोनों भाइयों को गुरुजी ने बुला भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर दूत दौड़े और ऐसे वेग से चले कि उनकी चाल देखकर श्रेष्ठ घोड़े भी लज्जित होते थे।

अनरथ अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥

शब्दार्थ—अनरथ = उपद्रव। अरंभेउ = आरम्भ हुआ। कटु =वुरा। कलपना=कल्पना, विचार।

अर्थ—जब से अयोध्या में उपद्रव आरम्भ हुआ, तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात में वे भयानक स्वप्न देखते और जागने पर करोड़ों प्रकार की वुरी वुरी कल्पनाएँ (सोच-विचार) करते थे।

बिप्र जेवांइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ॥
मांगहिं हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥

शब्दार्थ–दिन में ब्राह्मणों को भोजन कराके दान देते थे और अनेक प्रकार से विधि पूर्वक शंकरजी का अभिषेक करते। महादेवजी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बियों और भाइयों की कुशल मांगते थे।

दो०- एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुंचे आइ।
गुरु अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥

शब्दार्थ–अनुशासन=आज्ञा।

अर्थ–भरतजी मन-ही-मन इस प्रकार की चिन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा कानों से सुनते ही (दोनों भाई) गणेशजी को मना कर चल दिये।

चले समीर वेग हय हांके। नांघत सरित सैल वन वांके ॥
हृदय सोच बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियं जाउं उड़ाई ॥

शब्दार्थ–समीर=हवा। नाघत=लांघते (पार करते) हुए। वांके=भयानक

अर्थ–हवा के वेग के समान घोड़ों को हाकते और भयानक नदी, पर्वत और वनों को लांघते हुए चले। उनके हृयद में वड़ा सोच था, कुछ भी सुहाता नहीं था। जी में यही सोचते थे कि उड़ कर चला जाऊँ।

एक निमेष वरष सम जाई। एहि विधि भरत नगर निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा ॥

शब्दार्थ–निमेप=पल। पैठारा=प्रवेश करते ही। रटहिं=वोलते हैं। कुखेत=वुरा स्थान। करारा=कौआ। नियराई=निकट पहुँचे।

अर्थ–एक पल वर्ष के समान वीतता था। इस तरह भरतजी अयोध्या के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते ही अपशकुन होने और कौए वुरे स्थान में वैठ कर वुरी तरह से वोलने लगे।

खर सियार वोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता वन वागा। नगर विसेषि भयावनु लागा ॥

शब्दार्थ–श्रीहत=शोभारहित, मलिन। खर=गदहा।

अर्थ–गदहे और सियार प्रतिकूल वोल रहे हैं। सुन-सुन कर भरतजी के मन में पीड़ा हो रही है। तालाव, नदी, वन और वगीचे सब शोभा रहित हो रहे हैं। और नगर विशेष करके भयावना लग रहा है।

शब्दार्थ—मरमु=मर्मस्थान, हृदय। पाछि=चीर कर। माहुर=विष, जहर। आदिहु=शुरू ही। वरनी=कह सुनाया।

अर्थ—पुत्र के वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी, मानो हृदय को चीर कर उसमें जहर दे रही हो। उस दुष्ट और कठोर कैकेयी ने शुरू से ही अपनी सारी करतूतों को प्रसन्न मन से कह सुनाया।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम-वन गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय थकित रहे धरि मौन ॥१६०॥

शब्दार्थ—गौन=गमन, जाना। हेतु=कारण। अपनपउ=अपनापन, अपने को ही। थकित=निश्चल, स्तम्भित।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का वन जाना सुनते ही भरतजी को पिता का मरन भूल गया। वे इसका कारण (अपनापन) अपने को ही मनमें जानकर चुप हो निश्चल हो गये ॥१६०॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहिं सोचन जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेंउ भोगू ॥

शब्दार्थ—बिढ़इ=कमा कर।

अर्थ—पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जले पर नमक छिड़क रही हो। वह कहती है—हे पुत्र! राजा सोच करने के योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश दोनों ही कमाकर उसका उपभोग भी भलीभांति कर लिया है।

जीवत सकल जनम फल पाये। अंत अमर पति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू ॥

अर्थ—जीते जी तो उन्होंने जन्म लेने के सब फल पा लिये और अन्त में मर कर वे देवलोक को चले गये। ऐसा सोच कर हे पुत्र! तुम शोक को छोड़ दो और ठाटवाट के साथ अयोध्या का राज्य करो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अंगारू ॥
धीरज धरि भरि लेंहिं उसासा। पापिन सबहिं भांति कुलनासा ॥

शब्दार्थ—सुठि=सुन्दर। छत=घाव, फोड़ा।

अर्थ—कैकेयी के सुन्दर वचन सुनकर राजकुमार भरतजी ऐसे सहम गये

मानों पके घाव पर अंगार छू गया हो। धीरज धारण कर वे बार-बार लम्बी सांसें लेते और कहते हैं कि हे पापिनी ! तूने तो सब तरह से हमारे वंश का नाश कर दिया।

जौं पै कुरुचि रही अति तोहीं। जनमत काहे न मारेसि मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति वारि उलीचा॥

शब्दार्थ—जौं पै=यदि। कुरुचि=बुरी इच्छा। पालउ=पल्लव, पत्ता। निति=निमित्त, लिए। उलीचा=निकाल दिया।

अर्थ—हाय ! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी इच्छा थी, तो जन्मते ही मुझे क्यों नहीं मार डाला ! तूने पेड़ को काटकर पत्ते को सींचा है और मछलियों के जीने के लिए पानी को उलीच डाला है।

दो०—हंसवंस दसरथ जनक राम लखन से भाइ।
जननी तूं जननी भई विधि सन कछु न बसा॥१६१॥

अर्थ—मुझे सूर्य वंश, दशरथजी पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई मिले; किन्तु हे माता ! जन्म देने वाली माता तो तू हुई ! ब्रह्मा से कुछ भी वश नहीं चल सकता॥१६१॥

जब तैं कुमति कुमत जिय ठयेऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ॥
वर मांगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा॥

शब्दार्थ—ठयऊ=ठाना। गरि=गली, गल गयी।

अर्थ—हे कुमति ! जिस समय अपने हृदय में तूने यह बुरा विचार ठाना, तेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया ? वर मांगते समय तेरे मन में जरा भी पीड़ा नहीं हुई ? तेरी जीभ नहीं गल गयी और मुंह में कीड़े नहीं पड़ गये ?

भूप प्रतीति तोर किमि कीन्हीं। मरन काल विधि मति हरि लीन्हीं॥
विधिहुं न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

अर्थ—राजा ने तेरा विश्वास ही क्यों कर किया। जान पड़ता है मरते समय ब्रह्मा ने उनकी बुद्धि ही छीन ली थी। समस्त छल, पाप और अवगुणों की खानि स्त्रियों के हृदय की गति विधाता भी नहीं जान सके।

सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं॥

अर्थ—फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्म में लीन रहने वाले थे। वे

स्वभाव को भला वे कैसे जानें। संसार में ऐसा कौन प्राणी है जिसे रघुनाथजी प्राणप्रिय न हों।

भे अति अहित राम तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हसि सो हसि मुंह मसि लाई। आंखि ओट उठि बैठहि जाई॥

शब्दार्थ—अहित=शत्रु। तेउ=वही। अहसि=है। हसि=है, हो। मसि=कालिख।

अर्थ—वही श्रीरामचन्द्रजी तेरे लिए बड़े शत्रु हो गये। मुझसे सच बता कि तू कौन है ? तू चाहे जो भी है, वह है; अब अपने मुंह में कालिख पोत, उठकर मेरी आंखों की आड़ में जा बैठ।

दो०—राम विरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहौं कछु तोहिं॥१६२॥

अर्थ—जब विधाता ने मुझे उस हृदय से प्रकट (उत्पन्न) किया है, जो श्रीरामचन्द्रजी से विरोध करने वाला है, तब मेरे समान पापी ही और कौन है ? मैं तो व्यर्थ ही तुझे कुछ कह रहा हूँ।

सुनि सत्रुघन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई।
तेहिं अवसर कुबरी तहँ आई। बसन विभूषन बिविध बनाई॥

शब्दार्थ—गात=शरीर। रिस=क्रोध।

अर्थ—माता की दुष्टता सुनकर शत्रुघ्न का शरीर क्रोध से जलने लगा, परन्तु कुछ वश नहीं चलता। इसी समय तरह-तरह के गहनों और वस्त्र से सजकर कुबड़ी मन्थरा वहां आयी।

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुंह भर महि करति पुकारा॥

शब्दार्थ—आहुति=हवन। हुमगि=कूदकर। तकि=देखकर।

अर्थ—लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी उसे देखकर क्रोध में और भी भर गये। मानो जलती हुई आग घी की आहुति पाकर और भी प्रज्ज्वलित हो उठी हो। उन्होंने कूदकर और तककर बड़े जोर से एक लात उसके कूबड़ पर मारी, जिससे वह चिल्लाती हुई मुंह के बल पृथ्वी पर गिर पड़ी।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइव मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा॥

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोंही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही ॥
को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥

शब्दार्थ–जनमेउ=पैदा किया । असि=ऐसी । लागी=कारण । द्रोही =शत्रु

अर्थ–जिसने मुझ कुल-कलंक को पैदा किया, जो कलंक का पात्र और प्रियजन का द्रोही है । मेरे समान तीनों लोकों में अभागा कौन है, जिसके कारण हे माता आपकी ऐसी हालत हुई है ।

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहिं भयेंउ बेनु बन आगी । दुसह दाह दुख दूषन भागी ॥

शब्दार्थ–अनरथ=अनर्थ, उपद्रव । बेनु=बांस । दूषन=दोष । हेतू=कारण

अर्थ–पिता देवलोक को और रघुवंश शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी वन को चले गये । केवल मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ । मुझे धिक्कार है ? मैं बांस के वन में अग्नि रूप उत्पन्न हुआ और असह्य कष्ट, दुख और दोष का भागी बना

दो०–मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी संभारि ।
लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ–माता कौशल्या भरतजी के कोमल वचनों को सुनकर अपने को सम्हाल कर उठीं और उनको उठाकर छाती से लगा, नेत्रों से आंसू बहाने लगीं ॥१६४

सरल सुभाय माय हिय लाये । अति हित मनहुं राम फिरि आये ॥
भेंटेउ बहुरि लखनु लघु भाई । सोक सनेह न हृदय समाई ॥

शब्दार्थ–माय=माता । हिय=हृदय, छाती । अतिहित=बड़े प्रेम से ।

अर्थ–सीधे स्वभाव की माता ने भरतजी को बड़े प्रेम से हृदय से लगाया मानो श्रीरामजी ही (वन से) लौट आये हों । वे फिर शत्रुघ्नजी से मिलीं । शोक और स्नेह हृदय में नहीं समाते ।

देखि सुभाउ कहत सब कोई । राम मातु अस काहे न होई ॥
माता भरत गोद बैठारे । आंसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥

अर्थ–कौशल्याजी के स्वभाव को देखकर सभी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी की माता ऐसी क्यों न हों । फिर माता ने भरतजी को गोद में बैठा लिया और आंसू पोंछकर मीठे वचन बोलीं–

अजहुं बच्छु बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥

शब्दार्थ–बच्छ=वत्स, पुत्र। अघटित=अमिट, जो अवश्य होनेवाला हो।

अर्थ–हे वत्स! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो और बुरा समय जानकर शोक को छोड़ो। काल और भाग्य की गति को अमिट जानकर, तुम अपने मन में इस हानि की ग्लानि को न लाओ।

काहुहि दोष देहु जनि ताता। भा मोहि सब विधि वाम विधाता॥
जो एतेहुं दुख मोहि जिआवा। अजहुं को जानइ का तेहि भावा॥

अर्थ–हे तात! किसी को दोष मत दो। विधाता ही मुझसे सब प्रकार टेढ़ा हो गया है। जो इतने दुःख पर भी मुझे जिला रहा है और अब भी कौन जानता है कि उसे क्या अच्छा लग रहा है?

दो०–पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुवीर।
बिसमउ हरषु न हृदय कछु पहिरे वलकल चीर॥१६५॥

अर्थ–हे तात! पिता की आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने सब गहने और कपड़े उतारकर वल्कल-वस्त्र पहन लिये। उस समय उनके हृदय में न शोक था न हर्ष॥१६५॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सबकर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥

अर्थ–उस समय उनके मन में न किसी के प्रति अनुरक्ति थी और न द्वेष। वे सबको सब तरह से सन्तुष्ट करके वन को चले। यह सुनकर श्रीरामजी के चरणों में प्रेम रखने वाली सीता भी (किसी तरह रखने से) नहीं रहीं और उनके ही संग लग गयीं।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥

अर्थ–सुनते ही लक्ष्मण भी उठकर साथ हो लिये। श्रीरामचन्द्रजी ने बहुतेरे उपाय किये, किन्तु वे घर पर नहीं रहे। तब रघुवंश स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सबको प्रणाम कर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ ले चल दिये।

रामु लखनु सिय बनहिं सिधाये। गइउं न संग न प्रान पठाये॥
एहु सबु भाइन्ह आंखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥

अर्थ—सीता, राम और लक्ष्मण वन को चले गये और मैं न उनके साथ ही गयी और न साथ में अपने प्राण ही भेजे। यह सब इन्हीं आंखों के सामने हुआ, तो भी मेरे अभागे प्राण ने शरीर को नहीं छोड़ा।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥

शब्दार्थ—जिअइ-मरइ=जीना-मरना। कुलिस=वज्र।

अर्थ—अपने स्नेह को देखकर मुझे लज्जा भी नहीं आती। श्रीरामचन्द्र जैसे पुत्र की मुझ जैसी माता! जीना-मरना तो राजा ने ही भले प्रकार जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्र के समान कठोर है।

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राज गृह मानहुं सोक निवासु॥१६६॥

अर्थ—कौशल्याजी की बाते सुनकर भरतजी के साथ ही सारा रनिवास व्याकुल हो विलाप करने लगा। राजमहल मानो शोक का घर बन गया।१६६

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदय लगाई॥
भांति अनेक भरतु समुझाये। कहि बिबेक मय बचन सुनाये॥

अर्थ—दोनों भाई भरतजी और शत्रुघ्न जी व्याकुल होकर रुदन करने लगे तब कौशल्याजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। अनेक प्रकार की ज्ञान भरी बातें कहकर कौशल्याजी ने उन्हें समझाया।

भरतहुं मातु सकल समुझाई। कहि पुरान स्रुति कथा सुहाई॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥

अर्थ—भरतजी ने भी वेद और पुराणों की सुन्दर कथाएँ कहकर सब माताओं को समझाया। भरतजी दोनों हाथ जोड़कर निष्कपट, पवित्र और सीधी सुन्दर वाणी से बोले—

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइगोठ महिसुर पुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।

शब्दार्थ—गाइगोठ=गोशाला। महिसुर पुर=ब्राह्मणों का नगर। माहुर=विष

अर्थ–जो पाप माता, पिता और पुत्र को मारने से, गोशाला और ब्राह्मणों
ा नगर जलाने से, स्त्री और बालकों का वध करने से तथा मित्र और राजा को
ाप देने से–

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥

शब्दार्थ–उपपातक=छोटे पाप। भव=उत्पन्न। मत=राय।

अर्थ–तथा और भी कर्म, मन और वचन से उत्पन्न होनेवाले छोटे-बड़े पाप
, जिनका कवियों ने वर्णन किया है; हे विधाता! यदि इसमें मेरी कुछ भी राय
ो, तो हे माता! वे सभी पाप मुझे लगें।

दो०–जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तिन्हकइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥१६७॥

अर्थ–जो लोग श्रीविष्णु और शंकरजी के चरणों को छोड़ कर भयानक
ूत-प्रेतों की उपासना करते हैं, हे माता! यदि इसमें कुछ भी मेरी राय हो, तो
वेधाता मुझे उनकी ही गति दे॥१६७॥

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥

शब्दार्थ–पिसुन=चुगलखोर, निन्दक। पराय=दूसरों के। विदूषक=निन्दक।

अर्थ–जो वेद (ज्ञान) को बेचकर धर्म को निचोड़ लेते हैं, जो चुगलखोर
दूसरों के पापों को कह देते हैं, जो छली, दुष्ट, कलह प्रिय (जिनको झगड़ा प्रिय हो)
और क्रोधी हैं; तथा जो वेदों की निन्दा करनेवाले और संसार भर से विरोध रखने
वाले हैं–

लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धनु पर दारा॥
पावउं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा॥

शब्दार्थ–लोलुपचारा=लोभियों का आचरण करने वाला। दारा=स्त्री।

अर्थ–जो लोभी, कुकर्मी और लोभियों का आचरण करनेवाले हैं, जो दूसरों
के धन और स्त्री पर दृष्टि डालते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा कुछ भी मत हो,
तो मैं उनकी ही भयानक गति को पाऊँ।

जे नहिं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहिं न हरि हर सुजस सुहाई॥

अर्थ—जो साधु-संग के प्रेमी नहीं हैं, जो अभागे मोक्ष के मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य का शरीर पाकर श्रीविष्णुजी की उपासना नहीं करते, जिनको श्री विष्णु और शंकरजी का सुन्दर यश अच्छा नहीं लगता—

तजि स्रुति पंथ बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं॥
तिन्ह कइ गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानउं भेऊ॥

शब्दार्थ—बाम पथ= उलटा मार्ग। बंचक=ठग। बिरचि=बनाकर। भेऊ=भेद।

अर्थ—जो वेद मार्ग को छोड़ उलटे मार्ग पर चलते हैं, जो ठग का भेष बनाकर संसार को छलते हैं, हे माता! यदि मैं इसके भेद को कुछ भी जानता होऊँ, तो शंकरजी मुझे उनकी ही गति दें।

दो०—मातु भरत के बचन सुनि सांचे सरल सुभाय।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन काय॥१६८॥

अर्थ—भरतजी के सच्चे, सीधे और स्वाभाविक वचनों को सुनकर माता कौशल्याजी ने कहा— हे पुत्र! तुम तो सदा से ही मन, वचन और शरीर से श्री रामचन्द्रजी के प्यारे हो॥१६८॥

राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहिं प्रान तें प्यारे।
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारि चर बारि बिरागी॥

शब्दार्थ—स्रवइ=बहावे, बरसावे, गिरावे। बारिचर=पानी के जीव।

अर्थ—हे पुत्र! श्रीराम तो तुम्हारे प्राणों के भी प्राण हैं और तुम श्रीराम के प्राणप्रिय हो। चन्द्रमा भले ही विष टपकाने लगे और पाला से आग निकलने लगे और जल के जीव जलसे विरक्त हो जायँ—

भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुं सुख सुगति न लहहीं॥

अर्थ—और ज्ञान के हो जाने पर भी चाहे मोह नहीं मिटे, परन्तु तुम कभी राम से विमुख नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी भी राय है, संसार में ऐसा जो कोई कहें वे सुख और सुन्दर गति को कभी नहीं पायेंगे।

अस कहि मातु भरतु हिय लाये । थन पय श्रवहिं नयन जल छाये ॥
करत बिलाप बहुत ऐहि भांती । वैठेहिं वीत गई सब राती ॥

अर्थ—ऐसा कहकर माता ने भरतजी को छाती से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध वहने लगा और आंखों में जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते वैठे ही तमाम रात बीत गयी।

वामदेउ वसिष्ठ तव आये । सचिव महाजन सकल बोलाये ॥
मुनि बहु भांति भरत उपदेसे । कहि परमारथ वचन सुदेसे ॥

अर्थ—सुवह होते ही वामदेवजी और वशिष्ठजी आये। उन्होंने सभी मन्त्रियों और वड़े आदमियों को बुलाया। मुनि वशिष्ठजी ने परमार्थ (ब्रह्मज्ञान) विषयक सुन्दर वचन कहकर भरतजी को बहुत तरह से उपदेश दिया।

दो०—तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आजु ।
उठे भरत गुरु वचन सुनि करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ—हे तात ! हृदय में धीरज धरो और आज जिस काम के करने का अवसर है उसे करो। गुरुजी के वचन सुनते ही भरतजी उठे और सब काम करने को कहा।

नृप तनु वेद विहित अन्हवावा । परम विचित्र विमान वनावा ॥
गहि पग भरत मातु सब राखी । रहीं राम दरसन अभिलाखीं ॥

अर्थ—राजा के शरीर को वेदानुकूल नहलाया और अन्त्यन्त विचित्र रथ वनवाया। फिर भरतजी ने सब माताओं को सती होने से रोक रखा, वे भी श्री-रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रह गयीं।

चंदन अगर भार बहु आये । अमित अनेक सुगंध सुहाये ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुर पुर सोपान सुहाई ॥

शब्दार्थ—सोपान=सीढ़ी। अमित=असंख्य, बहुत। रचि=सजाकर, सुन्दर।

अर्थ—चंदन, अगर तथा और भी अनगिनत सुन्दर सुगन्धित द्रव्य बोझ के बोझ आये। सरयू के तीर सजाकर चिता बनाई गयी, मानो स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी हो।

ऐहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं । विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं ॥
सोधि सुमृति सब वेद पुराना । कीन्ह भरत दस गात विधाना ॥

शब्दार्थ—दाह क्रिया=जलाने का कर्म,अग्नि संस्कार। बिधिवत=नियमानुकूल। तिलांजुलि=मृतक संस्कार के समय तिल डालकर अंजलि से जल देने की विधि।

सोधि=खोजकर, निश्चय कर। सुमृति=स्मृति। दसगात=मृतक के लिये दस दिनों के कर्म। विधाना=कर्म, नियम।

अर्थ—इस प्रकार सबने राजा का अग्नि संस्कार किया और स्नान करके नियमानुकूल तिलाञ्जलि दी। फिर वेद, स्मृति तथा पुराणों के मत को निश्चय कर भरत जी ने दसगात्र कर्म किये।

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहं तस सहस भांति सबु कीन्हा॥
भये विसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज वाहन नाना॥

अर्थ—मुनिवर वशिष्ठजी ने जहां जिस प्रकार से करने की आज्ञा दी; वहां भरत जी ने वैसा ही हजारों प्रकार से सब किया। फिर (दसगात्र के वाद) शुद्ध होने पर भरत जी ने गौएँ, घोड़े, हाथी और नाना प्रकार की सवारियां दान में दीं।

दो०—सिंहासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमि सुर भे परिपूरन काम॥१७०॥

शब्दार्थ—सिंघासन=सिंहासन। भूमिसुर=ब्राह्मण। काम=मनोरथ, इच्छा।

अर्थ—भरतजी ने सिंहासन, गहने, वस्त्र, अन्न, जमीन, धन और घर दिये; जिनको पाकर ब्राह्मण लोग पूर्ण मनोरथ हो गये॥१७०॥

पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥
सुदिन सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥

अर्थ—पिता के लिए भरतजी ने जैसा काम किया, वह लाखों मुखों से नहीं कहा जा सकता। तब श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी (राज्याभिषेक के लिए) अच्छा दिन निश्चय कर! आये और सभी मन्त्रियों तथा बड़े आदमियों को बुलवाया।

बैठे राज सभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरम बचन उचारे॥

अर्थ—सब लोग राज सभा में जा बैठे और दोनों भाई भरतजी तथा शत्रुघ्न जी को बुला भेजा। वसिष्ठजी ने भरतजी को अपने नजदीक बैठाया और राजनीति तथा धर्म युक्त बात बोले—

प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कइ कइ कुटिल कीन्ह जसि करनी॥
भूप धरम ब्रतु सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥

अर्थ—पहले तो श्रेष्ठ मुनि ने, कैकेयी ने जैसे टेढ़े कर्म किये थे, उन सबको कह

सुनाया। फिर राजा के धर्म व्रत और सत्य की प्रशंसा की; जिन्होंने शरीर छोड़कर अपने धर्म का निर्वाह किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते हुए मुनिराज वशिष्ठजी के नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकायमान हो गया। उन्होंने फिर लक्ष्मणजी और सीताजी के प्रेम की प्रशंसा करके ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में डूब गये।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७१॥

अर्थ—तब मुनिनाथ वशिष्ठजी ने दुखी होकर भरत को सम्बोधन करके कहा—हे भरत! सुनो; होनहार प्रबल होती है। हानि लाभ, जीना, मरना, यश और कलंक ये सब विधाता के हाथ में हैं॥१७१॥

अस बिचारि केहि देइअ दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोषू॥
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृप नाहीं॥

अर्थ—ऐसा विचार कर किसको दोष दिया जाये और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाये? हे तात! मन में विचार करो। राजा दशरथ सोच करने के योग्य नहीं हैं।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरम बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

अर्थ—वह ब्राह्मण शोक करने के योग्य है जो वेद न जानता हो और अपने धर्म को छोड़कर भोग-विलास में लीन हो। उस राजा का सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय न हो।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अपमानी। मुखरु मान प्रिय ग्यान गुमानी॥

शब्दार्थ—बयसु=वैश्य। मुखर=बहुत बोलने वाला। गुमानी=घमंडी।

अर्थ—उस वैश्य का सोच करना चाहिए जो धनवान होकर भी कंजूस हो; और जो अतिथि सत्कार और शिवजी की भक्ति करने में चतुर न हो। वह शूद्र

शोचनीय है जो ब्राह्मणों का अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, सम्मान चाहनेवाला और अपने ज्ञान का घमंड करनेवाला हो।

सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

शब्दार्थ–पतिबंचक=पति को ठगनेवाली या छल करनेवाली। इच्छाचारी= मनमाना घूमने वाली। बटु=विद्यार्थी, ब्रह्मचारी। अनुसरई=अनुसार चलता है।

अर्थ–फिर वह स्त्री सोच करने के योग्य है जो अपने पति को ठगनेवाली, दुष्ट, झगड़ालू और मनमाना घूमनेवाली हो। उस ब्रह्मचारी के लिए शोक करना चाहिए जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता।

दो०–सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करमपथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥१७२॥

शब्दार्थ–गृही=गृहस्थ। मोह=अज्ञान। जती=सन्यासी।

अर्थ–उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए जो अज्ञानवश अपने कर्म के मार्ग को छोड़ देता है। वह संन्यासी सोच करने योग्य है, जो ज्ञान और वैराग्य से अलग होकर संसार के जाल में फँसा रहता है॥१७२॥

बैखानस सोइ सोचन जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥

शब्दार्थ–बैखानस= बानप्रस्थ आश्रम में रहनेवाला। पिसुन= चुगलखोर।

अर्थ–उस बानप्रस्थाश्रमी का सोच करना चाहिए जिसको तपस्या छोड़कर भोग-विलास अच्छा लगता हो। उसका सोच करना चाहिए जो चुगलखोर, बिना कारण ही क्रोध करनेवाला तथा माता-पिता, गुरु और भाई से शत्रुता रखनेवाला हो।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निजतनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरिजन होई॥

अर्थ–दूसरों की बुराई करनेवाला सब प्रकार से सोचने के योग्य है, जो अपने ही शरीर का पोषण करता है और बहुत ही निर्दय है। वह सब तरह से सोचनीय है, जो भगवान का भक्त होकर छल को नहीं छोड़ता।

सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयेउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
अर्थ–इसलिए हे भरतजी! कोशलेश महाराज दशरथ किसी प्रकार भी सोचने के योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है। हे भरतजी? तुम्हारे पिता जैसा राजा तो न हुआ, न है और न होने वाला ही है।

बिधि हरिहरु सुरपति दिसि नाथा। बरनहि सब दसरथ गुन गाथा॥
अर्थ–ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र और दिग्पाल सब दशरथजी के गुणों की कथाएँ कहा करते हैं।

दो०–कहहु तात केहि भांति कोउ करहि बड़ाई तासु।
राम लषन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअनु सुचि जासु॥१७३॥
शब्दार्थ–तासु=उसकी। जासु=जिसके। सुअन=पुत्र। सुचि=सुन्दर, पवित्र।
अर्थ–हे तात! तुम्हीं कहो, कि उसकी बड़ाई कोई किस प्रकार करे, जिसके श्रीराम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न सरीखे पवित्र पुत्र हैं॥१७३॥

सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि विषादु करिय तेहि लागी॥
यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू॥
अर्थ–राजा सब प्रकार से बड़े भाग्यवान थे। उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर तुम शोक को छोड़ दो और राजा की आज्ञा सिर पर धारण कर कार्य करो।

राय राजपद तुम्ह कहं दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिय कीन्हा॥
तजे रामु जेहि वचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥
अर्थ–राजाने राजपद तुमको दिया है, इसलिए तुम्हें पिता की बात अवश्य सत्य करनी चाहिए, जिस बात के लिये उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को छोड़ दिया और राम-विरह की अग्नि में अपना शरीर छोड़ा।

नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु वचन प्रमाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। यह तुम्ह कहं सब भांति भलाई॥
शब्दार्थ–प्रमाना=प्रमाणित, पूरा। रजाई=आज्ञा।
अर्थ–राजा को वचन प्रिय थे प्राण नहीं। इसलिए हे तात! पिता के वचन

पूरा करो। राजा की आज्ञा सिर पर रख कर कार्य करो, इसमें सब तरह तुम्हारी भलाई है।

परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु अग्यां अघअजस न भयऊ॥

शब्दार्थ—साखी=साक्षी, गवाह। तनय=पुत्र। जजातिहि=राजा ययाति को।

अर्थ—परशुरामजी ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी माता को मार डाला, जिसके सभी लोग साक्षी हैं। राजा ययाति के पुत्र ने ययाति को अपनी जवानी दे दी और पिता की आज्ञा रखने के कारण उसे पाप और कलंक कुछ भी नहीं हुआ।

ययाति—ये नहुष के पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियां—एक दैत्य-गुरु शुक्राचार्य की लड़की देवयानी और दूसरी दैत्यराज वृषपर्वा की शर्मिष्ठा थीं। संजीवनी मन्त्र के कारण शुक्राचार्य के बिना दैत्यों का काम नहीं चलता था; अतः शुक्राचार्य के विरुद्ध वृषपर्वा कुछ नहीं करते थे। एक दिन देवयानी और शर्मिष्ठा में कुछ विवाद हुआ, जिसके कारण शुक्राचार्य नाराज हो वृषपर्वा का राज्य छोड़ जाने लगे। अन्त में देवयानी के कथनानुसार वे उस राज्य में रहने के लिए इस शर्त पर राजी हुए कि शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बन कर रहे। देवयानी का व्याह राजा ययाति से हुआ। शर्मिष्ठा दासी बनकर गयी। किन्तु वहां जाकर छिपे तौर से ययाति ने शर्मिष्ठा से भी व्याह कर लिया। अन्त में उसके तीन पुत्र भी हुए। इससे देवयानी क्रोधित हो अपने पिता के पास चली गयी और ययाति भी गये। तब शुक्राचार्य ने क्रोधित हो उनको श्राप दिया कि राजा! तू बूढ़ा हो जा। इस पर ययाति ने बहुत अनुनय-विनय की। अन्त में शुक्राचार्य बोले कि तुम्हारा कोई पुत्र यदि तुम्हें अपनी जवानी दे दे और तुम्हारा बुढ़ापा ले ले तो तुम फिर यौवन को प्राप्त कर सकते हो। राजा ने यह प्रस्ताव अपने पुत्रों को बुलाकर उनके सामने रखा। देवयानी के दोनों लड़के यदु और तुर्वस तथा शर्मिष्ठा के दो पुत्र द्रुह्य और अनु ने इसे अनुचित कहकर अस्वीकार कर दिया; किन्तु शर्मिष्ठा के छोटे पुत्र पुरु ने इसे मानकर उन्हें अपनी जवानी दे दी। अन्त में कुछ दिनों के बाद अपना बुढ़ापा पुनः लेकर और पुरु को राजा बना ययाति तपस्या के निमित्त वन में चले गये।

दो०— अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमर पति अयन॥१७४॥

शब्दार्थ—बैन=वचन । भाजन=पात्र । ऐन=धाम, अयन, घर ।

अर्थ—जो मनुष्य अपने पिता के उचित या अनुचित वचनों का विचार छोड़ र उनका पालन करता है, वह सुख और सुयश का पात्र बनकर स्वर्ग में निवास रता है ॥१७४॥

अवसि नरेस वचन फुर करहू । पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू ॥

अर्थ—राजा का वचन अवश्य सत्य करो । शोक छोड़ो और प्रजा का पालन रो । इससे राजा भी स्वर्ग में प्रसन्न रहेंगे और तुमको पुण्य और सुन्दर यश लेगा, दोष (निन्दा) नहीं होगा ।

वेद विदित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ॥
करहु राज परिहरहु गलानी । मानहु मोर वचन हित जानी ॥

शब्दार्थ—विहित=विधान, व्यवस्था, अनुकूल । टीका=राजतिलक ।

अर्थ—यह बात वेदानुकूल तथा सभी (स्मृति पुराणदि) की यह सम्मति है क पिता जिस पुत्र को राज-तिलक दे वही राज्य पायेगा । इसलिए शोक को छोड़ ाज्य करो । मेरा वचन हितकर जानकर मानो ।

सुनि सुख लहब राम बैदेहीं । अनुचित कहब न पंडित केहीं ॥
कौशल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी ॥

अर्थ—यह सुनकर श्रीरामजी भी सुख पायेंगे और कोई पण्डित भी इसे नुचित नहीं कहेगा । कौशल्यादि सभी माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी ।

परम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब विध तुम्ह सन भल मानिहि ॥
सौंपेहु राजु राम के आये । सेवा करेहु सनेह सुहाये ॥

अर्थ—जो तुम्हारे तथा श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम को जानते, वे भी सब तरह तुम से भला ही मानेंगे अर्थात् वे तुम्हें कभी दोषी नहीं ठहरायेंगे । श्रीरामजी के आने पर उन्हें राज्य सौंप देना और सुन्दर स्नेह-सहित सेवा करना ।

दो०—कीजिय गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आये उचित जस तस तब करब बहोरि ॥१७५॥

अर्थ—मन्त्री भी हाथ जोड़ कर कहते हैं, कि आप गुरुजी की आज्ञा का पालन वश्य कीजिये । फिर श्रीरामचन्द्रजी के आने पर जैसा उचित हो वैसा कीजिये

कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ॥
सो आदरिय करिय हित मानी । तजिय बिषादु काल गति जानी ॥

शब्दार्थ—पथ्य=रोगी के लिए हल्का भोजन, लाभकारी श्रेयस्कर।

अर्थ—कौशल्या जी धीरज धारण कर कहती हैं, कि हे पुत्र ! गुरुजी की आज्ञा लाभकारी है । उसका आदर करना तथा भला समझ कर पालन करना चाहिए। काल की गति को जानकर शोक त्याग देना चाहिए ।

बन रघुपति सुरपुर नर नाहू । तुम्ह एहि भांति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा । तुम्हहीं सुत सबकहँ अवलंबा ॥

शब्दार्थ—कदराना=डरना, पीछे हटना, हिचकना, कातर होना ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी वन को और राजा स्वर्ग को चले गये और हे तात ! तुम इस तरह कातर हो रहे हो । हे पुत्र ! परिवार, प्रजा, मन्त्री और सब माताओं के एक तुम्हीं आधार हो ।

लखि बिधि बाम काल कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू । प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू ॥

अर्थ—विधाता को उल्टा और काल को कठोर देखकर, (मैं) माता बलैया जाती है तुम धीरज धरो । गुरु की आज्ञा सिर पर धारणकर उसके अनुसार का[य] करो और प्रजा का पालनकर पुर-वासियों का दुःख दूर करो ।

गुरु के बचन सचिव अभिनंदन । सुने भरत हिय हित जनु चंदन ॥
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी । सील सनेह सरल रस सानी ॥

अर्थ—भरतजी ने गुरु की बात तथा मन्त्रियों की प्रार्थनाएँ सुनी, जो मान[ो] भरत के जलते हुए हृदय को शीतल करने के लिए चन्दन के समान थीं । फि[र] उन्होंने नम्रता, स्नेह और सरलता के रस में सनी हुई माता की कोमल वाणी सुनी

छंद—सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भये ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये ॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ॥
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की ॥

अर्थ—सरलता के रस में सनी हुई माता की वाणी सुनकर भरत जी व्याकु[ल] हो उठे । उनके कमल रूपी नेत्र जल बहा कर हृदय के विरह रूपी नयें अंकुर क[ो]

सींचने लगे (जिन्ह-दुःख और भी बढ़ने लगा)। उनकी ऐसी दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीर की सुधि भूल गयी। तुलसीदासजी कहते हैं कि स्वाभाविक स्नेह की सीमा भरतजी की सभी लोग आदर पूर्वक प्रशंसा करने लगे।

सो०—भरत कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहिं ॥१७३॥

अर्थ—धीरवानों में सबसे बड़े धैर्यवान भरतजी धीरज धारण कर, कमल के समान हाथों को जोड़, मानो अमृत में डुबाये हुए वचनों से सब का उचित उत्तर देने लगे ॥१७३॥

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥

अर्थ—गुरुजी ने मुझे अच्छा उपदेश दिया है। उससे सभी प्रजा और मन्त्री भी सहमत हैं। माताजी ने भी उचित बात को ही ग्रहण कर आज्ञा दी है, जिसे मैं सिर पर धारण कर अवश्य पालन करना चाहता हूं।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥

अर्थ—क्योंकि गुरु, पिता, माता और स्वामी की वाणी सुनकर, प्रसन्न मन से, उसे अच्छा समझ कर, करना चाहिए। उसके उचित और अनुचित की होने का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का बोझा होता है।

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई ॥
जद्यपि यह समुझत हौं नीकें। तदपि होत परितोषु न जीकें ॥

अर्थ—और आप लोग तो मुझे वही शिक्षा दे रहे हैं जिसके अनुसार कार्य करने से मेरा भला होगा। यद्यपि यह मैं भली भांति समझ रहा हूँ, तो भी मेरे हृदय को सन्तोष नहीं होता।

अब तुम्ह बिनय मोर सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू ॥
उतरु देउं छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू ॥

अर्थ—अब आप लोग मेरी प्रार्थना सुन लें और मुझको योग्य शिक्षा दें। मैं उत्तर दे रहा हूँ मेरे इस अपराध को आपलोग क्षमा करेंगे, क्योंकि साधु मनुष्यों के दोष-गुण पर ध्यान नहीं देते।

दो०–पितु सुरपुर सिय राम बन करन कहहु मोहिं राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ–पिताजी स्वर्ग में हैं और सीताजी तथा श्रीरामचन्द्रजी वन में और आप लोग मुझे राज्य करने को कह रहे हैं। इसमें आप लोग मेरी भलाई सोच रहे हैं अथवा कोई अपना बड़ा काम ? ॥१७७॥

हित हमार सिय पति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीख मनमाहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं ॥

अर्थ–मेरी भलाई तो सीता-पति श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करने में ही है और उसे मेरी माता की दुष्टता ने हरण कर लिया। मैंने तो अपने मन में सोच-विचारकर देख लिया है,कि दूसरे किसी उपाय से भी मेरा कल्याण नहीं होनेवाला है

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय पद बिनु देखें ॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥

शब्दार्थ–लेखे=गिनती। बिरति=संसार से विरक्ति, वैराग्य।

अर्थ–लक्ष्मणजी श्रीरामजी और सीताजी के चरणों को देखे विना यह शोक का समाज राज्य किस गिनती में है ? जैसे कपड़े के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है और बिना वैराग्य के ब्रह्म विचार व्यर्थ हैं।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जाय जप जोगा ॥
जायं जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई ॥

शब्दार्थ–सरुज=रोगी। जाय=व्यर्थ है।

अर्थ–जैसे रोगी शरीर के लिए अनेक प्रकार के भोग व्यर्थ हैं, बिना भगवान की भक्ति के समस्त जप-योग व्यर्थ हैं, जीव (प्राण) के बिना सुन्दर शरीर व्यर्थ है, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजी के बिना मेरे लिए सब कुछ व्यर्थ है।

जाउं राम पहिँ आयसु देहू। एकहि आंक मोर हित एहू ॥
मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥

शब्दार्थ–पहिं=पास। एकहि आंक=निश्चय ही। जड़ता=मोह, अज्ञान।

अर्थ–मुझे आप लोग आज्ञा दें कि मैं श्रीरामजी के पास जाऊँ, निश्चय ही मेरी इसी में भलाई है। मुझे राजा बनाकर जो आप अपना भला चाहते हैं, वह भी आप लोग स्नेह की जड़ता वश ही कह रहे हैं।

दो०—कैकेइ सुवन कुटिल मति राम विमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम के राज ॥१७८॥

शब्दार्थ—गतलाज=निर्लज्ज, लज्जा रहित।

अर्थ—कैकेयी के पुत्र, कुटिल बुद्धि, राम से विमुख और निर्लज्ज मुझ जैसे नीच को राज्य देकर आप लोग अज्ञान वश होकर ही सुख चाहते हैं ॥१७८॥

कहउ सांचु सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरम सील नर नाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

अर्थ—सत्य कहता हूँ, आप लोग सुनकर विश्वास करें, धर्मात्मा ही राजा होना चाहिये। ज्योंही हठ करके आप मुझे राजपद देंगे, त्योंही यह पृथ्वी रसातल को चली जायगी।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम वनवासू ॥
राय राम कहुं काननु दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा ॥

अर्थ—मेरे समान पापका भाण्डार कौन है, जिसके कारण सीता और श्रीराम-जी का वनवास हुआ? राजा ने श्रीरामचन्द्रजी को वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वर्ग चले गये।

मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥

शब्दार्थ—सचेतू=चेतनायुक्त, होश हवास में, सावधानी से। बासू=घर। उपहासू=निन्दा। हेतु=कारण।

अर्थ—मैं ही सारे अनर्थों का कारण हूँ और होश-हवास में बैठा हुआ सब कुछ सुन रहा हूँ। श्रीरामचन्द्रजी के बिना घर को देखकर भी, संसार में उपहास सहकर ये प्राण बने हुए हैं।

राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोगके भूखे ॥
कहँ लगि कहौं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई ॥

शब्दार्थ—रूखे=विरक्त। लोलुप=लालची। निदरि=तिरस्कार। कुलिस=वज्र।

अर्थ—मेरे ये प्राण श्रीराम विषयक पवित्र रस से विरक्त, लालची भोग के ही भूखे हैं। अपने हृदय की कठोरता का वर्णन मैं कहां तक वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पायी है।

दो०—कारन ते कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल ते लोह कराल कठोर ॥१७९॥

शब्दार्थ—अस्थि=हड्डी। उपल=पत्थर।

अर्थ—कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा भयानक कठोर होते हैं ॥१७९॥

कैकेई भव तनु अनुरागे। पांवर प्रान अघाइ अभागे ॥
जौं प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥

शब्दार्थ—भव=उत्पन्न। पावँर=नीच। अघाइ=पूर्ण रूप से।

अर्थ—कैकेयी से उत्पन्न शरीर से प्रेम रखनेवाले ये नीच प्राण पूर्ण रूप से भाग्यहीन हैं। प्रिय श्रीरामचन्द्रजी का वियोग होने पर भी यदि ये प्राण मुझे प्रिय लग रहे हैं, तो आगे चलकर अभी मुझे और बहुत कुछ देखना सुनना है।

लखन राम सिय कहुं बन दीन्हा। पठइ अमर पुर पति हित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेंउ प्रजहिं सोकु संतापू ॥

अर्थ—श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजी को वन दिया; स्वर्ग भेजकर पति की भलाई की; स्वयं विधवापन और कलंक लिया तथा प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

मोहि दीन्ह सुखु सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सबकर काजू ॥
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका ॥

अर्थ—और मुझको सुख, सुन्दर यश और सुन्दर राज्य दिया; इस प्रकार कैकेयी ने सभी का काम बना दिया। इससे बढ़कर अच्छा मेरे लिए अब और क्या होगा, उसपर आप लोग मुझे राजतिलक भी देने को कह रहे हैं।

कैंकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोकहँ कछु अनुचित नाहीं ॥
मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पांच कत करहु सहाई ॥

शब्दार्थ—जठर=उदर, पेट। पांच=पंच। कत=क्यों।

अर्थ—कैकेयी के पेट से संसार में उत्पन्न हो कर, मेरे लिए यह कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बातें तो विधाता ने ही बना दी हैं, फिर प्रजा और आप पंच लोग क्यों सहायता कर रहे हैं?

दो०—ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पियाइय बारुनी कहहु कवन उपचार ॥१८०॥

शब्दार्थ—ग्रह=शनि, मंगल आदि ग्रह । ग्रहीत=ग्रस्त, पीड़ित । बात=वायु रोग, सन्निपात । बारुनी=शराब । उपचार=चिकित्सा, दवा, इलाज ।

अर्थ—कोई मनुष्य बुरे ग्रहों से पीड़ित हो, फिर उसे वायु रोग अर्थात् सन्निपात हो गया हो, उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे और उसकी प्राण रक्षा के लिए उसे शराब पिला दी जाय तो कहो यह कैसी चिकित्सा है ? ।१८०॥

कैकइ सुअन जोगु जग जोई । चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई ॥
दसरथ तनय राम लघु भाई । दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई ॥

अर्थ—कैकेयी के पुत्र के लिए संसार में जो कुछ योग्य था, चतुर ब्रह्मा ने वह सब मुझे दिया । परन्तु 'दशरथ' जी का पुत्र" और "श्रीरामचन्द्रजी का छोटा भाई" होने की बड़ाई विधाता ने मुझे व्यर्थ दी ।

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका । राय रजायसु सब कहँ नीका ॥
उतरु देउं केहि बिधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥

अर्थ—आप लोग मुझे राजतिलक लगवाने को कह रहे हैं । राजा की आज्ञा सभी के लिए अच्छी है । मैं किस प्रकार किस-किस को उत्तर दूँ ? जिसकी जैसी इच्छा हो वह सुखपूर्वक वैसा कहे ।

मोहि कुमातु समेत बिहाई । कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाहीं ॥

शब्दार्थ—बिहाई=छोड़कर । कहिहि=कहेगा । के=कौन । बिनु=सिवा, छोड़कर ।

अर्थ—मुझे और मेरी कुमाता कैकेयी को छोड़कर ऐसा कौन है जो कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया है ? मेरे सिवा संसार में जड़-चेतन ऐसा कौन है जिसे सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी प्राण प्रिय न हों ?

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू । अदिनु मोर नहिं दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू । सबुइ उचित सब जो कछु कहहू ॥

अर्थ—जो (राज्य) मेरे लिए अत्यन्त हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ दीख रहा है । यह मेरा दुर्दिन है, इसमें किसी का दोष नहीं । आप लोग जो कुछ कह रहे हैं वह सब उचित ही है, क्योंकि आप सन्देह, शील और प्रेम के वश हैं ।

दो०—राममातु सुठि सरल चित मो पर प्रेम बिसेखि ।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ।।१८१।।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की माता सुन्दर सरल हृदय की हैं और उनका प्रे
मुझ पर विशेष रहता है इसलिए मेरी दुःख पूर्ण अवस्था देखकर ही, स्वाभावि
स्नेहवश वे ऐसा कह रही हैं ।।१८१।।

गुरु बिबेक सागर जगु जाना । जिन्हहिं बिस्व कर बदर समाना ॥
मो कह तिलक साज सज सोऊ । भयें बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥

अर्थ—गुरुजी ज्ञान के सागर हैं, यह बात सारा संसार जानता है । जिस
लिये संसार हाथ की हथेली पर रखे हुए बेर के सदृश है, वे भी मेरे राज तिल
की तैयारी कर रहे हैं । सत्य ही है विधाता के प्रतिकूल होने पर प्रायः सभी लो
प्रतिकूल हो जाते हैं ।

परिहरि रामु सीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ॥
सो मैं सुनब सहब सुख मानी । अंतहुँ कीच तहां जहँ पानी ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजी को छोड़कर इस संसार में कोई
यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ कार्य में मेरी राय नहीं है । उसको भी मैं आन
पूर्वक सुनूंगा और सहूँगा । बात भी ऐसी है कि जहां पानी होता है उसके अन्त
कीचड़ का होना स्वाभाविक ही है ।

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी ॥

अर्थ—मुझे इसका बिल्कुल भय नहीं है कि संसार मुझे कायर कहेगा और सा
ही मुझे परलोक का भी सोच नहीं है । मेरे हृदय में तो केवल एक यही बात दावान
की भांति दुखदायी हो रही है कि मेरे कारण ही श्रीसीताजी, श्रीरामचन्द्रजी
दुखित होना पड़ा ।

जीवन लाहु लखन भल पावा । सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥

अर्थ—अपने जीवन का लाभ तो केवल लक्ष्मणजी ने ही पाया, जो कि सब कु
त्यागकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों से प्रेम किया । मेरा जन्म तो केवल श्रीरा

चन्द्रजी को वन देने के लिये ही हुआ था, अब मैं झूठा अभागा व्यर्थ ही क्यों पछता रहा हूँ।

दो०–आपनि दारुन दीनता कहउं सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥१८२॥

अर्थ–मैं अपनी दारुण-दीनता को सिर नवाकर सबसे कहता हूँ कि बिना श्री रामचन्द्रजी के दर्शन किये मेरे हृदय की ज्वाला कदापि शान्त न होगी।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहि आंक इहइ मनमाहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं ॥

अर्थ–मेरी समझ में तो दूसरा कोई उपाय ही नहीं आ रहा है। बिना श्री-रामचन्द्रजी के मेरे हृदय की बात ही दूसरा कौन जान सकता है। बस मेरे हृदय में तो केवल एक यही आंक (निश्चय-धारण) है कि प्रातःकाल ही प्रभु श्रीराम-चन्द्रजी के दर्शन को चल दूँगा।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥

शब्दार्थ–अनभल=बुरा। सनमुख, (समस्त विकार तथा विषयादि से विरक्त होकर अपने को भगवान के सामने अर्पण कर देना ही सम्मुखता का लक्षण है), सामने।

अर्थ–यद्यपि मैं बुरा (दुष्ट) और अपराधी हूं। मेरे ही कारण ये सब उपद्रव हुए हैं, तो भी श्रीरामचन्द्रजी मुझे शरण में सम्मुख आया हुआ देखकर, मेरे सब अपराधों को क्षमाकर मुझ पर विशेष कृपा करेंगे।

सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी शील, संकोच और सुन्दर सरल स्वभाव तथा कृपा और स्नेह के घर हैं। श्रीरामचन्द्रजी ने शत्रु का भी कभी बुरा नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ, तो भी उनका सेवक और बच्चा ही तो हूँ।

तुम्ह पै पांच मोर भलमानी। आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी ॥

अर्थ—आप पंच लोग भी इसी में मेरा भला मानकर, सुन्दर वाणी से आज्ञा और यही आशीर्वाद दें, जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्रीरामचन्द्रजी राजधानी (अयोध्या) को लौट आवें।

दो०—जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस।
आपनि जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥१८३॥

अर्थ—यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट सदा दोषयुक्त हूँ, तो भी मुझे श्रीरामचन्द्रजी का भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं।

भरत बचन सबकहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥

शब्दार्थ—दागे=जले हुए। सबीज=मूल मन्त्र सहित।

अर्थ—भरतजी के वचन सबको प्रिय लगे। मानो वे श्रीरामचन्द्रजी के स्नेह रूपी अमृत में पगे हों। सब लोग भयानक विष से जले हुए थे, वे बीजसहित मन्त्र को सुनते ही मानो जग (होश में आ) आ गये।

मातु सचिव गुरु पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भये भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥

अर्थ—माता, मन्त्री, गुरु जी तथा नगर के सभी स्त्री-पुरुष, सभी स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे भरतजी की बार-बार प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि आप का शरीर श्रीरामचन्द्रजी की साक्षात् मूर्ति ही है।

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥
जो पावँरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाईं॥

अर्थ—हे तात ! आप ऐसा क्यों नहीं कहें ? आप तो श्रीरामचन्द्रजी के प्राणों से भी प्यारे हैं। जो नीच अपनी मूर्खता से आपकी माता की कुटिलता के कारण आप पर सन्देह करेगा—

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

शब्दार्थ—कोटिक=करोड़ों। कलप (कल्प)=ब्रह्मा का एक दिन, चार अरब ३२ करोड़ वर्ष। निकेता=घर। गरल=विष। दारिद=दरिद्रता।

अर्थ—वह दुष्ट अपने करोड़ों पुरुषों के साथ, सौ कल्प तक नरक के घर में व

…रेगा । सर्प के पाप और अवगुणों को मणि ग्रहण नहीं करती, बल्कि वह विष को …हरती है और दुःख तथा दरिद्रता को जला देती है ।

दो०—अवसि चलिय वन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह ।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ—हे भरतजी ! श्रीरामचन्द्रजी वन में जहां हों, वहां अवश्य चलिये; …आपने अच्छी सलाह दी । शोक सागर में डूबते हुए हम सबों को आपने सहारा …दिया ॥१८४॥

भा सबके मन मोद न थोरा । जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके । भरत प्रान प्रिय भे सबही के ॥

अर्थ—सबके हृदय में अपार (थोड़ा नहीं) आनन्द हुआ; जैसे बादल की आवाज सुनकर पपीहा और मोर प्रसन्न हो उठते हैं । कल प्रातःकाल ही चलने का सुन्दर निर्णय देखकर, भरतजी सबके प्राणों से भी अधिक प्रिय हो गये ।

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जगमाहीं । सील सनेह सराहत जाहीं ॥

अर्थ—सब लोग पहले मुनि वशिष्ठजी की वन्दना कर, फिर भरतजी को सिर नवा, विदा ले अपने अपने घर को चले । वे रास्ते में भरतजी के शील और स्नेह की प्रशंसा करते जाते हैं और कहते हैं कि संसार में भरतजी का जीवन धन्य है ।

कहहिं परस्पर भा बड़ काजू । सकल चलै कर साजहिं साजू ॥
जेहि राखहिं रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥

अर्थ—सभी आपसमें कहते हैं कि काम बड़ा भारी हुआ और वे वन चलने की तैयारी करने लगे । तुम घर की रखवाली के लिए रह जाओ, ऐसा कहकर जिसको अयोध्या में रखते हैं, वह यही समझता है कि मानो उसके गले पर कुल्हाड़ी मारी गयी ।

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहइ जग जीवन लाहू ॥

अर्थ—और कोई-कोई कहते हैं कि घर पर रहने के लिए किसी को भी मत कहो । संसार में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता ?

दो०—जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद करइ न सहज सहाइ ॥१८५॥

अर्थ—वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई सब जल जायें, जो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के सम्मुख होने में स्वाभाविक सहायता न करें।

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवनु भंडारू॥

शब्दार्थ—बाहन=सवारी। परभात=प्रभात, सवेरे। पयाना=प्रस्थान करना चलना। बाजि=घोड़ा।

अर्थ—लोग घर-घर अनेक प्रकार की सवारियां सजा रहे हैं। सवेरे चलना है यह सोचकर उनके हृदय में (बड़ा) हर्ष है। भरतजी ने घर पर जाकर विचार किया कि, नगर, घोड़े, हाथी, घर और भाण्डार—

संपति सब रघुपति कै आही। जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइं दोहाई॥

अर्थ—ये सारी सम्पत्तियां श्रीरामचन्द्रजी की हैं। यदि बिना कुछ उपाय किये मैं इन्हें ऐसे ही छोड़ जाता हूँ तो अन्त में मेरी भलाई नहीं है। मुझे स्वामी की सौगन्ध है, मैं पापियों में शिरोमणि गिना जाऊँगा।

करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुं निज धरमु न डोले॥

अर्थ—सच्चा सेवक वही है जो स्वामी के हित कर कार्य करे, इसमें उसे कोई चाहे करोड़ों दोष क्यों न दे। ऐसा विचारकर उन्होंने आज्ञाकारी नौकरों को बुलवाया, जो स्वप्न में भी अपने कर्त्तव्य (धर्म) से डिगनेवाले न थे।

कहि सबु मरमु धरमु भल भाखा। जो जेहि लायक सो तहं राखा॥
करि सब जतन राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरत सिधारे॥

अर्थ—भरतजी ने उन्हें सब भेदों को बतला कर सब धर्मों को कहा और जो जिस लायक था उसको वहां रखा। सब प्रबन्ध करके और रखवालों को नियुक्त कर भरतजी श्रीरामजी की माता के पास गये।

दो०—आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान॥१८६॥

शब्दार्थ—सुखासन=सुखदायक आसन। जान=यान, सवारी, रथ।

अर्थ—स्नेह में चतुर भरतजी ने, सब माताओं को दुखी जानकर, पालकियां तैयार करने तथा सुखदायक आसनवाली सवारियां सजाने की आज्ञा दीं।

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयेउ विहाना। भरत बोलाये सचिव सुजाना॥

अर्थ—नगर के स्त्री-पुरुष चकवा-चकवी की भांति अत्यन्त दुःखी हृदय से प्रातःकाल का होना चाहते हैं। तमाम रात जागते हुए सवेरा हुआ। तब भरतजी चतुर मन्त्रियों को बुलावाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। वनहिं देव मुनि रामहिं राजू॥
वेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग संवारे॥

अर्थ—और कहा—राजतिलक का सब सामान ले लो। मुनिराज वशिष्ठजी वन में ही श्रीरामचन्द्रजी को राजतिलक देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मन्त्रियों ने प्रणाम किया और तुरन्त ही हाथी, घोड़े और रथों को सजाया।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
विप्र बृन्द चढ़ि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥

शब्दार्थ—अरुन्धती=वशिष्ठजी की स्त्री का नाम है। अगिनि= [illegible]

अर्थ—मुनिराज वशिष्ठजी अरुन्धती और अग्निहोत्र की सामग्री [illegible] रथ पर चढ़कर सब से पहले चले। फिर ब्राह्मण लोग, जो [illegible] के भाण्डार थे, अनेक सवारियों पर चढ़कर चले।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ [illegible]॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि [illegible]॥

अर्थ—पुरवासी अनेक प्रकार की सवारियां [illegible] के लिए चल दिये। और रानियां ऐसी सुन्दर [illegible] हो सकता, चढ़कर चलीं।

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥
बन सियरामु समुझि मनमाहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के वशीभूत सभी स्त्री पुरुष इस प्रकार दौड़ते जाते हैं मानो प्यासे हाथी और हथिनियां पानी की तलाश में जा रही हों। अपने मनमें यह समझकर कि श्रीरामजी और सीताजी (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, भाई के साथ भरतजी पैदल ही जा रहे हैं।

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गज रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥

अर्थ—(श्रीरामचन्द्रजी के प्रति भरतजी का) यह स्नेह देख लोग प्रेम में मग्न हो गये और अपने-अपने घोड़ों, हाथियों और रथों से उतरकर वे भी पैदल ही चलने लगे। (यह दशा देख) श्रीरामचन्द्रजी की माता भरतजी के पास जा अपनी पालकी रखवा कर मीठी वाणी से बोलीं—

तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥

अर्थ—हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथ पर जाओ; नहीं तो सारा प्यारा परिवार दुःखी हो जायगा। तुम्हारे पैदल चलने से सब लोग पैदल जाने लगेंगे और इस समय सभी शोक से कमजोर हो रहे हैं, पैदल रास्ता चलने के योग्य नहीं हैं।

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा[1] प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति[2] तीर निवासू॥

अर्थ—माता के वचनों को शिरोधार्यकर और उनके चरणों में सिर नवाकर, दोनों भाई रथ पर चढ़कर चले। पहले दिन तो तमसा नदी के तीर और दूसरे दिन गोमती के तटपर निवास किया।

१—तमसा घाघरा की एक शाखा है, जो अयोध्याजी से १६ मील के करीब निकल कर आजमगढ़ से आगे बढ़कर सरयू नदी में मिली है।

२—गोमती पीलीभीत के निकट एक झील से निकल कर लखनऊ आदि स्थानों में होती हुई ४८२ मील बहकर गंगाजी में मिली है।

दो०–पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग ।।१८८।।

अर्थ–कुछ लोग तो दूध ही पीकर, कुछ फल खाकर और कुछ केवल रात में ही एक बार भोजन करके रहते हैं । वे भूषण और भोग विलास को छोड़कर श्री रामचन्द्रजी के लिए इस प्रकार नियम और व्रत करते हैं ।।१८८।।

सई[1] तीर बसि चले बिहाने । सृंगबेर पुर सब नियराने ।।
समाचार सब सुने निषादा । हृदय बिचारि करइ सबिषादा ।।

अर्थ–रात भर सई नदी के तट पर रहकर सवेरा होते ही सब लोग चलकर श्रृंगवेरपुर के निकट जा पहुँचे । यह समाचार जब निषादों ने सुना, तब वे दुःखी हो अपने मन में विचार करने लगे ।

कारन कवनु भरतु बन जाहीं । है कछु कपट भाउ मनमाहीं ।।
जौं पै जिय न होत कुटिलाई । तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।

अर्थ–क्या कारण है कि भरतजी वन जाते हैं ? इनके मन में कुछ कपट भाव अवश्य है । यदि इनके हृदय में कुटिलता न होती तो ये साथ में सेना क्यों लेते ?

जानहिं सानुज रामहि मारी । करौं अकंटक राज सुखारी ।।
भरत न राज नीति उर आनी । तब कलंकु अब जीवन हानी ।।

अर्थ–समझते हैं कि भाई लक्ष्मण के साथ ही श्रीरामचन्द्र को मारकर मैं सुखपूर्वक अकण्टक राज्य करूँगा । भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया । तब तो केवल कलंक ही लगा था और अब जीवन से भी हाथ धोना पड़ेगा ।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा । रामहि समर न जीतनिहारा ।।
का आचरजु भरत अस करहीं । नहिं बिष बेलि अमिय फल फरहीं ।।

अर्थ–सभी देवता और दैत्य वीर जुट जायें तो भी वे युद्ध में श्रीरामचन्द्रजी को जीतनेवाले नहीं हैं । भरत ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ! विष का वृक्ष अमृत फल नहीं फलता ।

१–सई–गंगा और गोमती के मध्य में सई नदी है । यह अवध प्रान्त में है । यह लगभग २३० मील बहकर जौनपूर के समीप १० की दूरीपर गोमती में मिल गई है ।

दो०–अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवांसहु बोरहु तरनि कीजिय घाटारोहु ॥१८९॥

शब्दार्थ–ग्याति=जातिवालों, निषादों। सजग=सावधान। हथवांसहु=हाथ में करो, कब्जे में कर लो। तरनि=नाव। घाटारोहु=घाट रोकना।

अर्थ–ऐसा विचारकर निषादराज गुहं ने अपने जातिवालों से कहा कि तुम सब सावधान हो जाओ। नावों को हाथ में कर लो और नहीं हो तो उन्हें में डुबा दो और घाटों को रोक (बन्द) कर दो ॥१८९॥

होहु संजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊं। जियत न सुरसरि उतरन देऊं ॥

अर्थ–एकत्रित होकर घाटों को रोक दो और सब लोग मरने की तैयारी लो। आज मैं भरत से सामने लोहा लूंगा और जीते-जी उन्हें गंगा पार न होने दूंग

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छन भंगु सरीरा ॥
भरत भाइ नृपु मैं जनु नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू ॥

शब्दार्थ–छनभंगु=क्षणभर में ही नष्ट हो जानेवाला। मीचू=मृत्यु।

अर्थ–युद्ध में मरना फिर गंगाजी के तट पर और श्रीरामचन्द्रजी के क निमित्त और यह शरीर हमेशा रहनेवाला नहीं; भरत, श्रीरामचन्द्रजी के भ और राजा मुझ नीच सेवक का उनके हाथ से मरना-भला ऐसी मृत्यु तो बड़े भा से मिलती है।

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जसु धवलिहउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥

शब्दार्थ–रारी=लड़ाई। धवलिहउँ=उज्ज्वल कर दूंगा। निहोरा=कारण, निमित

अर्थ–स्वामी के काम के लिए युद्ध में मैं खूब लड़ूंगा और अपने यश से चौद लोकों को उज्ज्वल कर दूंगा। श्रीरामचन्द्रजी के लिए अपने प्राण त्याग दूंगा मेरे तो दोनों ही हाथों में आनन्द के लड्डू हैं।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महँ जासु न रेखा ॥
जायं जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू ॥

शब्दार्थ–लेखा=गिनती, गणना। रेखा=स्थापना, स्थापित होना, गिनती स्थान। जौबन=जवानी। विटप=वृक्ष। कुठारू=कुल्हाड़ी।

अर्थ–जिसकी साधुओं के समाज में गिनती नहीं और न श्रीरामचन्द्रजी के भक्तों में ही जिसको स्थान मिला, वह पृथ्वी का भार होकर संसार में व्यर्थ ही जीता है। वह अपनी माता की जवानी रूपी वृक्ष के लिए कुठार है।

दो०–बिगत बिषाद निषाद पति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मांगेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ॥१९०॥

अर्थ–शोकरहित होकर निषादराज गुह ने सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर तुरन्त ही अपने तरकस, धनुष और कवच को मांगा ॥१९०॥

बेगहु भाइहु सजहु संजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा ॥

शब्दार्थ–सँजोऊ=तैयारी, सामान। कदराना=पीछे हटना, डरना, मन में कायरता लाना। करषा=जोश, उत्साह।

अर्थ–(और कहा) हे भाई जल्दी से (युद्ध के लिए) सब सामान सजाओ और मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लाये। इस पर सब-के-सब हर्ष के साथ बोल उठे-हे नाथ! बहुत अच्छा, और दूसरे का उत्साह बढ़ाने लगे।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी ॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भाथीं बांधि चढ़ाइन्हि धनुहीं ॥

शब्दार्थ–जोहारि=प्रणाम करके। रूचइ=अच्छा लगता है। भाथीं=तरकस।

अर्थ–निषाद लोग (अपने स्वामी गुह को) प्रणाम कर-करके चले। युद्ध में सभी शूर-वीर हैं और उन्हें युद्ध ही अच्छा लगता है। वे श्रीरामचन्द्रजी की चरण-पादुका का स्मरण करके (कमर में) तरकस बांधते और धनुष चढ़ाते हैं।

अँगरी पहिरि कूंड़ि सिर धरहीं। फरसा बांस सेल सम करहीं ॥
एक कुसल अति ओड़न खांड़े। कूदहि गगन मनहुँ छिति छांड़े ॥

शब्दार्थ–अँगरी=कवच। कूंड़ि=लोहे की ऊँची टोपी, शिरस्त्राण। बांस=भाला।

अर्थ–वे कवच पहनकर सिर पर लोहे की टोपी रखते हैं। फरसा, भाला और बर्छी को सीधा (सुधारते) हैं। कोई तो तलवार का वार रोकने में ही अत्यन्त चतुर है और उत्साह से ऐसा भर रहा है मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश में ही कूद रहा हो।

निज निज साजु समाजु बनाई । गुह राउतहि जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने । लै लै नाम सकल सनमाने ॥

अर्थ—अपने अपने साज और दल बनाकर सबने निषादराज गुह के पास ज कर प्रणाम किया । गुह ने सुन्दर योद्धाओं को देखकर उन्हें सब प्रकार से सुयोग जाना और सबका नाम ले लेकर सम्मान किया ।

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट वीर अधीर न होहिं ॥१९१॥

शब्दार्थ—धोखा लाना= त्रुटि करना, कसर करना । सरोष= क्रोध सहित, जोश से

अर्थ—फिर निषादराज बोला—हे भाइयो ! (युद्ध में किसी प्रकार) त्रु नहीं करना, आज ही मेरा बड़ा काम है । यह सुनकर सभी योद्धा क्रोध (जोश सहित बोल उठे—हे वीर ! अधीर मत हो ॥१९१॥

राम प्रताप नाथ बल तोरे । करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं । रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं ॥

अर्थ—हे नाथ श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप और आपके बल से हम लोग सम सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे । जीते-जी हम पैर पीछे नहीं ध और रुंड-मुंड से पृथ्वी को भर देंगे ।

दीख निषाद नाथ भल टोलू । कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छींक भइ बायें । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाये ॥

शब्दार्थ—टोलू= दल । जुझाऊ= लड़ाई । सगुनिअन्ह= शकुन विचारनेवा

अर्थ—निषादों के स्वामी ने देखा कि वीरों का दल बहुत ही अच्छा है । तब क कि लड़ाई का ढोल बजाओ । इतना कहते ही बायीं ओर छींक हुई । शकुन विचा वालों ने कहा कि खेत सुन्दर है—जीत अवश्य होगी ।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिय न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं । सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं ॥

अर्थ—एक वृद्ध ने शकुन विचारकर कहा कि हे नाथ ! आप भरत से चल मिलिये, उनसे लड़ाई नहीं होगी । भरत श्रीरामजी को मनाने जा रहे शकुन ऐसा कह रहा है कि उनमें विरोध-भाव नहीं है ।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछितांहि विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सील बिन बूझें । बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥

अर्थ–निषादराज गुह ने यह सुनकर कहा कि बूढ़ा ठीक कह रहा है । जल्द बाजी करके (बिना सोचे-विचारे काम करके) मूर्ख लोग पछताते हैं । भरतजी का शील और स्वभाव बिना जाने ही उनसे युद्ध करने में हित की बड़ी हानि होगी ।

दो०–गहहु घाट भट समिटि सब लेउं मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

अर्थ–सब वीर इकट्ठा होकर सब घाटों को रोक लो, तबतक मैं भरत से जाकर मिलता हूँ और उनका भेद लेता हूँ । भरत का भाव मित्र का है, या शत्रु का अथवा उदासीन का है, यह जानकर फिर जैसा होगा वैसा आकर प्रबन्ध करूँगा ।

लखब सनेहु सुभायं सुहायें । बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुरायें ॥
अस कहि भेंट सजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग मांगे ॥

अर्थ–उनके सुन्दर स्वभाव से मैं उनके प्रेम को जान लूंगा; क्योंकि वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते । ऐसा कहकर वह भेंट की सामग्री इकट्ठा करने लगा । उसने कन्द, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाये ।

मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
मिलन साजि सजि मिलन सिधाये । मंगल मूल सगुन सुभ पाये ॥

शब्दार्थ–मीन=मछली । पीन=मोटी । पाठीन=एक प्रकार की मछली, रोहू ।

अर्थ–कहार मोटी तथा पुरानी पाठीन जाति की मछलियां कांवरों में भर-भर कर लाये । निषादराज भरतजी से मिलने का सब सामान सजाकर मिलने चला । उस समय उसे मगंलदायक शुभ शकुन मिले ।

देखि दूरि तें कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहिं दंड प्रनामू ॥
जानि राम प्रिय दीन्हि असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥

अर्थ–दूर से ही मुनिराज वशिष्ठजी को देखकर और अपना नाम कहकर निषादराज ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया । मुनिराज ने उसे श्रीराम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी को समझाकर कहा (कि यह रामजी का प्यारा मित्र है) ।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउं जाति गुह नाउं सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महिलाई ॥

अर्थ—यह श्रीरामचन्द्रजी का मित्र है यह सुनकर भरतजी ने रथ छोड़ दिया । वे रथ से उतर प्रेम से उमँगते हुए आगे बढ़े । तब निषादराज गुह ने अपना नाम, ग्राम और जाति बताकर, पृथ्वी पर माथा टेक उन्हें प्रणाम किया ।

दो०—करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुं लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदयं समाइ ॥१९३॥

अर्थ—प्रणाम करते हुए देखकर भरतजी ने उसे हृदय से लगा लिया । मानो लक्ष्मणजी से ही भेंट हो गयी हो, उनके हृदय में प्रेम नहीं समाता ॥१९३॥

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मंगल मूला । सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला ॥

अर्थ—भरतजी गुह को अत्यन्त प्रेम से गले लगाते हैं और लोग उनके प्रेम की रीति की प्रशंसा कर रहे हैं । देवता लोग मगंलमय धन्य-धन्य की ध्वनि करते हुए उनपर फूल बरसाते हैं ।

लोक बेद सब भांतिहि नीचा । जासु छांह छुइ लेइय सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता । मिलत पुलक परि पूरित गाता ॥

शब्दार्थ—सींचा=स्नान । अंक भरि=अंकवार भरकर, हृदय लगाकर ।

अर्थ—जो लोक और वेद दोनों से ही सब प्रकार नीच है, जिसकी छाया छू जाने से भी स्नान कर लेते हैं, उसी नीच निषाद को श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई भरतजी प्रेम से परिपूर्ण हो हृदय से लगा रहे हैं ।

राम राम कहि जे जमुहाहीं । तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥
यहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुल समेत जगु पावन कीन्हा ॥

अर्थ—जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं उनके सामने पापों के समूह नहीं आते । और इसको तो साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने हृदय से लगाकर कुल के साथ संसार में पवित्र बना दिया ।

करमनासु जल सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नाम जपतु जगु जाना । बालमीकि भये ब्रह्म समाना ॥

अर्थ—कर्मनाशा का जल जब गंगाजी में पड़ जाता है तब कहो तो कौन उसे

सिर पर नहीं रखता ? संसार जानता है कि बाल्मीकि मुनि श्रीरामचन्द्रजी का उल्टा नाम अर्थात् "मरा-मरा" जपते हुए ब्रह्म के समान हो गये।

दो०–स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥१९४॥

शब्दार्थ–स्वपच (श्वपच)=चाण्डाल। सबर (शबर)=एक जंगली जाति। खस='खसिया' नाम की एक जाति। जमन=यवन, मुसलमानादि।

अर्थ–मूर्ख और नीच चाण्डाल, शवर, खस, यवन और कोल-भिल्लनी राम का नाम लेते ही परम पवित्र हो जाते हैं; यह संसार में प्रसिद्ध है ॥१९४॥

नहिं अचरजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर करहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥

अर्थ–इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं है, यह बात युग-युगान्तर से चली आ रही है श्रीरामचन्द्रजी ने किसको बड़ाई नहीं दी ? श्रीराम-नाम की महिमा देवता लोग वर्णन कर रहे हैं और उसे सुन-सुन कर अयोध्यावासी सुख पा रहे हैं।

राम सखहिं मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सील सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू॥

अर्थ–श्रीरामजी के मित्र गुह से प्रेमपूर्वक मिलकर, भरतजी ने उससे कुशल-क्षेम और सुन्दर मंगल समाचार पूछे। भरतजी के शील और स्नेह को देखकर निषादराज उस समय विदेह अर्थात् शरीर की सुधि बुद्धि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढ़ा। भरतहिं चितवत एक टक ठाढ़ा॥
धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत करजोरी॥

अर्थ–उसके मनमें संकोच, प्रेम और आनन्द इतना बढ़ गया कि [illegible] खड़ा टकटकी लगाये भरतजी को देखता रहा। फिर धीरज [illegible] उनके चरणों की वन्दना कर, हाथ जोड़ प्रेमपूर्वक विनती करने लगा–

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुं [illegible]॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित [illegible]॥

अर्थ–कुशल के मूल आपके चरण कमलों को [illegible] कुशल मान ली। हे स्वामी ! आपकी [illegible] मंगल हो गया।

दो०–समुझि मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिय जोइ ।
जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

अर्थ–मेरे कर्म और वंश तथा प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की महिमा को अ हृदय में विचार कर जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का भजन नहीं करत संसार में वह ब्रह्मा द्वारा छला गया है ॥१९५॥

कपटी कायर कुमति कुजाती । लोक बेद बाहेर सब भांती ॥
राम कीन्ह आपन जबही तें । भयउं भुवन भूषन तबहीं तें ॥

अर्थ–मैं छली, कायर, दुर्बुद्धि और बुरी जाति का, लोक और वेद दोनों ही सब तरह बाहर हूँ । किन्तु जब से श्रीरामजी ने मुझे अपनाया है, तभी से संसार का भूषण हो गया ।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई । मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई ॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी । सादर सकल जोहारी रानी ॥

अर्थ–निषाद के प्रेम को देख और सुन्दर विनती को सुनकर, फिर भरतज छोटे भाई शत्रुघ्नजी ने उसे गले लगाया । निषाद ने सुन्दर वाणी से अपना कहकह कर आदरसहित सब रानियों को प्रणाम किया ।

जानि लखन सम देहि असीसा । जियहु सुखी-सय लाख बरीसा ॥
निरखि निषादु नगर नर नारी । भये सुखी जनु लखन निहारी ॥

अर्थ–रानियां उसे लक्ष्मणजी के समान जानकर आशीर्वाद देती हैं कि सुख से सौ लाख वर्षों तक जिओ । अयोध्या के स्त्री-पुरुष निषाद को देखकर इ सुखी होते हैं मानो लक्ष्मणजी को देखकर सुखी हो रहे हों ।

कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू । भेंटेउ राम भद्र भरि बाहू ॥
सुनि निषाद निज भाग बड़ाई । प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई ॥

अर्थ–सब लोग कहते हैं कि जीवन का लाभ तो इसी ने लिया है, जिसे कल स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी ने भुजाओं में लिपटा कर गले लगाया है । निषाद अ भाग्य की बड़ाई सुनकर मन में परम प्रसन्न हो सबको लिवा ले चला ।

दो०–सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनायेन्हि जाइ ॥१९६॥

शब्दार्थ–सनकारे=इशारा किया, संकेत से कहा ।

अर्थ—इस बीच गुह ने अपने सेवकों को इशारा किया (कि ये लोग श्रीरामजी शत्रु नहीं मित्र हैं, इनके रहने के लिए स्थान ठीक करो), वे अपने स्वामी का केत पाकर वहां से चल दिये और घरों, वृक्ष के नीचे, तालावों के किनारे, वगीचों था वनों में सवके ठहरने के लिए स्थान वनाया ।

सृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह् बस अंग सिथिल तव ॥
सोहत दिये निषादहि लागू । जनु तनु धरे बिनय अनुरागू ॥

शब्दार्थ—सिथिल (शिथिल)=ढीला पड़ना । लागू=सहारा, ।

अर्थ—भरतजी ने जिस समय श्रृगंवेरपुर देखा, उस समय उनका सारा शरीर म से शिथिल हो गया । वे निपाद के कन्धे पर हाथ रखे जाते हुए ऐसी शोभा ाते थे मानो शरीर धारण कर विनय और प्रेम साथ-साथ जाते हों ।

एहि बिधि भरत सेन सब संगा । दीखि जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥

शब्दार्थ—जगपावनि=संसार को पवित्र करनेवाली । मगनु=प्रफुल्लित, प्रसन्न ।

अर्थ—इस प्रकार भरतजी ने समस्त सेना के साथ जाकर संसार को पवित्र रने वाली श्रीगंगाजी को देखा । जिस घाट पर श्रीरामचन्द्रजी पार उतरे उस घाट को उन्होंने प्रणाम किया और मन में ऐसे प्रसन्न हुए मानों श्रीरामजी ो मिल गये हों ।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु मांगहिं कर जोरी । रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी ॥

अर्थ—अयोध्या पुरी के सभी स्त्री पुरुष गंगाजी के ब्रह्ममय जल को देखकर, सन्न हो प्रणाम करते हैं । फिर गंगा-जल में स्नान कर, हाथ जोड़ यही विनती रते हैं कि हे गंगा ! श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में से हमारा प्रेम कभी कम न हो ।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि वर मागउं एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ॥

अर्थ—भरतजी ने कहा, कि हे गंगे ! आपकी रज सभी सुखों को देनेवाली था सेवकों के हेतु तो कामधेनु है । इसलिए मैं हाथ जोड़कर आपसे यही वर मांगता हूँ कि सीताजी और श्रीरामजी के चरणों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ।

दो०–एहि बिधि मज्जन भरत करि गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ ॥१९७॥

शब्दार्थ–अनुसासन=आज्ञा। नहानीं=स्नान कर लिया।

अर्थ–इस प्रकार स्नानकर और गुरुजी की आज्ञा पाकर, तथा यह जानकर कि सब माताओं ने भी स्नान कर लिया, भरतजी सबको वास स्थान पर लिवा चलें ॥१९७॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधि सबहीं कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। रामु मातु पहिं गे दोउ भाई॥

अर्थ–लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सभी की सुधि ली कि कौन कहां किस स्थिति में है। फिर देव पूजन करके और गुरुजी की आज्ञा पा दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजी की माता के पास गये।

चरन चांपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहिं लीन्ह बुलाई॥

अर्थ–भरतजी ने सभी माताओं के चरण दबा और मीठे वचन कह-कह कर उनका सम्मान किया। फिर माताओं की सेवा का भार भाई शत्रुघ्न को सौंप भरतजी ने निषाद को वुला लिया।

चले सखा कर सों कर जोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे॥
पूछत सखहि सो ठाउं देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥

शब्दार्थ–ठाउँ=स्थान, जगह। नेकु=थोड़ा, कुछ। जुड़ाऊ=शान्त करो, ठंडा करो, न थोरे= अधिक।

अर्थ–भरतजी सखा निषाद के हाथ को अपने हाथ में लिए हुए चले। स्नेह की अधिकता से उनका शरीर शिथिल हो रहा था। उन्होंने मित्र निषाद से कहा कि हे भाई! वह स्थान दिखाकर मेरे नेत्र और मन की ज्वाला को शीतल करो–

जहँ सिय रामु लखन निसि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये॥
भरत वचन सुनि भयउ विषादू। तुरत तहां लै गयउ निषादू॥

अर्थ–जहां सीताजी, श्रीरामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी रात को सोये थे यह कहते हुए भरतजी के नेत्रों में जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद राज को वड़ा शोक हुआ और वह उन्हें तुरन्त ही उस स्थान पर ले गया

दो०—जहँ सिसुपा पुनीत तरु रघुवर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ—जहां शीशम का पवित्र वृक्ष था और जहां श्रीरामचन्द्रजी ने विश्राम किया था। भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह सहित उसको दण्डवत् प्रणाम किया।

कुस साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आंखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥

अर्थ—कुश का सुन्दर विछौना देख, उसकी परिक्रमा कर, भरतजी ने उसे प्रणाम किया। फिर श्रीरामचन्द्रजी के चरण-चिन्ह की रज को आंखों में लगाया। उस समय उनके हृदय में जो प्रेम उमड़ रहा था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥

शव्दार्थ—कनक=सोना, सुवर्ण। बिंदु=तारे जिसको स्त्रियां अपने कपड़ों में पिरो रखती हैं। दुइ चारिक=दो-चार। लेखे=मानकर, गिनती कर।

अर्थ—इसके वाद सीताजी के वस्त्रों से झड़े हुए दो-चार सुवर्ण तारों को वहां पड़ा देखा। भरतजी ने उन्हें सीताजी के समान मानकर सिर पर चढ़ा लिया। भरतजी के नेत्रों में आंसू भर आये और हृदय में शोक छा गया। वे मित्र निषाद से कोमल वाणी से कहने लगे—

श्री हत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउं पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही॥

अर्थ—ये सुवर्ण के तारे वैसे ही शोभा-रहित और कान्तिहीन (फीके) हो रहे हैं जैसे श्रीरामचन्द्रजी के विना अयोध्या के स्त्री-पुरुष। सीताजी की समता मैं किससे दूँ जिनके पिता श्रीजनकजी हैं, जिनके हाथ में संसार के भोग और योग दोनों ही हैं।

ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति पालू॥
प्राननाथ रघुनाथ गोसाईं। जो वड़ होत सो राम बड़ाई॥

अर्थ—सूर्य वंश के सूर्य महाराज दशरथजी जिनके ससुर हैं, जिनकी वड़ाई स्वयं इन्द्र करते हैं और पति श्रीरघुनाथजी हैं, जिनसे ही वड़ाई पाकर तो लोग वड़े होते हैं।

दो०–पति देवता सुतीय मनि सीय सांथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेखि ॥१९९॥

शब्दार्थ–पति देवता=पतिव्रता। मनि=श्रेष्ठ, शिरोमणि। हहरि=कांप कर, दहल कर। हर=शंकर। पवि=वज्र।

अर्थ–उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीताजी के कुशके विस्तरे को देखकर मेरा हृदय दहलकर यदि फट नहीं जाता, तो हे शंकर! यह तो वज्र से भी अधिक कठोर है ॥१९९॥

लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रान पियारे ॥

अर्थ–मेरे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मण प्यार करने ही के योग्य हैं। ऐसे भाई संसार में न हुए, न हैं और न होंगे ही। वे लक्ष्मण अवध वासियों के प्यारे, माता-पिता के दुलारे और सीता-रामजी के तो प्राण-प्रिय हैं।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भांती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥

अर्थ–और जो कोमल मूर्ति और कोमल स्वभाव के हैं, जिनके शरीर में गरम हवा कभी लगी ही नहीं, वे ही लक्ष्मण आज वन में सब तरह के कष्ट सह रहे हैं! मेरे इस हृदय ने तो करोड़ों वज्रों का निरादर कर दिया।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता ॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने जन्म लेकर संसार को प्रकाशित कर दिया। वे रूप, शील, सुख तथा सब गुणों के समुद्र हैं। अयोध्या के वासियों, कुटुम्बियों, गुरु और माता-पिता सभी को श्रीरामचन्द्रजी का स्वाभाव सुख देने वाला है।

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥
सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥

अर्थ–शत्रु भी श्रीरामजी की प्रशंसा करते हैं। वे अपनी बोली, (प्रसन्नता से) मिलने के भाव और विनय से सभी के मन को हर लेते हैं (वश में कर लेते हैं)। करोड़ों सरस्वतीजी और सौ करोड़ शेषनाग भी यदि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की गिनती करने लगें तो नहीं कर सकते।

दो०–सुख स्वरूप रघुबंस मनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ–वे सुख के स्वरूप, रघुवंश शिरोमणि, मंगल और आनन्द के भाण्डार श्रीरामचन्द्रजी जब कुश बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं, (तब और क्या कहा जाये) ब्रह्मा की गति अत्यन्त बलवती होती है ॥२००॥

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भांती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने कभी दुःख का नाम भी कान से नहीं सुना। महाराज दशरथजी जीवन-वृक्ष की भांति सदा उनकी रक्षा करते थे। और जिस तरह पलकें आंखों की और सर्प मणि की रक्षा करते हैं वैसे ही सभी माताएँ दिन रात उनकी रक्षा करती थीं।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी ॥
धिग कैकेइ अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥

अर्थ–वे ही श्रीरामचन्द्रजी अब वन में पैदल घूमते और कंद-मूल-फल का भोजन करते हैं। अमंगल की जड़ कैकेयी! तुझे धिक्कार है। तू प्राण प्यारे श्रीरामचन्द्रजी की शत्रु हुई!

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सब उतपातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंक करि सृजेउ बिधाता। साइं द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥

शब्दार्थ–उदधि=समुद्र। अघ=पाप। सृजेउ=रचा, बनाया। साइं=स्वामी।

अर्थ–मुझ पाप के समुद्र अभागे को बार-बार धिक्कार है, जिसके लिए ये सब उत्पात हुए हैं। विधाता ने मुझे कुल का कलंक बनाकर रचा और माता ने मुझे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी का शत्रु बना डाला।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहिं ॥

अर्थ–भरतजी की बात सुनकर निषाद प्रेमपूर्वक उन्हे समझाने लगा कि हे नाथ! आप शोक न करें। श्रीरामचन्द्रजी आपको प्रिय हैं और
चन्द्रजी को, इसमें दोष तो निश्चय ही प्रतिकूल विधाता का है।

छंद--बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्हीं बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतमु कहत हौं सौंहें किएं।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएं॥

शब्दार्थ—बावरी=बावली, पगली। सरहना=प्रशंसा। रावरी=आपकी।

अर्थ—टेढ़े विधाता के कर्त्तव्य ही कठोर हैं जिसने माता कैकेयी को बावली बना दिया। उस रात को प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बार-बार आपकी प्रशंसा करते रहे। तुलसीदासजी कहते हैं कि हे भरतजी! मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी को आपसे अधिक कोई दूसरा प्यारा नहीं है। और इसका परिणाम मंगल प्रद होगा, यह समझकर, आप अपने हृदय में धीरज लाइये।

सो०--अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ़ आनि मन॥२०१॥

शब्दार्थ—कृपायतन (कृपा-आयतन)=कृपा के घर। अंतरजामी=हृदय की बात जानने वाले।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी सबके हृदय की बात जाननेवाले, संकोची तथा प्रेम और कृपा के घर हैं, यह विचारकर और मन में दृढ़ता लाकर आप चलकर विश्राम करें।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥

अर्थ—मित्र निषाद के वचन सुनकर, हृदय में धीरज धर, श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए भरतजी डेरे को चले। जब नगर (अयोध्या) के स्त्री-पुरुषों ने (श्रीरामचन्द्रजी के निवास की) यह खबर पाई तब वे अत्यन्त दुःखित हो उसे देखने चले।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥

अर्थ—वे उस स्थान की प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बुरी तरह से दोष देते हैं। और आंखों में आंसू भर-भरकर टेढ़े विधाता को दोषी ठहराते हैं।

एक सराहहिं भरत सनेहू । कोउ कह नृपति निवाहेउ नेहू ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहिं । को कहि सकइ बिमोह बिषादहिं ॥

अर्थ—कोई तो भरतजी के स्नेह की प्रशंसा करते हैं और कोई कहते हैं कि राजा ने अपने प्रेम का पूरा निर्वाह किया । निषादराज गुह की प्रशंसा करके अपनी निन्दा करते हैं । उस समय के मोह और विषाद का वर्णन कौन कर सकता है ।

एहि विधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसार गुदारा लागा ॥
गुरहिं सुनावं चढ़ाइ सुहाई । नई नाव सब मातु चढ़ाई ॥

अर्थ—इस प्रकार (मोह और शोक में) सब लोग रात भर जागते रहे । सवेरा होते ही नाव घाट पर आ लगीं । भरतजी ने गुरुजी को सुन्दर नाव पर चढ़ाकर, सब माताओं को नयी नावों पर चढ़ाया ।

दंड चारि महं भा सबु पारा । उतरि भरत तब सबहि संभारा ॥

अर्थ—चार घड़ी में सब लोग गंगा-पार हो गये । उस पार उतरकर भरतजी ने तब सबकी देख-भाल की ।

दो०—प्रात क्रिया करि मातु पद बंदि गुरहिं सिर नाइ ।
आगे किये निषादगन दीन्हेउ कटक चलाइ ॥२०२॥

अर्थ—प्रातःकाल के कर्मों को समाप्तकर, माताओं के चरणों की वन्दनाकर और गुरुजी को सिर नवाकर, भरतजी ने (रास्ता दिखाने के लिए) निषादों को आगे कर सेना चला दी ॥२०२॥

कियेउ निषाद नाथ अगुआई । मातु पालकी सकल चलाई ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन्ह सहित गवनु गुरु कीन्हा ॥

अर्थ—निषादराज गुह को आगे किया, फिर सब माताओं की पालकियां चलीं । छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर उनके साथ कर दिया । अनन्तर ब्राह्मणों के साथ गुरुजी चले ।

आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लखन सहित सिय रामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाए । कोतल संग जाहिं डोरिआए ॥

शब्दार्थ—पयादेहि पाये=पावँ पयादे, पैदल । कोतल=राजा या प्रधान के चढ़ने का सजा सजाया घोड़ा । डोरिआये=रस्सी (बागडोर) में बँधे ।

अर्थ—गंगाजी को प्रणाम कर और लक्ष्मण तथा सीता-रामजी को स्मरण कर, भरतजी अपने पैदल चले। घोड़े बागडोर में बँधे साथ-साथ जाने लगे।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये। हम कहं रथ गज बाजि बनाये॥

अर्थ—उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं, कि हे स्वामी ! आप घोड़े पर सवार हो जायें। इस पर भरतजी ने कहा कि—श्रीरामचन्द्रजी तो पैदल गयें और रथ, हाथी, घोड़े हमारे लिए बनाये गये हैं !

सिरभर जाउं उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥

अर्थ—मेरे लिए तो यह उचित है कि मैं सिर के बल चलूं; क्योंकि सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरतजी की दशा देखकर और उनकी कोमल वाणी सुनकर सभी सेवक दु:ख के मारे गलने लगे।

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥२०३॥

अर्थ—प्रेम से अत्यन्त उत्साहित हो-होकर सीता-राम, सीता-राम रटते हुए भरतजी ने तीसरे पहर को प्रयाग में प्रवेश किया॥२०३॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥
भरत पयादेहिं आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

शब्दार्थ—झलका=छाला। झलकत=चमकते हैं। पंकज कोस=कमल का भीतरी भाग—कमल रूपी दोना, कमल-कली।

अर्थ—उनके पैरों में छाले कैसे चमकते हैं. जैसे कमल की कली में ओस की बूंदें। भरतजी आज पैदल ही आये हैं, यह सुनकर सारा समाज दु:खी हो गया।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहिं आये॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने॥

शब्दार्थ—सबिधि=विधिपूर्वक, नियमानुकूल। सितासित (सित-असित) उज्ज्वल और श्याम।

अर्थ—जब भरतजी ने यह खबर ले ली कि सब लोग स्नान कर चुके, तब आ

उन्होंने त्रिवेणी को प्रणाम किया। फिर त्रिवेणी के श्वेत और श्याम जल में विधिवत स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥

अर्थ—त्रिवेणी की श्याम और श्वेत लहरें देखकर भरतजी ने पुलकित शरीर से हाथ जोड़कर कहा—हे तीर्थराज प्रयाग! आप सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध और संसार में प्रकट है।

मांगउं भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी ॥

अर्थ—आज मैं अपने धर्म को (क्षत्रिय का धर्म भीख मांगना नहीं है) छोड़ कर आप से भीख मांग रहा हूँ। दुःखी मनुष्य कौन सा बुरा कर्म नहीं कर डालता। अपने हृदय में ऐसा सोचकर जो सज्जन और दानी पुरुष हैं, वे भिक्षुक की मांग को संसार में पूरा करते हैं।

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥२०४॥

अर्थ—मुझे न तो धन, न धर्म, न काम की इच्छा है और न मैं मोक्ष की गति ही चाहता हूँ। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में जन्म-जन्मान्तर मेरी भक्ति बनी रहे, मैं यही वरदान आपसे मांगता हूँ, दूसरा नहीं ॥२०४॥

जानहुं राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी मुझे भले ही दुष्ट समझें, लोग भी मुझे गुरु तथा स्वामी का शत्रु कहें; किन्तु श्री सीता-रामजी के चरणों में आपकी कृपा से मेरा प्रेम दिन दिन बढ़ता रहे।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जल पबि पाहन डारउ ॥
चातक रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भांति भलाई ॥

शब्दार्थ—सुरति=याद। जाचत=मांगने से। पबि=वज्र। पाहन=पत्थर,ओला। डारउ=गिरावे। रटनि=पुकार, रट। घटि जाई=मर्यादा में कमी आना जनमभरि=हमेशा के लिए। चातक=पपीहा।

अर्थ–मेघ हमेशा के लिए चाहे पपीहा की याद भुला दे और जल मांगने से वह भले ही वज्र और पत्थर गिरावे, किन्तु यदि पपीहे की रट में कमी आ गयी तो उसकी मर्यादा ही चली गयी। पपीहे की भलाई तो सब तरह मेघ के प्रति उसका प्रेम बढ़ने में ही है।

कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदुबानि सुमंगल देनी॥

अर्थ–तपाने से जैसे सोने में आब चढ़ जाती है, वैसे ही अपने अत्यन्त प्यारे (श्रीरामचन्द्रजी) के चरणों की प्रीति की रीति निभाने में भक्तों की मर्यादा बढ़ती है। भरतजी के ये वचन सुनकर त्रिवेणी की बीच धारा से सुन्दर मंगल को देनेवाली कोमल वाणी निकली।

तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं॥

अर्थ–हे तात भरत! तुम सब तरह से साधु हो और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ ही अपने मन में शोक करते हो, श्रीरामचन्द्रजी को तुम्हारे समान कोई दूसरा प्रिय नहीं है।

दो०–तनु पुलकेउ हिय हरष सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥२०५॥

अर्थ–त्रिवेणी जी के ये अनुकूल (प्रसन्नता से भरे) वचन सुनकर भरतजी के हृदय में हर्ष और शरीर पुलकायमान हो आया। देवता लोग 'भरत जी! आप धन्य हैं–धन्य हैं" कहकर प्रसन्न हो फूल बरसाने लगे॥२०५॥

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पांचा। भरत सनेहु सीलु सुचि सांचा॥

अर्थ–प्रयाग के रहने वाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वैरागी दस-पांच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का स्नेह और शील पवित्र और सच्चा है।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिवर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के गुण समूह को रास्ते भर सुनते हुए भरतजी मुनि

शिरोमणि भरद्वाजजी के पास आये। मुनि ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम करते हुए देखकर यह समझा कि उनका सौभाग्य ही मूर्ति धारणकर आ गया।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हें। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हें ॥
आसन दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे ॥

अर्थ—मुनिजी ने दौड़कर भरतजी को उठाकर छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। फिर आसन दिया और भरतजी सिर नवाकर इस प्रकार बैठे मानो भागकर संकोच के घर में घुसना चाहते हों।

मुनि पूछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सील संकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥

अर्थ—भरतजी के मन में इस बात का बड़ा संकोच हो रहा था कि मुनिजी कुछ पूछेंगे। ऋषि श्रेष्ठ भरद्वाजजी ने भरतजी के शील और संकोच को देखकर कहा—हे भरत! सुनो, हमने सब खबर पा ली है। विधाता के कर्मों पर किसी का कोई वश नहीं चलता।

दो०—तुम्ह गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ—इसलिए हे तात! अपनी माता के कर्म पर विचार करके तुम हृदय में ग्लानि मत करो। इसमें कैकेयी का दोष नहीं, सरस्वती ने उनकी बुद्धि को बिगाड़ दिया था ॥२०६॥

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेद बड़ाई ॥

अर्थ—यह कहने से भी कोई भला नहीं कहेगा, क्योंकि पंडित लोक और वेद दोनों से ही सहमत रहते हैं। किन्तु हे तात! तुम्हारा पवित्र यश गाकर लोक और वेद दोनों ही बड़ाई पायेंगे।

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई ॥
राउ सत्यब्रत तुम्हहिं बोलाई। देत राजु सुख धरम बड़ाई ॥

अर्थ—लोक और वेद दोनों ही इससे सहमत हैं और यही सब लोग कहते भी हैं कि पिता जिसको राज्य दे वही पाता है। सत्यव्रती राजा तुम्हें बुलाकर राज्य देते, इससे सुख और धर्म होता तथा बड़ाई होती।

राम गवनु बन अनरथ मूला । सो सुनि सकल बिस्व भइ सूला ॥
सो भावी बस रानि अयानी । करि कुचालि अंतहु पछितानी ॥

अर्थ—किन्तु राम का वन जाना यही अनर्थ की जड़ हुआ । जिसे सुनक सारे संसार को पीड़ा हुई । नासमझ रानी भी तो होनहार के वश खोटाप करके अन्त में पछतायी ।

तहुंउं तुम्हार अलप अपराधू । कहै सो अधम अयान असाधू ॥
करतेहु राज त तुम्हहि नहिं दोषू । रामहिं होत सुनत संतोषू ॥

अर्थ—उसमें भी तुम्हारा कुछ भी अपराध जो कहे वह नीच, मूर्ख और असा है । यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हें कोई दोष न होता, सुनकर श्रीरामज को सन्तोष ही हो ता ।

दो०—अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु ।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ—हे भरत ! अब तो तुमने और भी अच्छा किया, तुम्हारे लिए यही विचा उचित था । संसार में श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह का होना ही समस्त सुन्द मंगलों की जड़ है ॥२०७॥

सो तुम्हार धन जीवन प्राना । भूरि भाग को तुम्हहिं समाना ॥
यह तुम्हार आचरज न ताता । दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता ॥

अर्थ—वह श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे धन और जीवन प्राण हैं । तुम्हारे लिए य आश्चर्य नहीं है, क्योंकि तुम महाराज दशरथ के पुत्र और श्रीरामचन्द्र के प्य भाई हो ।

सुनहु भरत रघुपति मन माहीं । प्रेम पात्र तुम्ह सम कोउ नाहीं ॥
लषन राम सीतहिं अति प्रीती । निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती ॥

अर्थ—हे भरत ! सुनो, श्रीरामचन्द्रजी के मन में तुम्हारे समान प्रेम पा कोई दूसरा नहीं है । लक्ष्मणजी, श्रीरामजी, और सीताजी की उस दिन की सा रात तुम्हारी बड़ाई ही करते बीती थी ।

जाना मरम नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेह रघुबर के । सुख जीवन जग जस जड़ नर के ॥

अर्थ—जिस समय श्रीरामचन्द्रजी प्रयाग में स्नान कर रहे थे, उस समय

उनके इस मर्म को जाना । वे बार-बार तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे । श्रीरामचन्द्र-जी का तुम्हारे ऊपर वैसा ही प्रेम है, जैसा मूर्ख मनुष्य का सांसारिक सुखमय जीवन पर होता है ।

यह न अधिक रघुवीर बड़ाई । प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरे देह जनु राम सनेहू ॥

अर्थ—इसमें श्रीरामचन्द्रजी की कोई बड़ी बड़ाई नहीं है, क्योंकि वे तो भक्त और कुटुम्ब का पालन करने वाले हैं । हे भरत ! मेरे विचार में तो तुम मानो श्रीरामचन्द्रजी का स्नेह रूपी शरीर ही धारण किये हुए हो ।

दो०—तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समय गनेसु ॥२०८॥

अर्थ—(राम वनवास का यह अवसर जो प्राप्त हुआ है वह) तुम्हारे लिए तो यह कलंक है (जैसा सोचते हो) किन्तु हम लोगों के लिए तो उपदेश है । श्रीराम भक्ति रूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय गणेश अर्थात् कल्याणमय हो गया है ।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥

अर्थ—हे तात भरत ! तुम्हारा यश श्रीरघुनाथजी के भक्त रूपी कुमुद और चकोर के लिए नया चन्द्रमा के सदृश है । वह हमेशा उगा ही रहेगा कभी डूबेगा नहीं और वह संसार रूपी आकाश में दिन-दिन बढ़ता जायगा, घटेगा नहीं ।

कोक तिलोक प्रीति अति करही । प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ करतबु राहू ॥

अर्थ—तीनों लोकरूपी चकवा उससे अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्रीरामचन्द्र जी का प्रताप रूपी सूर्य उसकी शोभा का हरण नहीं करेगा । वह सब के लिए दिन-रात सुखदायी होगा तथा कैकेयी का कर्त्तव्य रूपी राहु उसका ग्रास नहीं करेगा ।

पूरन रामु सुप्रेम पियूषा । गुरु[1] अवमान दोष नहिं दूषा ॥
राम भगत अब अमिय अघाहू । कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहू ॥

१—गुरु—एकबार चन्द्रमा ने त्रैलोक्य जीतकर अभिमान से वृहस्पति की स्त्री 'तारा' का हरण कर लिया । इसपर चन्द्रमा के पक्ष में दैत्य और वृहस्पति के पक्ष में देवताओं ने रहकर घमासान युद्ध किया । फिर ब्रह्मा ने बीच-बीचाव करके

शब्दार्थ—पियूषा=अमृत। गुरु=सुर-गुरु वृहस्पति। अवमान=अपमान।

अर्थ—तुम्हारा यश रूपी चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत से परिपूर्ण है और वह चन्द्रमा तो वृहस्पति के अपमान के दोष से दूषित है किन्तु यह चन्द्रमा बिल्कुल निर्दोष है। अब श्रीरामचन्द्रजी के भक्त इस अमृत का पान कर तृप्त हों। हे भरत ! तुमने इस पृथ्वी पर अमृत को सुलभ कर दिया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥

अर्थ—राजा भगीरथ (इस धरा धाम पर) गंगाजी को लाये, जिनके स्मरण मात्र से सभी सुन्दर मंगल होते हैं। महाराज दशरथजी के गुण वर्णन नहीं किये जा सकते; अधिक क्या कहा जाये जिसके समान संसार में कोई हुआ ही नहीं

दो०--जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भये आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥२०९॥

अर्थ—जिनके स्नेह और संकोच के वश होकर साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ने आकर श्रीरामचन्द्रजी के रूप में जन्म लिया, जिनके रुप को देखते हुए शंकरजी के हृदय के नेत्र कभी तृप्त नहीं हुए॥२०९॥

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृग रूपा॥
तात गलानि करहु जिय जाये। डरहु दरिद्रहि पारस पाये॥

शब्दार्थ—मृग=चन्द्रमा का नाम मृगांक है इसलिए कि उसमें मृगा जैसा चिन्ह दिखाई देता है। जाये=व्यर्थ ही। पारस=वह पत्थर जिससे लोहा छुलाने से सोना बन जाता है।

अर्थ—हे भरत ! तुमने अपने यश रूपी उपमा रहित चन्द्रमा की सृष्टि की है, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी का प्रेम रूपी मृगा वास करता है। हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। पारस मणि पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो।

'तारा' को बृहस्पति को पुनः दिला दिया। किन्तु तारा को चन्द्रमा से गर्भ रह गया था और एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। वह बड़ा बुद्धिमान था, इसलिए ब्रह्मा ने उसका नाम बुध रख दिया। देव-गुरु बृहस्पति का अपमान करने से चन्द्रमा ~ काला दाग लगा और जगत में वह कलंकित हुआ।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस वन रहहीं ।।
सब साधन कर सुफल सुहावा । लषन राम सिय दरसन पावा ।।

शब्दार्थ–उदासीन=निष्पक्ष, जो किसी का पक्ष न रखने वाला हो ।

अर्थ–हे भरत ! सुनो, हम झूठ नहीं कहते । हमारे तो कोई शत्रु मित्र नहीं है, हम तपस्वी (स्पष्टवक्ता) हैं और वन में रहते हैं (किसी से कोई सरोकार नहीं रखते) । सब साधनों का उत्तम फल तो यह है कि हमें लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी के दर्शन मिले ।

तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ।।
भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ । कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ ।।

अर्थ–और उस फल का परिणाम यह हुआ कि तुम्हारे भी दर्शन हो गये । प्रयाग के साथ-साथ यह हमारा भी परम सौभाग्य है । हे भरत ! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से संसार को जीत लिया । ऐसा कहकर मुनि प्रेम में मग्न हो गये ।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ।।
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा ।।

अर्थ–मुनि के वचन सुनकर सभी सभासद प्रसन्न हुए और धन्य-धन्य कहकर प्रशंसा करते हुए देवताओं ने फूल वरसाये । आकाश में और प्रयागराज में धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी, जिसे सुन सुन कर भरतजी प्रेम में मग्न हो गये ।

दो०–पुलक गात हिय रामु सिय सजल सरोरुह नैन ।
करि प्रनाम मुनि मंडलिहिं बोले गदगद बैन ।।२१०।।

अर्थ–भरतजी का शरीर पुलकित है, हृदय में सीता-राम जी हैं और कमल रूपी नेत्रों में जल भरा हुआ है । वे मुनि-मंडली को प्रणामकर गद्गद वाणी से बोले ।।२१०।।

मुनि समाज अरु तीरथ राजू । सांचिहु सपथ अघाइ अकाजू ।।
एहिं थल जौं कछु कहिय बनाई । एहि सम अधिक न अघ अधमाई ।।

शब्दार्थ–अघाइ=पूरा, अच्छी तरह । अघ=पाप । अधमाई=नीचता ।

अर्थ–यहां मुनियों का समाज है और यह तीर्थराज प्रयाग है । यदि यहां सच्ची भी सौगंध खाई जाय तो पूर्ण रीति से बुरा है । इस स्थान पर यदि कुछ बनाकर कहा जाये, तो उसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता नहीं है ।

तुम्ह सर्वग्य कहउं सतिभाऊ । उर अंतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू । नहिं दुख जिय जगु जानहिं पोचू ॥

अर्थ—मैं सच्चे भाव से कहता हूँ, आप सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले) हैं और श्रीरामचन्द्रजी हृदय के भीतर की जानने वाले हैं; मुझे माता के कर्त्तव्य का कुछ भी सोच नहीं है और न इसका ही दुःख है कि संसार मुझे नीच समझेगा।

नाहिन न डर बिगरिहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए । लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥

अर्थ—न मुझे यही डर है कि मेरा परलोक विगड़ जायगा । पिताजी के मरने का भी मुझे शोक नहीं है । क्योंकि उनका पुण्य और सुन्दर यश ब्रह्माण्ड भर में सुशोभित है, जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी जैसा पुत्र पाये ।

राम बिरह तजि तन छनभंगू । भूप सोच कर कवन प्रसंगू ॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥

शब्दार्थ—छनभंगू=नश्वर, नाशवान । प्रसंगू=बात, चर्चा । पनहीं=जूता।

अर्थ—जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के विरह में अपना नाशवान शरीर छोड़ दिया, उन राजा के लिए शोक करने की बात ही क्या है । किन्तु (दुःख की बात तो केवल यह है कि) श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी विना जूता के मुनि का वेष बनाये वन-वन घूमती हैं ।

दो०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात ।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ॥२११॥

अर्थ—जो मृगचर्म पहनते, फल भोजन करते और पृथ्वी पर कुश और पत्ते विछाकर सोते, वृक्ष के नीचे रहते और सदा पाला, धूप, वर्षा और हवा सह रहे हैं ॥२११॥

एहि दुख दाहं दहइ दिन छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं । सोधेउं सकल विस्व मन माहीं ॥

अर्थ—इसी दुःख की ज्वाला से मेरा हृदय दिन-रात जल रहा है । दिन में न भूख लगती न रात में नींद आती है । मैंने मन-ही-मन सारे संसार को खोज डाला किन्तु इस बुरे रोग की दवा कहीं नहीं है ।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला । तेहिं हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू । गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥

शब्दार्थ–बढ़ई लकड़ी का काम करने वाला मिस्त्री । बसूला=बढ़ई का एक प्रकार का हथियार । कलि=विरोध, कलह, संग्राम । कुजंत्रू=बुरा यंत्र (तावीज) कुमत=बुरा विचार । हित=राज्य दिलाने की भलाई ।

अर्थ–माता का बुरा विचार तो पाप का मूल बढ़ई है । उसने हमारे हित को बसूला बनाया और विरोध रूपी बुरी लकड़ी का बुरा यन्त्र बना चौदह वर्ष की अवधि रूपी कठोर बुरे मन्त्र को पढ़कर उस यन्त्र को गाड़ दिया ।

मोहि लगि यह कुठाटु तेहि ठाटा । घालेसि सब जगु बारह बाटा ॥
मिटइ कुजोग रामु फिरि आये । बसइ अवध नहिं आन उपाये ॥

शब्दार्थ–कुठाटु=बुरा सामान । ठाटा=तैयार किया । घालेसि=(नष्ट) कर दिया । बारह बाटा=उजड़ना, नष्ट होना । कुजोग=बुरा योग, बुरा संयोग ।

अर्थ–मेरे लिए उसने इस बुरे सामान का ठाट किया और सारे संसार को उजाड़ डाला । यदि श्रीरामचन्द्रजी लौट आयें तो यह बुरा योग मिट जाये और अयोध्या भी बस जाये, नहीं तो अयोध्या के बसने का कोई और उपाय नहीं है ।

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहिं कीन्हि बहु भांति बड़ाई ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी । सब दुखु मिटिहि राम पग देखी ॥

अर्थ–भरतजी की बातें सुनकर भरद्वाज मुनि बड़े ही सुखी हुए और सभी ने उनकी प्रशंसा की फिर भरद्वाजजी ने कहा– हे तात ! तुम अधिक शोक मत करो; श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के दर्शन से ही तुम्हारे सब दुःख मिट जायेंगे ।

दो०–करि प्रबोध मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेम प्रिय होहु ।
कंद मूल, फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु ॥२१२॥

शब्दार्थ–प्रबोधकरि=समझा बुझाकर, सान्त्वना देकर । छोहु=प्रेम, कृपा ।

अर्थ–इस प्रकार समझा-बुझाकर मुनिवर भरद्वाजजी ने कहा कि हे भरतजी, अब आप लोग हमारे प्रेम प्रिय अतिथि बनिये और कन्द, मूल, फल, फूल जो कुछ हम दें उसे कृपाकर स्वीकार कीजिये ॥२१२॥

सुनि मुनि बचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसर कठिन संकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी । चरन बंदि बोले कर

शब्दार्थ—कुअवसर=वेमौके। गरुइ=भारी, महत्वपूर्ण, श्रेष्ठ। गुरु=गुरुजन

अर्थ—मुनि भरद्वाजजी के वचन सुनकर भरतजी के मन में बड़ा सोच हो गया और इस आतिथ्य को वेमौके समझ उन्हें कठिन संकोच हुआ (वेमौका इसलिए कि तीर्थराज प्रयाग में ऋषि-ब्राह्मण का अन्न ग्रहण करना)। फिर गुरुजनों की वाणी को श्रेष्ठ जानकर, वे भरद्वाज जी के चरणों की वन्दना कर हाथ जोड़ बोले-॥

सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा॥
भरत बचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥

अर्थ—हे नाथ! आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना, यह हमारा परम धर्म है। भरतजी के वचन श्रेष्ठ मुनि भरद्वाज जी के मन को बड़े प्रिय लगे और उन्होंने उत्तम सेवकों और शिष्यों को बुलाया।

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेंहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये। प्रमुदित निज निज काज सिधाये॥

अर्थ—मुनि बोले—अब हमें भरतजी का अतिथि-सत्कार करना चाहिये। इसलिए तुम लोग जाकर कन्द, मूल, फल लाओ। यह सुनकर उन्होंने कहा-हे नाथ! बहुत अच्छा और मुनि को प्रणाम कर वे अपने-अपने कार्य में चले गये।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥

अर्थ—मुनि को अब यह चिन्ता हुई कि मैंने एक बड़े पाहुन (मेहमान) को न्योता दिया है, इसलिए जैसा देवता हो उसकी वैसी ही पूजा भी होनी चाहिये। यह सुनकर ऋद्धियां और अणिमादि सिद्धियां आयीं और बोलीं कि हे स्वामी! जो आज्ञा हो वह हम सब करें।

दो०—राम बिरह व्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

अर्थ—तव मुनिराज भरद्वाजजी ने प्रसन्न होकर कहा कि भरतजी भाई और समाज (दल-वल) सहित श्रीरामचन्द्रजी के विरह में व्याकुल हो रहे हैं; तुम लोग उनका आतिथ्य (मेहमान दारी) करके उनकी थकावट को दूर करो।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥

अर्थ—सभी ऋद्धियों और सिद्धियों ने मुनि की श्रेष्ठ वाणी को सिरपर रख अपने को बड़भागिनी माना। वे आपस में कहने लगीं— श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥

शब्दार्थ—रुचिर=सुन्दर। बिलखाहिं=दुःखी होते हैं, लज्जित होते हैं।

अर्थ—इसलिए मुनि के चरणों की वन्दना करके हमें आज वही करना चाहिये जिससे समस्त राज-समाज सुखी हो जाये। ऐसा कहकर उन्होंने अनेक सुन्दर घर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी लज्जित होते हैं।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे॥
दासी दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हें॥

शब्दार्थ—भोग=सुख-सामग्री। बिभूति=ऐश्वर्य, ठाट बाट के सामान। साजु=मग्री, सामान। जोगवत=पूरा करते हैं। मनहिं=रुचि (इच्छा) को।

अर्थ—उन्होंने उन घरों में अनेक प्रकार के भोग और ठाट-बाट के सामान र दिये, जिनको देखकर देवता भी ललचने लगे। दासी और दास सब सामान ए मन लगाकर उनके मन (इच्छा) को पूरा करने के लिए तैयार थे।

सब समाज सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुं नाहीं॥
प्रथमहिं बास दिये सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥

शब्दार्थ—केही=किसी को। जथा=जैसी।

अर्थ—जो सुख स्वर्ग में स्वप्न में भी नहीं मिल सकते, वैसे सुखों के सामान ऋद्धियों ने क्षण भर में सज दिया। पहले तो उन्होंने सब किसी को, जिसकी जैसी रुचि थी वैसा ही सुन्दर सुखदाई वास-स्थान दिया।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥२१४॥

अर्थ—फिर कुटुम्ब सहित भरतजी को स्थान दिया; क्योंकि ऋषि ने सिद्धियों को ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। मुनि शिरोमणि भरद्वाजजी ने अपने तपोबल से ब्रह्माजी को भी चकित कर देने वाले ऐश्वर्य की सृष्टि कर दी थी॥२१४॥

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाज नहिं जाइ बखानी । देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥

अर्थ—भरतजी ने जब मुनि के प्रभाव को देखा, तब उन्हें सभी लोकपालों के लोक तुच्छ लगने लगे । सुख साधनों का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग वैराग्य भूल जावें ।

आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबिध बिधाना ॥

शब्दार्थ—बिताना=चन्दोवा, मण्डप । सुरभि=सुगन्धित । जलासय=तालाव । बिधाना=प्रकार । बिबिध बिधाना=तरह तरह के ।

अर्थ—आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चन्दोवे, वन, वगीचे, अनेक प्रकार के पशु पक्षी, सुगन्धित पुष्प, अमृत के समान फल, तरह-तरह के निर्मल तालाव—

असन पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥

शब्दार्थ—अमी=अमृत । जमी=यमी=संयमी, त्यागी । सुर-सुरभी=देवताओं की गाय, कामधेनु । सची=इन्द्राणी ।

अर्थ—और खाने पीने के पदार्थ पवित्र और अमृत से भी अमृत हैं, जिन्हें देखकर लोग (अयोध्या निवासी) संयमी पुरुषों की भांति सकुचा रहे हैं । सबके ही वास-स्थानों पर कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं । देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को भी इच्छा होती है कि ये पदार्थ हमें भी मिल जायें ।

रितु बसंत बह त्रिविध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरष बिसमय बस लोगा ॥

शब्दार्थ—त्रिविध बयारी=तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द, सुगन्ध) हवा । स्रक=माला । बनिता=स्त्री । बिसमय (विस्मय)=आश्चर्य ।

अर्थ—वसन्त ऋतु है, तीनों प्रकार की हवा वह रही है और सबके लिए चारों पदार्थ-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सुलभ हैं । तथा माला, चन्दन, स्त्री आदि भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विस्मय के वश हो गये ।

दो०—संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

[illegible]

[illegible]

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा । नाइ मुनिहि सिर सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी । करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥

अर्थ— [illegible] हैं । भरतजी ने तीर्थराज प्रयाग में स्नान किया और सब समाज के साथ मुनि को प्रणाम करके, उनकी आज्ञा तथा आशीर्वाद सिरोधार्य कर फिर प्रणाम किया और अनेक प्रकार से विनती की ।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें । चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ॥
राम सखा कर दीन्हें लागू । चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥

शब्दार्थ—पथ गति कुसल=रास्ता जानने में चतुर. सहारा ।

अर्थ—फिर भरतजी चतुर पथ प्रदर्शकों को साथ ले, चित्रकूट में मन लगाये चले । वे राम सखा गुह निषाद के हाथ का सहारा लिए हुए ऐसे जा रहे हैं मानो प्रेम शरीर धारणकर जा रहा हो ।

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया । प्रेम नेम ब्रतु धरमु अमाया ॥
लखन रामसिय पंथ कहानी । पूछत सखहिं कहत मृदुबानी ॥

अर्थ—भरतजी के पैरों में जूते नहीं हैं, न सिर पर छाया ही है । उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (निष्काम) है । वे लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी तथा जानकीजी के मार्ग की कहानियां निषाद से पूछते जाते हैं और वह कोमल वाणी से कहता जाता है ।

राम बास थल बिटप बिलोके । उर अनुराग रहत नहिं रोके ॥
देखि दसा सुर बरसहिं फूला । भइ मृदु महि मग मंगल मूला ॥

शब्दार्थ—बास थल=रहने का स्थान । बिटप=वृक्ष ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के वास स्थान और वृक्षों को देखकर उन[illegible]
प्रेम की बाढ़ ऐसी आती है जो रोके नहीं रुकती । उनकी यह दश[illegible]
फूल बरसाते हैं और पृथ्वी कोमल हो गयी तथा मार्ग मंगल का[illegible]

दो०—किये जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

अर्थ—मेघ छाया किये जाते हैं और सुन्दर सुखदायक हवा बह रही है। श्रीरामचन्द्रजी के समय रास्ता उतना सुखद नहीं हुआ जैसा भरतजी के जाते समय हुआ ॥२१६॥

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परमपद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥

शब्दार्थ—घनेरे=बहुत। चितये=देखा। हेरे=देखा। परमपद=मोक्ष।

अर्थ—रास्ते में अनेक जड़ चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने देखा तथा जिनने प्रभु को देखा, वे सभी मोक्ष के अधिकारी (पाने वाले) हो गये। किन्तु भरतजी के दर्शन ने तो सबके भव-कष्ट ही मिटा दिये—उन्हें आवागमन से मुक्त कर दिया।

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं॥
बारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

शब्दार्थ—बारेक=एक बार। जेऊ=जो भी। तरन=स्वयं (तरने) मुक्त होने वाला। तारन=दूसरों को तारने (मुक्त कर देने) वाला। तेऊ=वह भी।

अर्थ—संसार में जो भी एक बार 'राम' कहते हैं, वे मनुष्य स्वयं तरने और दूसरों को भी तारने वाले होते हैं। फिर वही श्रीरामचन्द्रजी, जिन भरतजी का नाम, स्वयं मन में स्मरण करते रहते हैं, उन भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है।

भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगल दाता॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हिय लहहीं॥

अर्थ—फिर भरतजी श्रीरामचन्द्रजी के प्यारे छोटे भाई हैं, उनके लिए मार्ग क्यों न मंगलदायक हो जाय। सिद्ध, साधु, श्रेष्ठ मुनि ऐसा कहते हैं और भरतजी को देखकर हृदय में प्रसन्नता पाते हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहँ पोचू॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई॥

शब्दार्थ—सुरेस=इन्द्र। भलेहि=अच्छे पुरुषों के लिए।

अर्थ—भरतजी के प्रभाव को देखकर इन्द्र को चिन्ता हो गयी । यह संसार भले को भला और नीच को नीच दिखाई देता है । तब इन्द्र ने गुरु (वृहस्पतिजी) से कहा कि हे प्रभु ! आप ऐसा कीजिये कि जिससे रामजी भरतजी की भेंट ही न हो ।

दो०—राम सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि ।
बनी बात बिगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

शब्दार्थ—सोधि=खोजकर, ढूंढ़कर । बिगरन=बिगड़ना ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी संकोची और प्रेम के वश में रहने वाले हैं और भरतजी प्रेम के समुद्र हैं । अब बनी-बनायी बात बिगड़ना चाहती है, इसलिए कुछ छल ढूंढ़कर इसका उपाय कीजिये ॥२१७॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने । सहस नयन बिनु लोचन जाने ॥
कह गुरु बादि छोभ छलु छाड़ू । इहां कपट कर होइहि भांड़ू ॥

शब्दार्थ—सहसनयन=हजार नेत्र वाले इन्द्र । छोभ=चिन्ता, भांड़ू=भंडाफोड़, भेद खुलना ।

अर्थ—इन्द्र के वचन सुनते ही सुरगुरु वृहस्पति जी मुस्कराये और हजार नेत्र वाले इन्द्र को बिना आंख का (अन्धा मूर्ख) समझा । उन्होंने कहा—तुम्हारी व्याकुलता व्यर्थ है । तुम छल को छोड़ दो । यहां छल करने से सारा भेद खुल जायगा ।

मायापति सेवक सन माया । करइ त उलटि परइ सुरराया ॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी । अब कुचालि करि होइहि हानी ॥

अर्थ—हे सुरराज ! माया के पति श्रीरामचन्द्रजी के सेवक के साथ जो माया (छल) करता है, वह उलटकर उसीपर आ पड़ती है । उस समय श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा जानकर तो कुछ किया था । अब कुचाल करने से हानि होगी ।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराध भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥

शब्दार्थ—रिसाहिं=क्रोध करते हैं । रोष=क्रोध ।

अर्थ—हे देवराज ! श्रीरघुनाथजी का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किये गये अपराध पर कभी क्रोध नहीं करते; किन्तु यदि कोई उनके भक्त के प्रति अपराध कर दे, तो वह श्रीरामचन्द्रजी की क्रोधाग्नि में अवश्य जलता है ।

लोकहु बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं [1]दुरवासा ॥
भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ॥

अर्थ—यह इतिहास (कथा) लोक और वेद दोनों में ही विख्यात है और इस (श्रीरामजी की भक्त-वत्सलता की) महिमा को दुर्वासा ऋषि जानते हैं । भरतजी के समान श्रीरामचन्द्रजी का स्नेही दूसरा कौन है । सारा जगत् तो श्रीरामजी को जपता है और वे श्रीरामचन्द्रजी भरतजी को जपते हैं ।

दो०—मनहुं न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु ।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

१—राजा अम्बरीष विष्णु के परम भक्त और निरन्तर धर्म में रत रहते थे। उनका नियम था, कि एकादशी व्रत करके द्वादशी में साठ करोड़ गौ ब्राह्मणों को दान दे और उन्हें भोजन कराकर तो स्वयं पारण करते थे । एक बार द्वादशी के दिन, दुर्वासाजी ८८ हजार ऋषियों के साथ राजा की धर्म-परीक्षा लेने के लिये उनके यहां आये । अम्बरीष ने उनका यथाविधि सत्कार करके निवेदन किया-"महाराज ! भोजन तैयार है, आप लोग चलकर करें ।" दुर्वासाजी ने कहा कि पहले हम स्नान कर आवें तव भोजन करें । यह कह वे यमुनाजी में स्नान करने गये और वहां देर कर दी । उस दिन द्वादशी बहुत कम समय तक थी । इससे घवड़ाकर राजा ने ब्राह्मणों की आज्ञा ले, ठाकुरजी के चरणामृत से व्रत का पारण कर लिया। कुछ ही देर में दुर्वासाजी भी आ पहुँचे। राजा ने उनसे भोजन करने की प्रार्थना की । ऋषी ने कहा अव तो द्वादशी वीत गयी । क्या तुमने पारण नहीं किया ? राजा ने चरणामृत लेने की वात कही । इस पर दुर्वासाजी ने आग वबूला हो अपनी जटा का एक वाल नोच पृथ्वी पर पटका और उससे एक राक्षसी उत्पन्न हो राजा को मारने दौड़ी । भगवान से यह सहा नहीं गया । उन्होंने सुदर्शन चक्र को राजा की रक्षा के लिये भेजा । उसे देखते ही राक्षसी तो भाग चली और दुर्वासा भी प्राण वचाने के लिए ब्रह्माजी और शंकरजी के पास गये; किन्तु किसी ने शरण नहीं दी । अन्त में वे विष्णु भगवान के पास गये । उन्होंने कहा कि तुम अम्वरीप के ही पास जाओ । मैं कुछ नहीं कर सकता । मैं तो भक्ताधीन हूँ। अन्त में दुर्वासा दौड़े-दौड़े अम्वरीष की शरण में आये और राजा ने उनकी प्राणरक्षा की ।

शब्दार्थ–अमरपति=देवताओं का स्वामी। आनिय=लाना चाहिये, लाओ।

अर्थ–इसलिए हे देवराज! श्रीरामचन्द्रजी के भक्तों के काम बिगाड़ने की बात मन में न लाओ। ऐसा करने से लोक में कलंक और परलोक में दुःख होगा तथा दिन-दिन शोक के सामान बढ़ते रहेंगे ॥२१८॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहिं सेवक परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥

अर्थ–हे इन्द्र! मेरे उपदेश को सुनो, श्रीरामचन्द्रजी को भक्त बड़े ही प्रिय होते हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख और सेवक के साथ वैर करने वाले से बहुत ही वैर मानते हैं।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू ॥
करम प्रधान विस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

अर्थ–यद्यपि वे समदर्शी हैं, उनमें प्रेम और क्रोध कुछ भी नहीं है, वे किसी का पाप, पुण्य और गुण-दोष कुछ भी ग्रहण नहीं करते। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है वैसा फल भोगता है।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
अगुन अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस ॥

शब्दार्थ–विहारा=लीला, व्यवहार। अगुन=गुण रहित। अलेख=अज्ञेय, न जाना जा सके। अमान=मान रहित। सगुन=ब्रह्म का साकार रूप।

अर्थ–तो भी भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्त को अपनाते और अभक्त को मारकर तार देते हैं)। वही गुण-रहित, अज्ञेय, मान-रहित और एक रस भगवान श्रीराम भक्तों के प्रेम वश सगुण (साकार रूप में प्रकट) हुए हैं।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी ॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई ॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी सदा अपने भक्तों की रुचि रखते आये हैं। वेद, पुराण, साधु तथा देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में सोचकर कुटिलता को छोड़ दो और भरतजी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

दो०—राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ॥२१९॥

शब्दार्थ—निरत=लगे रहते हैं। सुरपाल=इन्द्र।

अर्थ—श्रीरामजी के भक्त दूसरों के हित में लगे रहते हैं, पराये दुःख से दुखी और दयालु होते हैं। उन भक्तों में भरतजी सर्व श्रेष्ठ हैं, इसलिए हे इन्द्र तुम डरो मत ॥२१९॥

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोस नहिं राउर मोहू॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी सत्य प्रतिज्ञ और देवताओं के हितैषी हैं और भरतजी श्रीरामजी की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। तुम स्वार्थ के वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरत का दोष नहीं, तुम्हारा मोह (अज्ञान) है।

सुनि सुरबर सुरगुरु बरबानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरसि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

अर्थ—देवगुरु वृहस्पतिजी की श्रेष्ठ वाणी को सुनकर इन्द्र के मन को बड़ा आनन्द हुआ और चिन्ता दूर हो गयी। तब इन्द्र प्रसन्न हो फूल बरसाकर भरत-जी के स्वभाव की सराहना करने लगे।

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्धि सिहाहीं॥
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुं चहुँ पासा॥

शब्दार्थ—उसासा=लम्बी सांस। उमगत=उमड़ पड़ता है।

अर्थ—इस प्रकार भरतजी रास्ते में चले जा रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी प्रशंसा करते हैं। भरतजी जब 'राम' कहकर लम्बी सांस लेते हैं, तब मानो चारो ओर प्रेम उमड़ पड़ता है।

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुर जन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीर लोचन जल छाए॥

शब्दार्थ—द्रवहिं=पिघल जाते हैं। पषाना=पत्थर।

अर्थ—उनके वचनों को सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्या के रहनेवालों के प्रेम का वर्णन नहीं हो सकता। बीच में ठहरकर भरतजी यमुना के तटपर आये। (यमुनाजी के) जल को देखकर उनके नेत्रों में आंसू आ गये।

दो०–रघुबर-बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज ॥२२०॥

शब्दार्थ–बरन=रंग। समेत=सहित। मगन होना=डूबना।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के श्याम रंग जैसा यमुनाजी का सुन्दर जल देख, भरतजी समाज सहित श्रीराम विरह रूपी समुद्र में डूबते-डूबते ज्ञान रूपी जहाज पर गये अर्थात् धैर्य धारण किया ॥२२०॥

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहिं सुपासू ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी। आईं अगनित जाहिं न बरनी ॥

अर्थ–उस दिन सब लोग यमुनाजी के तटपर ठहरे और समयानुकूल सब को आराम मिला। रातों ही रात तमाम घाटों की नावें इतनी अधिक संख्या में आयीं कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

प्रात पार भये एकहिं खेवां। तोषे राम सखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहिं सिरु नाई। साथ निषाद नाथ दोउ भाई ॥

अर्थ–प्रातःकाल सब लोग एक ही खेवा में पार हो गये और श्रीराम-सखा गुह की सेवा से सभी सन्तुष्ट हुए। फिर स्नानकर और यमुना जी को प्रणामकर दोनों भाई निषादराज के साथ चले।

आगे मुनिवर बाहन आछे। राज समाज जाइ सब पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे। भूषन बसन बेष सुठि सादे ॥

अर्थ–सुन्दर सवारी पर मुनिराज वशिष्ठजी सबके आगे चले। उनके पीछे सारा राज-समाज जा रहा है। उसके बाद दोनों भाई अत्यन्त सादे भूषण-वस्त्र और वेष में पैदल चले।

सेवक सुहृद सचिव सुत साथा। सुमिरत लखन सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥

अर्थ–सेवक, मित्र और मन्त्री के पुत्र भरतजी के साथ में हैं। वे लक्ष्मणजी, सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहां-जहां श्रीरामचन्द्रजी के ठहरने और विश्राम लेने के स्थान थे, वहां-वहां भरतजी प्रेम पूर्वक प्रणाम करते जाते हैं।

दो०–मगवासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ–रास्ते में बसने वाले स्त्री-पुरुष सुनते ही घर का काम-काज छो कर (उन्हें देखने के लिए) दौड़ते हैं और उनके सुन्दर रूप को प्रेम पूर्व देख, अपने जन्म का फल पाकर सब प्रसन्न होते हैं ॥२२१॥

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं । राम लखन सखि होहिं कि नाहीं ॥
बय बपु बरन रूप सोइ आली । सील सनेह सरिस सम चाली ॥

शब्दार्थ–वय=उम्र । वय=शरीर । आली=सखी ।

अर्थ–एक स्त्री दूसरी से प्रेम पूर्वक कहती है–हे सखी ! ये राम-लक्ष्मण या नहीं ? हे सखी ! उम्र, शरीर और रंग-रूप भी तो वैसा ही है । शील अ स्नेह भी वैसा ही तथा चाल भी उन्हीं के सदृश है ।

बेषु न सो सखि सीय न संगा । आगें अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा । सखि संदेहु होइ येहि भेदा ॥

शब्दार्थ–अनी=सेना । मानस=मन ।

अर्थ–किन्तु हे सखी ! इनका वेष तो वैसा नहीं है और न इनके साथ में सीता जी हैं । इनके आगे-आगे चतुरंगिणी सेना जा रही है । मुखपर प्रसन्नता नहीं, मन में खेद है, इसी भेद से यह सन्देह हो रहा है कि ये श्रीराम लक्ष्मण नहीं हैं।

तासु तरक तियगन मन मानी । कहहिं सकल तेहिं सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥

अर्थ–उसके तर्क को स्त्रियों ने मन में मान लिया और सभी बोलीं कि तुम्हारे समान चतुर कोई दूसरा नहीं है । उसकी प्रशंसा कर, कि तेरी बात सत्य है, दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली–

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू । जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहिं बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥

शब्दार्थ–रस भंग होना=आनन्द में बाधा पड़ना । सुभागी=सुन्दर भाग्य ।

अर्थ–जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के आनन्द में बाधा पड़ी, वह सब कथाएँ कहकर, वह सोभाग्यवती स्त्री फिर भरतजी के शील, स्नेह, और स्वभाव की प्रशंसा करने लगी ।

दो०—चलत पयादेहिं खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अर्थ—पिता ने राज्य दिया था, उसे छोड़कर, फलाहार करते और पैदल चलते हुए, वे ही भरतजी आज श्रीरामचन्द्रजी को मनाने जा रहे हैं; इनके समान और कौन है ? ॥२२२॥

भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो कछु कहब थोर सखि सोई । राम बंधु अस काहे न होई ॥

शब्दार्थ—भायप=भाईपन ।

अर्थ—भरतजी का भाईपन, भक्ति और आचरण, कहने और सुनने से, दुःख और दोष हर लेते हैं । हे सखी ! इनके विषय में जो कुछ भी कहा जाय, सब थोड़ा है । श्रीरामचन्द्रजी के भाई ऐसे क्यों न हों ?

हम सब सानुज भरतहिं देखें । भइन्ह धन्य जुवती जन लेखें ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं । कैकइ जननि जोग सुत नाहीं ॥

अर्थ—भाई के साथ भरतजी को देखकर हम सब स्त्रियों की गणना में धन्य हो गयीं । स्त्रियां भरतजी के गुणों को सुनकर और उनकी दशा देखकर पछताती हैं और कहती हैं कि यह पुत्र कैकेयी जैसी माता के योग्य नहीं हैं ।

कोउ कह दूषनु रानिहिं नाहिन । विधि सब कीन्ह हमहिं जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी । लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥

शब्दार्थ—दाहिन=अनुकूल, प्रसन्न । विधि=नियम, व्यवस्था, सीमा ।

अर्थ—कोई स्त्री कहती है—इसमें रानी का कोई दोष नहीं । यह सब विधाता ने किया है, जो आज हमसे अनुकूल है । कहां हम लोक और वेद दोनों की विधि (सीमा) से हीन तथा वंश और कर्म से मलीन (घृणित) तुच्छ स्त्रियां—

बसहिं कुदेस कुगांव कुबामा । कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचिरिजु प्रतिग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥

शब्दार्थ—अचिरिजु=आश्चर्य । जामा=उगा, पैदा हुआ ।

अर्थ—जो बुरे देश और बुरे गांव में बसने वाली स्त्रियों में भी बुरी हैं और कहां ऐसे पुरुष के दर्शन ! यह हमारे पुण्य का फल है । हर एक गांव में ऐसा ही आनन्द और आश्चर्य हो रहा है । मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो ।

दो०–भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

शब्दार्थ–विधिबस=संयोग से, भाग्यवश। दरस=स्वरूप,।

अर्थ–भरतजी का रूप देखते ही मार्ग के लोगों के भाग्य खुल गये। मानो सिंहल द्वीप (लंका) के रहने वालों को संयोग से प्रयाग प्राप्त हो गया हो॥

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥

शब्दार्थ–सुरधामा=देवस्थान। निमज्जहिं=स्नान करते हैं।

अर्थ–भरतजी अपने गुणों के साथ श्रीरामचन्द्रजी की गुणावली सुनते और श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते चले जाते हैं। तीर्थों, मुनि-आश्रमों और देव स्थान को देखकर स्नान और प्रणाम करते हैं।

मनहीं मन मांगहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहु॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥

अर्थ–और मन ही मन यह वरदान मांगते हैं कि सीताजी और श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलों में मेरा स्नेह हो। रास्ते में किरात, कोल आदि वनवासी तथा वाणप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और वैरागी मिलते हैं

करि प्रनामु पूछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु राम बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जनम फल लहहीं॥

अर्थ–भरतजी जिस-तिस को प्रणाम कर, उनसे पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी किस वन में हैं। वे सब श्रीरामचन्द्रजी का समाचार कहते हैं और भरतजी के दर्शन कर अपने जन्म का फल पाते हैं।

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥
एहि बिधि बूझत सबहिं सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥

अर्थ–जो मनुष्य यह कहते हैं कि हमने उनको कुशल पूर्वक देखा है, उन्हें भरत जी श्रीराम-लक्ष्मण के समान प्रिय मानते हैं। इस तरह सबसे सुन्दर वाणी से पूछते और श्रीरामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते हैं।

दो०–तेहि बासर बसि प्रात हीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ—उस दिन वहीं ठहरकर प्रातःकाल ही श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण कर चले। साथ के सब लोगों को भी श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की इच्छा भरतजी के समान ही बनी हुई है ॥२२४॥

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू ॥
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं राम मिटहिं दुखदाहू ॥

अर्थ—सब किसी को मंगल सूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरतजी को उत्साह हो रहा है कि श्रीरामचन्द्रजी अवश्य मिलेंगे और हमारे दुःख और कष्ट दूर होंगे।

करत मनोरथ जस जियं जाके। जाहिं सनेह सुरा सब छाके ॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेमबस बोलहिं ॥

शब्दार्थ—सुरा=शराब। छाके=मतवाले हुए। डगडोलहिं=डगमगाते हैं।

अर्थ—जिसके हृदय में जैसा भाव था, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सभी स्नेह रूपी शराब में पागल बने चले जा रहे हैं। सबके शरीर शिथिल हो रहे हैं, रास्ते में पैर डगमगाते हैं और प्रेमवश सभी विह्वल वचन बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा ॥

अर्थ—राम सखा निषादराज ने तब पर्वतों में श्रेष्ठ स्वाभाविक सुन्दर चित्रकूट को दिखलाया, जिसके पास ही पयस्विनी नदी के तट पर, सीताजी के साथ दोनों भाई रहते हैं।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राम समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

अर्थ—सब लोग उस पर्वत को देखकर और 'जानकी के जीवन श्रीरामचन्द्र जी की जय हो' कहकर प्रणाम करते हैं। राज-समाज प्रेम में ऐसा मगन हो रहा है, मानो श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या को लौट चले हों।

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु ॥२२५॥

शब्दार्थ—अगम=कठिन। अह=अहंकार। मम=ममता। जनेषु=मनुष्य में।

अर्थ—भरतजी के हृदय में उस समय जैसा प्रेम था, उसका वर्णन शेषजी

भी नहीं कर सकते । फिर कवि के लिए तो ऐसा कठिन है, जैसे अहंकार और ममता से दूषित मनुष्य के लिए ब्रह्मसुख (मोक्ष, परमानन्द) ॥२२५॥

सकल सनेह सिथिल रघुबर के । गये कोस दुइ दिनकर ढ़रके ।
जल थल देखि बसे निसि बीते । कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीते ॥

शब्दार्थ—दुइ=दो । दिनकर=सूर्य । ढरके=नीचे गिरे, अस्त हुए । पिरीते=प्रेमी

अर्थ—सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के स्नेह से शिथिल होने के कारण दिनभ में केवल दो कोस गये और सूर्यास्त हो गया । जल और स्थल की सुविधा देख टि गये और रात बीतने पर श्रीरामचन्द्रजी के प्रेमी भरतजी ने प्रस्थान किया ।

उहां रामु रजनी अवसेषा । जागे सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आये । नाथ वियोग ताप तन ताये ॥

शब्दार्थ—अवसेखा (अवशेष)=बाकी रहते ही । ताये=तपाये हुए ।

अर्थ—उधर श्रीरामचन्द्रजी कुछ रात बाकी रहते ही जगे । सीताजी ने रा को ऐसा स्वप्न देखा मानो समाज के साथ भरतजी आये हैं और स्वामी व विरहाग्नि में उनका शरीर तपा (क्षीण) हुआ है ।

सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी ॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन । भये सोचवस सोच बिमोचन ॥

शब्दार्थ—आन=दूसरा । अनुहारी=ढंग, आकृति ।

अर्थ—सभी उदास मन, दीन और दुःखी हो रहे हैं और सासुओं को और ढंग से अर्थात् विधवा-वेष में देखा । सीताजी के स्वप्न की वातें सुनकर श्रीरा चन्द्रजी के नेत्रों में जल भर आये और वे श्रीरामजी, जो मनुष्यों को सोच से मुक्त करने वाले हैं, उस समय सोच के वश (चिन्तित) हो गये ।

लषन सपन यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने । पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

शब्दार्थ—कुचाह=बुरी खवर, अनिष्ट समाचार । पुरारि=शंकरजी ।

अर्थ—वे बोले—हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न तो अच्छा नहीं है । कोई बहुत ही अनिष्ट समाचार सुनायेगा । ऐसा कहकर उन्होंने भाई के साथ स्नान किया और शंकरजी की पूजा कर, साधुओं का सम्मान किया ।

छंद—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये ।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे ।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

शब्दार्थ—भूरि=बहुत से । सचकित=आश्चर्य सहित । सनमानि=पूजकर ।

अर्थ—देवताओं को पूज और मुनियों की वन्दना कर श्रीरामचन्द्रजी बैठ गये और उत्तर दिशा की ओर देखे । आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पशु-पक्षी व्याकुल भागते हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु यह देखकर उठे और कारण क्या है, यह जानने के लिए मन में बड़े ही आश्चर्यित हुए । उसी समय कोल और किरातों ने आकर सब समाचार सुनाये ।

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर ।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

शब्दार्थ—भर=समूचा, सब । सरोरुह=कमल ।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि (भरत जी के आगमन के) सुन्दर मंगल-मय वचन सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी के मन में असीम आनन्द हुआ और सर्वांग पुलकित हो गया तथा उनके शरद्ऋतु के कमल के समान नेत्रों में प्रेम के जल भर गये ॥२२६॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगमनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥

अर्थ—फिर सीतापति श्रीरामचन्द्रजी सोच के वश हो गये, कि भरत के यहां आने का कारण क्या है । उसी समय एक दूसरे ने आकर कहा कि उनके साथ में बहुत बड़ी चतुरंगिणी सेना है ।

सो सुनि रामहिं भा अति सोचू । इत पितु बच उत बंधु सँकोचू ॥
भरत सुभाउ समझि मनमाहीं । प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं ॥

अर्थ—यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी को अत्यन्त सोच हो आया । इधर पिता की आज्ञा और उधर भाई का संकोच दोनों ने घेर लिया । मन में भरतजी के स्वभाव को समझकर, प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का चित्त (ठहरने के लिए) हितकर स्थान ढूंढ़ने लगा किन्तु पाता नहीं ।

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महुँ साधु सयानें॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयं खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥

अर्थ–फिर यह समझकर कि भरतजी साधुओं की गिनती में सयाने (श्रेष्ठ हैं, उनके मन को बोध हुआ। लक्ष्मणजी प्रभु के हृदय के कष्ट को देख समयानुकूल नीति विषयक विचार कहते हैं–

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक समय न ढीठि ढिठाई॥
तुम सर्वग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

अर्थ–हे स्वामी ! आपके बिना पूछे ही मैं कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर कुछ ढिठाई करे तो वह ढीठ नहीं समझा जाता। हे स्वामी आप सर्वज्ञों (सब कुछ जानने वालों) में शिरोमणि हैं और मैं दास अपनी समझ के अनुसार कहता हूँ।

दो०–नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान॥२२७॥

अर्थ–हे स्वामी ! आप सबके परम मित्र, सीधे स्वभाव (दयालु) तथा शील और स्नेह के घर हैं। आपका सबमें प्रेम और विश्वास है और हृदय में आप सबको अपने ही समान मानते हैं॥२२७॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना॥

शब्दार्थ–विषयी=विलासी, संसारी। प्रभुताई=अधिकार।

अर्थ–मूर्ख सांसारिक जीव अधिकार को पाकर, अज्ञान वश अपने असली रूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीति परायण, साधु और चतुर पुरुष हैं; हे प्रभु ! आपके चरणों में उनका प्रेम है, यह सारा संसार जानता है।

तेऊ आज राज पद पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥

शब्दार्थ–मरजाद=मर्यादा, सीमा। ताकी=देख। एकाकी=अकेला।

अर्थ–वे भरत भी आज राज-पद पाकर धर्म की मर्यादा मिटाकर चले हैं दुष्ट, बुरा भाई, बुरा समय देखकर और यह जानकर कि श्रीरामजी वन में अकेले हैं।

करि कुमंत्र मन साजि समाजू । आये करइ अकंटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आये दल बटोरि दोउ भाई ॥

शब्दार्थ–कुमंत्र=बुरा विचार । कलपि=रचकर । बटोरि=इकट्ठाकर ।

अर्थ–ऐसा बुरा विचार अपने मन में करके, दल सजकर निष्कण्टक राज्य ने आये हैं । करोड़ों प्रकार की कुटिलताएँ रचकर दोनों भाई सेना एकत्रित र आये हैं ।

जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोष देइ को जाये । जग बौराइ राज पदु पाये ॥

शब्दार्थ–गजाली (गज-अली)=हाथियों की पक्ति (समूह) । जाये=व्यर्थ ।

अर्थ–यदि उनके मन में छल और कुचाल नहीं होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों । पंक्ति किसे सुहाती ? किन्तु भरत को ही कौन व्यर्थ दोष लगाये ? संसार ही ज-पद (ऊंचा पद) पा जाने पर पागल हो जाता है ।

दो०–ससि गुर तिय गामी नहुष चढ़ेउ भूमि सुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न [1]बेन समान ॥२२८॥

शब्दार्थ–भूमिसुर=ब्राह्मण । जानु=पालकी, सवारी ।

अर्थ–चन्द्रमा ने गुरुपत्नी को अपनी पत्नी बनाया, राजा नहुष ब्राह्मणों की लकी पर चढ़ा और राजा वेनु के समान नीच कौन हुआ, जो लोक और वेद नों ही से विमुख हो गया ॥२२८॥

---

१ वेनु–यह ध्रुव के वंशज राजा अंग का पुत्र था । बचपन से ही ? क्रूर, निर्दय और अधर्म मार्ग पर चलने वाला था । राजा होने पर इसके उपद्रवों की सीमा ही न रही । यज्ञादिक कार्यों में नाना कार से विघ्न डालने तथा ऋषि-मुनि और ब्राह्मणों को उत्पीड़ित करने गा । प्रजा कष्ट पाने लगी । ब्राह्मणों ने उसे बहुतेरे धर्मोपदेश दिये, किन्तु इसने क भी न सुनी । तब ऋषियों ने उसे श्राप दे मार डाला । बेनु के कोई पुत्र नहीं था, तः ऋषियों ने उसके मृत् शरीर को मथा । उसके शरीर से पहले एक काला पुरुष कट हुआ । वह निषादों का राजा हुआ । फिर दुबारा मथने से वेनु की भुजा से थु निकले और उन्हें राजा के योग्य समझ ऋषियों ने राजा बनाया ।

[1]सहसबाहु [2]सुरनाथ [3]त्रिसंकू । केहि न राज मद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥

अर्थ–सहस्रवाहु, इन्द्र तथा त्रिशंकु आदि किसको राज्य के अभिमान ने क[लंक]
नहीं दिया ? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है । शत्रु और ऋण को क[भी]
थोड़ा भी शेष नहीं रखना चाहिए ।

१–क्षत्रिय राजा सहस्रवाहु शंकरजी के प्रसाद से अत्यन्त बलशाली हो, [एक]
बार सेना सहित शिकार खेलते–खेलते यमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट
पहुँचे । ऋषि ने उन्हें अपना अतिथि बनने के लिए आग्रह किया । सहस्र[वाहु]
ने कहा–"यदि सेना सहित आप मेरा सत्कार कर सकें, तो मुझे आपका आति[थ्य]
स्वीकार है ।" ऋषि ने स्वीकार किया और सेना सहित राजा की पूरी आव-भ[गत]
की । राजा ने ऋषि के सत्कार से अवाक् होकर पूछा,–"महात्मन ! आपने इ[स]
अल्प समय में, इतने मनुष्यों के लिए ऐसे उत्तम अयोजन कैसे कर डाला[?"]
ऋषि ने कहा,–यह सब कामधेनु का प्रभाव है । राजा ने मोह में पड़कर ऋ[षि]
से कामधेनु अपने लिए मांगी, किन्तु ऋषि ने उसे देने में असमर्थता प्रकट क[ी।]
इसपर वह क्रोधित हो कामधेनु को बलपूर्वक छीन अपनी राजधानी को ले चल[े।]
कामधेनु भागकर इन्द्रलोक को चली गयी । यह बात जब यमदग्निजी के [पुत्र]
परशुरामजी ने सुनी, तब क्रोधित हो उन्होंने सहस्रवाहु का संहार किया ।

२ सुरनाथ–एक बार इन्द्र समस्त सभासदों एवं इन्द्राणी के साथ सभा [में]
वैठे थे कि उसी समय सुरगुरु वृहस्पति जी वहां आ पधारे । इन्द्र ने अभि[मान]
के मारे दण्ड-प्रणाम तथा अन्य सत्कारादि कुछ भी नहीं किया । वृहस्पतिजी नार[ाज]
हो अपने घर लौट आये । कुछ देर बाद इन्द्र को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ[।]
वे पश्चात्ताप करते हुए, क्षमा मांगने के लिए गुरुजी को ढूंढ़ने लगे; कि[न्तु]
वे ऐसे अदृश्य हुए कि कहीं मिले ही नहीं । यह खबर पाकर असुरों ने देवताओं [पर]
चढ़ाई कर दी और उनकी सारी लक्ष्मी छीन ली । देवतागण नाना प्रकार से प्र[पी]
ड़ित होने लगे । अन्त में ब्रह्माजी की शरण में गये और उनके कहने से विश्वरू[प]
ऋषि को अपना पुरोहित वनाया । तव कहीं जाकर देवताओं का कल्याण हुआ[।]

३ त्रिशंकु–इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु ने राजमद से उन्मत्त हो, एक सम[य]

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई । निदरे राम जानि असहाई ।।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी । समर सरोष राम मुख पेखी ।।

शव्दार्थ—सरोष=क्रोध-युक्त । पेखी=देखकर । निदरे=निरादर किया ।

अर्थ—हां, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो राम को असहाय जान कर
का अनादर किया । किन्तु आज युद्ध में श्रीरामचन्द्रजी का क्रोधयुक्त मुंह देखकर
बात भी अच्छी तरह उनकी समझ में आ जायगी ।

एतना कहत नीति रस भूला । रन रस बिटप पुलक मिस फूला ।।
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बलु भाषी ।।

शव्दार्थ—पुलक=रोमांच । मिस=वहाने ।

अर्थ—इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीति-रस भूल गये और युद्ध-रस रूपी वृक्ष
माञ्च के वहाने फूल उठा । प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना कर
र उनकी धूलि सिर पर चढ़ा, सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए वोले—

ने कुलगुरु वशिष्ठजी से सदेह स्वर्ग भेज देने के लिये प्रार्थना की । बशिष्ठजी
कहा कि यह कार्य सर्वथा असम्भव है । इसपर त्रिशंकु ने वशिष्ठजी के
ों से जाकर अपनी इच्छा प्रकट की । उन्होंने भी वही उत्तर दिया ।
त में उसने विश्वामित्रजी के पास जाकर अपना मनोरथ कह सुनाया । उस
य विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बनने के लिए तप कर रहे थे । राजा की बातें सुनकर,
। सदेह स्वर्ग भेजने का वचन दे, उन्होंने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया । यज्ञ
ाप्त होने पर विश्वामित्रजी ने अपने कमण्डलु का जल राजा के शरीर पर
ड़क दिया और वह उसी शरीर से इन्द्र के आसन पर जा बैठा । इन्द्र ने उसी
। उसे नीचे ढकेला और नीचे मुंह वह पृथ्वी पर गिरने लगा । किन्तु विश्वामित्र-
ने अपने तपोबल से उसे ऊपर ही स्थिर कर दिया । तभी से वह आजतक
चे मुंह किये लटकता है । उसके मुंह से जो लार टपकती है, वही कर्मनाशा नदी
जो बनारस और बिहार के आरा जिले के बीच बहती है और शास्त्र से उसका
ी छूना वर्ज्जित है । कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि गुरु और गुरु-पत्नी की
ज्ञा न मानने तथा वशिष्ठजी की गाय को कष्ट देने—आदि तीन पापों के कारण
के सिर में तीन सींग हो गये थे, जिससे उसका नाम 'त्रिशंकु'

अनुचित नाथ न मानव मोरा । भरत हमहिं उपचार न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥

शब्दार्थ—उपचार=उपाय, व्यवहार । मन मारे=मन को दवाये, चुप ।

अर्थ—हे नाथ ! आप मेरे कहने को अनुचित नहीं मानियेगा । भरत ने हमारे साथ भी कुछ कम उपाय नहीं किया है—सव कुछ कर डाला है । कहां तक सहा जाये और कव तक रहा जाये, जव स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है ।

दो०--छत्रि जाति रघुकुल जनम राम अनुज जग जान ।
लातहुँ मारे चढ़त सिर नीच को धूरि समान ॥२२९॥

अर्थ—एक तो हमारी जाति क्षत्रिय की, दूसरे रघुवंश में जन्म, तीसरे श्रीरामचन्द्रजी का छोटा भाई यह सारा संसार जानता है । भला धूल के समान नीच कौन है ! वह भी लात मारने पर सिर पर चढ़ जाती है ॥२२९॥

उठि कर जोरि रजायसु मांगा । मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
बांधि जटा सिर कसि कटि भाथा । साजि सरासन सायकु हाथा ॥

शब्दार्थ—सरासन=धनुष । सायक=वाण ।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर आज्ञा मांगी । मानो वीर रस सोते हुए से जग गया हो । सिर पर जटा बांधकर, कमर में तरकस कसा और हाथ में धनुष वाण ठीक कर बोले—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई । सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥

अर्थ—आज मैं श्रीरामचन्द्रजी के सेवक होने का यश लूं और भरत को युद्ध में शिक्षा दे दूं । श्रीरामजी के निरादर का फल पाकर दोनों भाई रण-शय्या पर सोवें !

आइ वना भल सकल समाजू । प्रगट करउं रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि वाजू ॥

शब्दार्थ—रिस=क्रोध । करि=हाथी । निकर=दल, समूह । दलइ=नष्ट करता है, ध्वंस कर डालता है । मृगराजू=सिंह ।

अर्थ—अच्छा है जो सारा समाज ही आ जुटा है । आज मैं पिछला क्रोध (जो

शेष रूप होकर संसार का प्रलय करने में करते हैं) प्रकट करूँगा। सिंह जिस तरह हाथियों के दल को ध्वंस कर डालता है और बाज जैसे बटेर को अपने लपेट में ले लेता है—

तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

शब्दार्थ—निदरि=तिरस्कार करके। निपातउँ=गिरा दूंगा, खेता=रणभूमि।

अर्थ—वैसे ही मैं भरत को सेना और भाई सहित रण-भूमि में निरादर के साथ मार गिराऊँगा। यदि शंकर भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी मैं युद्ध में उन्हें मारूँगा, मुझे राम की दोहाई है।

दो०—अति सरोष माखे लखन लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥२३०॥

शब्दार्थ—माखे=क्रोधित हुए, उठे। प्रवान=सत्य। भभरि=डरकर।

अर्थ—अत्यन्त क्रोध के साथ लक्ष्मणजी को तमतमाया हुआ देखकर और उनकी सत्य सौगन्ध को सुनकर लोक और लोकपाल सभी भयभीत हो डरकर भागना चाहते हैं॥२३०॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥

शब्दार्थ—मगन=डूब जाना। बिपुल=अपार। बखानी=बड़ाई करके।

अर्थ—संसार भय में डूब गया। लक्ष्मणजी के अपार बाहु बल की बड़ाई करती हुई आकाश वाणी हुई—हे तात! तुम्हारे तेज (वीरता) और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जानने वाला है।

अनुचित उचित काजु कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

शब्दार्थ—सहसा=जल्द बाजी, उतावली। बुध=बुद्धिमान।

अर्थ—यह सब लोग कहते हैं कि बुरा या भला जो कुछ भी काम हो, समझ-बूझ कर करने से अच्छा होता है। वेद और बुद्धिमान दोनों ही का कथन है कि ज जल्दबाजी में काम करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान नहीं हैं

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राज मद भाई ॥

अर्थ–देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये । श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी ने आदर के साथ उनका सम्मान किया । श्रीरामचन्द्रजी ने कहा–हे तात ! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही । हे भाई ! राज्य का मद (शराब) सबसे कड़ा होता है ।

जो अँचवत नृप मातहिं तेई । नाहिन साधु सभा जेहि सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

शब्दार्थ–अँचवत=पान करता है । मातहिं=मतवाला हो जाते हैं । सरीसा=समान । बिधि प्रपंच=ब्रह्मा की सृष्टि, संसार । दीसा=देखा ।

अर्थ–किन्तु उस मदिरा का पानकर वे ही राजा मतवाले हो जाते हैं, जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (साधु-संगति) नहीं किया है । हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत के समान उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न कहीं सुना गया है और न देखा गया है ।

दो०--भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥२३१॥

शब्दार्थ--कांजी=एक तरह का खट्टा पदार्थ, मट्ठे या दही का पानी । सीकरनि=बूंदें । छीर (क्षीर)=दूध । बिनसाइ=नष्ट होना ।

अर्थ–ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का पद पाकर भी भरत को कभी राजमद नहीं हो सकता । क्या कभी कांजी की बूंदों से क्षीरसागर नष्ट हो सकता है ?

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी । सहज छमा बरु छाड़इ छोनी ॥

शब्दार्थ–तिमिर=अन्धकार । तरुन (तरुण)=दोपहर का । तरनिहि=सूर्य को । गिलई=निगल जाये । मकु=चाहे, बल्कि । गोपद=पृथ्वी में गाय के खुर से बना गड़हा । घटजोनी=अगस्त्य मुनि । छोनी (क्षोणी)=पृथ्वी ।

अर्थ–अन्धकार दोपहर के सूर्य को भले ही निगल जाये । आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाये । (समुद्र को सोख लेने वाले) अगस्त्यजी गाय के खुर के जल में चाहे डूब जायें । पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा का गुण बल्कि छोड़ दे–

मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमद भरतहिं भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥

अर्थ—और मच्छड़ के फूंक से चाहे सुमेरु पर्वत भले ही उड़ जाये, किन्तु हे भाई ! भरत को कभी राजमद नहीं होगा । हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी और पिताजी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र और सुन्दर भाई कहीं नहीं है ।

सगुन खीरु अवगुन जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरत हंस रबिबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥

शब्दार्थ—षीर (क्षीर)=दूध । परपंच=सृष्टि, संसार । तड़ागा=तालाब ।

अर्थ—हे तात ! विधाता ने गुण सहित दूध और निर्गुण जल को मिलाकर इस सृष्टि की रचना की है । किन्तु भरत ने इस सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस रूप जन्म ग्रहण कर गुण और दोष दोनों को अलग-अलग कर दिया ।

गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सील सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

शब्दार्थ—पय=दूध । उजियारी=उजियाला, प्रकाश । पयोधि=समुद्र ।

अर्थ—गुण रूपी दूध को ग्रहणकर और अवगुण रूपी जल को छोड़कर भरत ने संसार में उजियाला कर दिया । इस प्रकार भरतजी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते हुए श्रीरामचन्द्रजी प्रेम के समुद्र में मग्न हो गये ।

दो०—सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सों प्रभुको कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की वाणी सुनकर और भरत जी पर उनका अपार प्रेम देख कर, सभी देवता उनकी प्रशंसा करने और कहने लगे कि प्रभु श्रीरामचन्द्र के समान कृपा का घर दूसरा कौन है ॥२३२॥

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥

अर्थ—संसार में यदि भरतजी का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर सब धर्मों की धुरी को कौन धारण करता ? कवियों से अगम (जिसका वर्णन करना कवियों की शक्ति के परे है, वैसी) भरतजी के गुणों की कथा, हे रघुनाथजी [illegible] दूसरा कौन जाने ?

लखन राम सिय सुनि सुर बानी । अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहां भरतु सब सहित सहाये । मंदाकिनी पुनीत नहाये ॥

अर्थ—लक्ष्मणजी, श्रीरामजी तथा सीताजी ने देवताओं के वचन सुनकर अत्यन्त सुख पाया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इधर भरतजी ने सब समाज के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी में स्नान किया ।

सरित समीप राखि सब लोगा । मांगि मातु गुरु सचिव नियोगा ॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई । साथ निशादनाथ लघुभाई ॥

अर्थ—फिर सबको नदी के समीप रखकर और माताओं, गुरुजी तथा मंत्री से आज्ञा ले निषादराज गुह तथा छोटे भाई शत्रुघ्न के साथ भरतजी उस स्थान को चले जहां सीताजी और श्रीरामचन्द्रजी थे ।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं । करत कुतरक कोटि मनमाहीं ॥
राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ ॥

शब्दार्थ—अनत=दूसरी जगह । कुतरक (कुतर्क)=बुरे विचार ।

अर्थ—भरतजी अपनी माता के कर्म को समझकर सकुचाते हैं और मन में करोड़ों प्रकार की बुरी भावनाएँ करते हैं । वे सोचते है, कि मेरा नाम सुनकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी उस स्थान को छोड़कर कहीं दूसरी जगह न चले जायें ।

दो०—मातु मते महुँ मानि मोहि जो किछु करहिं सो थोर ।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ—माता के मत को मानकर मुझे जो कुछ भी वे कहें सब थोड़ा है । किन्तु जब वे अपनी तरफ अर्थात् अपने यश और सम्बन्ध की तरफ विचार करेंगे, तब अवश्य मेरे पाप और अवगुण को क्षमाकर आदर करेंगे ॥२३३॥

जौं परिहरहिं मलिन मन जानी । जौं सनमानहिं सेवक मानी ॥
मोरे सरन राम की पनही । राम सुस्वामि दोषु सब जनहीं ॥

शब्दार्थ—पनहीं=जूतियां । जनहीं=दासका ।

अर्थ—चाहे मलिन मन (दुष्ट) जानकर छोड़ दें अथवा सेवक समझकर सम्मान करें । मेरे तो श्रीरामचन्द्रजी की जूतियां ही शरण हैं । श्रीरामजी तो ... स्वामी हैं, दोष तो सब दास का है ।

जग जस भाजन चातक मीना । नेम प्रेम निज निपुन नवीना ।।
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह् सिथिल सब गाता ।।

शब्दार्थ–नेम=नियम, प्रतिज्ञा । नवीना=निराला, गुनत=सोचते ।

अर्थ–संसार में यश के पात्र पपीहे और मछलियां हैं, जो अपने नेम और प्रेम (चातक का नेम और मीन का प्रेम) में अत्यन्त निपुण और निराले हैं । मन में ऐसा सोचते-विचारते भरतजी चले जा रहे हैं और संकोच तथा स्नेह से सारा शरीर शिथिल हो रहा है ।

फेरति मनहिं मातु कृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।।

शब्दार्थ–कृत=की हुई । खोरी=बुराई । धोरी=श्रेष्ठ । उताइल=शीघ्रता से ।

अर्थ–माता की की हुई बुराई तो मानो उन्हें लौटाती है और श्रेष्ठ धैर्य तथा भक्ति का बल भरतजी को आगे बढ़ाता है । जब वे श्रीरामचन्द्रजी के स्वभाव को समझते हैं, तब रास्ते में उनके पैर बड़ी शीघ्रता से पड़ते हैं ।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ।।
देखि भरत कर सोचु सनेहू । भा निषाद तेसि समय बिदेहू ।।

शब्दार्थ–प्रवाह=धारा । अलि=भौंरा । बिदेहू=बिना शरीर का, हृत ज्ञान ।

अर्थ–उस समय भरतजी की दशा कैसी हो रही थी जैसी जल की धारा में जल के भौंरों की होती है । भरतजी का सोच और स्नेह देखकर निषाद गुह को भी उस समय अपने शरीर की सुध बुध भूल गयी ।

दो०--लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु ।
मिटिहि सोच होइहि हरष पुनि परिनाम बिषादु ।।२३४।।

शब्दार्थ–गुनि=सोच-समझकर ।

अर्थ–उसी समय मंगल और शुभ शकुन होने लगे, जिन्हें सुनकर और समझकर निषाद ने कहा कि चिन्ता मिटेगी और आनन्द होगा; किन्तु अन्त में फिर दुःख ही होगा ।।२३४।।

सेवक वचन सत्य सब जाने । आश्रम निकट जाइ नियराने ।।
भरत दीख वन सैल समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ।।

शब्दार्थ–नियराने=(पास) पहुँचे । छुधित=भूखा । सुनाजू=सुन्दर अन्न (भोजन)

अर्थ—भरतजी ने सेवक निषाद की सब बातें सत्य मानीं और वे श्रीरामचन्द्रजी के आश्रम के पास जा पहुँचे। भरतजी ने वहां वन और पर्वतों के समूह को देखा और ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुन्दर भोजन पा गया हो।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होंहि भरत गति तेहि अनुहारी॥

शब्दार्थ—ईति=कृषि विगाड़ने वाले उपद्रव, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियों से हानि, चूहों का उत्पात, चिड़ियों से नाश, दूसरे राजा द्वारा आक्रमण और महामारी ये सातों उपद्रव ईति कहलाते हैं। त्रि-ताप=दैहिक दैविक, भौतिक तीन प्रकार के दुःख। भीति=चोर और अपने राजा का भय भीति है, डर।

अर्थ—ईति के डर तथा तीनों प्रकार के दुःखों और क्रूर ग्रहों से अत्यन्त दुखी प्रजा जैसे किसी सुन्दर राज्य और सुन्दर देश में जाकर सुखी हो जाय, भरतजी की दशा भी उसी प्रकार की हो रही है।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥

शब्दार्थ—भ्राजा=शोभायमान।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के निवास से वन की सम्पति ऐसी शोभायमान है, मानो प्रजा अच्छे राजा को पाकर सुखी हो गयी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है और विवेक उसका राजा और वैराग्य मन्त्री है।

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥

शब्दार्थ—यम=अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम कहलाते हैं। नियम=शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान-नियम के अंग हैं। चाऊ= उत्साह, आनन्द।

अर्थ—यम तथा नियम उस राजा के योद्धा हैं, पर्वत राजधानी, शान्ति तथा सुवुद्धि सुन्दर पवित्र रानियां हैं। इस प्रकार वह उत्तम राजा सब अंगों (प्रकार) से भरा हुआ है और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में आश्रित रहने के कारण उसके चित्त में बड़ा ही उत्साह है।

दो०—जीति मोह महिपाल दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुर सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

शब्दार्थ—दल=सेना । सुकाल=वह समय जब अन्नादि सस्ता हो ।

अर्थ—मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है । उसके देश में सुख, सम्पत्ति और सुकाल है ॥२३५॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना । प्रजा समाज न जाइ बखाना ॥

शब्दार्थ—बास=निवास स्थान, कुटिया । घनेरे=बहुत । खेरे=छोटे गांव, पुरवा ।

अर्थ—वन प्रान्त में मुनियों के अनेक निवास-स्थान हैं, जो मानो पुरों, नगरों, गावों और पुरवों के समूह हैं । अनेक विचित्र पक्षी तथा तरह-तरह के पशु ही मानो प्रजा वर्ग हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता ।

खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष बृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥

शब्दार्थ—खगहा=गैंड़ा । बराहा=सूअर । महिष=भैंसा । वृष=बैल । बयरु=वैर ।

अर्थ—गैंड़ा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसा और बैलों को देखकर राजा का साज सराहनीय हो रहा है । क्योंकि वे सब आपस की शत्रुता छोड़कर एक साथ जहां-तहां घूमते हैं, मानो चतुरंगिणी सेना हो ।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं । मनहु निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥

शब्दार्थ—गाजहिं=गर्जते हैं, चिंघाड़ते हैं । निसान=नगाड़ा ।

अर्थ—झरने झरते हैं, मतवाले हाथी चिंघाड़ते हैं, वही मानो तरह-तरह के नगाड़े बज रहे हैं । चकवा, चकोर, पपीहा, तोता, कोयलों का समूह तथा सुन्दर हंस प्रसन्न मन से मधुर बोली बोल (कूज) रहे हैं ।

अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सब समाजु मुद मंगल मूला

अर्थ—भौंरे गा रहे हैं, मोर नाच रहे हैं; मानो सुन्दर राज्य में चारों ओर मंगल ही हो रहा है । लताएँ, वृक्ष और तृण सभी फल-फूल से संयुक्त सामान आनन्द और मंगल का मूल हो रहा है ।

दो०--राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

शब्दार्थ--सिराने=अन्त होने, समाप्त होने। नेम=नियम।

अर्थ--श्रीरामचन्द्रजी के पर्वत की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी तपस्या का फल पाकर और नियम के समाप्त होने पर सुखी हो जाता है ॥२३६॥

तब केवट ऊंचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥

शब्दार्थ--रसाला=आम।

अर्थ--तब निषाद दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरतजी से कहने लगा--हे नाथ! वह जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के बड़े वृक्ष दिखाई देते हैं--

जिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छांह सुखद सब काला॥

शब्दार्थ--बटु=बड़ का पेड़।

अर्थ--उन वृक्षों के बीच एक सुन्दर बड़ा बड़ का वृक्ष शोभायमान है, जिसे देखकर मन मोहित हो जाता है। उसके पत्ते नीले और फल लाल हैं। उसकी अविचल छाया सव समय सुख देने वाली है।

मानहु तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सकेलि सुषमा सी॥
ए तरु सरित समीप गोसांई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥

शब्दार्थ--अरुन (अरुण)=लालिमा, ललाई। रासी=खजाना। सकेलि=इकट्ठा करके। सुखमा (सुषमा)=सौन्दर्य, शोभा।

अर्थ--मानो ब्रह्मा ने समस्त शोभा को इकट्ठा कर अन्धकार और लालिमा की एक राशि सी रच दी है। हे स्वामी! यह वृक्ष नदी के पास है, जहां श्रीरामचन्द्रजी की पत्ते की कुटिया वनी हुई है।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाये। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये॥
बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई॥

अर्थ--वहां अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर पौधे शोभायमान हैं; जिन्हें कहीं

तो सीताजी ने और कहीं लक्ष्मणजी ने लगाये हैं। वट की छाया के नीचे सीताजी ने अपने कर कमलों से सुन्दर वेदी बनायी है।

दो०—जहां बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥२३७॥

अर्थ—जहां मुनियों के साथ बैठकर सुजान सीताजी तथा श्रीरामचन्द्रजी प्रतिदिन वेद, शास्त्र और पुराणों के कथा-इतिहास को सुनते हैं॥२३७॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥

अर्थ—मित्र गुह निषाद के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरतजी के नेत्रों में आंसू उमड़ आये। दोनों भाई प्रणाम करते चले। उनके प्रेम का वर्णन करते सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं।

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहु पारसु पायेउ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के चरण-चिन्ह देखकर प्रसन्न होते हैं, मानो दरिद्र पारस मणि पा गया हो। चरणों की धूलि सिरपर धारण करते तथा हृदय और आंखों में लगाते और श्रीरामचन्द्रजी के मिलने जैसा सुख पाते हैं।

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरसहिं फूला॥

अर्थ—भरतजी की वह अत्यन्त अकथनीय दशा देखकर, पशु-पक्षी और सभी जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गये। अत्यन्त स्नेह के वश होने से सखा निषाद को भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुन्दर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥

अर्थ—उनकी दशा देख सिद्ध और तपस्वी लोग भी प्रेम से भर गये और भरतजी के स्वाभाविक स्नेह की प्रशंसा करने लगे कि—पृथ्वी पर यदि भरत का भाव (प्रेम) न होता तो इस प्रकार जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?

दो०—प्रेम अमिय मंदर बिरहु, भरत पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥२३८॥

शब्दार्थ—मंदर=मन्दराचल पर्वत । पयोधि=समुद्र ।

अर्थ—कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी ने अपने विरह रूपी मन्दराचल पर्वत से भरत रूपी गम्भीर समुद्र को मथकर, देवताओं और साधुओं के हित के लिये यह प्रेम रूपी अमृत प्रकट किया है ॥२३८॥

सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन । सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥

शब्दार्थ—जोटा=जोड़ी । ओटा=आड़ । सदन=घर ।

अर्थ—मित्र गुह निषाद के साथ उस मनोहर जोड़ी को, घने वन की आड़ के कारण, लक्ष्मणजी नहीं देख सके । भरतजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के पवित्र और सब सुन्दर मंगलों का घर तथा सुहावने आश्रम को देखा ।

करत प्रबेस मिटे दुख दावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥

शब्दार्थ—दावा=जलन, कष्ट । परमारथ=मुक्ति, परमात्मा ।

अर्थ—आश्रम में प्रवेश करते ही समस्त दुःख और जलन मिट गयी, मानो योगी मुक्ति को पा लिया हो । भरतजी ने प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के सामने लक्ष्मणजी को खड़ा देखा; जो प्रभु के पूछे हुए वचनों का बड़े प्रेम से उत्तर दे रहे थे ।

सीस जटा कटि मुनि पट बांधें । तून कसे कर सर धनु कांधें ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥

शब्दार्थ—तून=तरकस । राजत=शोभित होना ।

अर्थ—सिर पर जटा है, कमर में मुनि-वस्त्र (वल्कल) बांधे हुए हैं और उस तरकस कसा है, हाथ में वाण और कन्धे पर धनुष है । वेदी पर मुनि तथा साधु समाज बैठा है और सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी सुशोभित हैं ।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनि वेष कीन्ह रति कामा ।
कर कमलनि धनु सायक फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के वल्कल वस्त्र हैं, सिरपर जटा और सांवला शरीर है, मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो । श्रीरामचन्द्रजी अपने कर कमलों से धनुष-वाण फेर रहे हैं और हँसकर जिसकी ओर देख लेते हैं उसके हृदय की जलन मिट जाती है—वह परमानन्द प्राप्त कर लेता है ।

दो०–लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु ।
ग्यान सभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानन्दु ॥२३९॥

अर्थ–सुन्दर मुनि-मण्डली के बीच श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी इस कार शोभा दे रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में भक्ति और सच्चिदानन्द (भगवान) रीर धारणकर सुशोभित हों ॥२३९॥

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुखगन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ॥

शब्दार्थ–पाहि=रक्षा कीजिए । लकुट=दण्ड, लकड़ी ।

अर्थ–भाई शत्रुघ्न तथा मित्र निषाद के साथ भरतजी का मन प्रेम में मग्न ो गया । हर्ष, शोक, सुख और दुख सभी भूल गये । हे नाथ ! रक्षा कीजिए, स्वामी ! रक्षा कीजिये' कहते हुए वे दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने । करत प्रनाम भरत जिय जाने ॥
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बरजोरा ॥

शब्दार्थ–उत=उधर । बरजोरा=प्रवल, बलवान ।

अर्थ–प्रेम भरे वचनों से लक्ष्मणजी ने पहचान लिया और मन में जान लिया क भरतजी प्रणाम कर रहे हैं । इधर तो भाई का सरस स्नेह और उधर स्वामी ी सेवा का प्रबल खिचाव ।

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ॥

शब्दार्थ–गुदरत=छोड़ते । भनई=कहना । चंग=पतंग, गुड्डी ।

अर्थ–इससे न तो मिलते ही बनता है और न छोड़ते ही बनता है । अच्छे कवि ी लक्ष्मणजी के उस समय के मन की हालत का वर्णन कर सकते हैं । वे सेवा पर ी भार रख कर रह गये, मानो चढ़ी हुई गुड्डी को खिलाड़ी अपनी ओर खींच हा हो ।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

अर्थ–तब लक्ष्मणजी प्रेम पूर्वक पृथ्वी पर सिर झुकाकर बोले–हे रघुनाथ-

जी ! भरतजी आपको प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी प्रेम से अधीर हो उठे। कहीं वस्त्र गिरे, कहीं तरकस और कहीं धनुष वाण गिर गये।

दो०—बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान ॥२४०॥

अर्थ—कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजी ने जबरदस्ती भरतजी को उठाकर हृदय से लगा लिया। भरतजी और श्रीरामचन्द्रजी का मिलन देखकर सब अपने शरीर की सुध बुध भूल गये ॥२४०॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम प्रेम परन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥

अर्थ—उस समय के मिलन का प्रेम कैसे कहा जाय ? वह (प्रेम) तो कवियों के मन, वचन और कर्म से अगम (परे) है। दोनों भाई मन, बुद्धि, चित और अहंकार को भुलाकर श्रेष्ठ प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई ॥
कबिहि अरथ आखर बल सांचा। अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा ॥

अर्थ—कहो, उस सुन्दर प्रेम को कौन प्रकट कर सकता है ? कवि की बुद्धि किस छाया का अनुसरण करे ? कवि को तो केवल अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है। जैसे नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहं न जाइ मनु बिधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भांती। बाज सुराग कि गांडर तांती ॥

शब्दार्थ—गांडर=एक प्रकार की घास। तांती=रेशा, डोरी।

अर्थ—भरतजी और श्रीरामचन्द्रजी का प्रेम अगम है, जहां ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी का भी मन नहीं जा सकता। उसका वर्णन मैं तुच्छ बुद्धि किस तरह क्या करूँ ? गांडर की तांत से सुन्दर राग बज सकता है ?

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

शब्दार्थ—धकधकी=छाती। धरकी=धड़कने लगी। जागे=होश में आये।

अर्थ—भरतजी और श्रीरामजी का मिलाप देखकर देवता डर गये और

उनकी छाती धड़कने लगी। तब सुरगुरु वृहस्पतिजी ने उन्हें समझाया, तब वे (मूर्ख) होश में आये और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

शब्दार्थ—भूरि=बहुत, बड़ा। भाय=भाव, प्रेम।

अर्थ—फिर श्रीरामजी शत्रुघ्न से मिलकर, निषादराज से मिले। (और) लक्ष्मणजी प्रणाम करते हुए बड़े प्रेम से भरतजी से मिले ॥२४१॥

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनन्दे ॥

अर्थ—लक्ष्मणजी बड़े उमंग के साथ छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर निषादराज को हृदय से लगा लिया। इसके बाद मुनियों ने दोनों भाइयों (भरत-शत्रुघ्न) की वन्दना की और मनचाहा आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये। सिर कर कमल परसि बैठाये ॥

अर्थ—छोटे भाई शत्रुघ्न के सहित भरतजी, अत्यन्त उमंग और प्रेम पूर्वक श्रीसीताजी के चरण कमल की धूलि सिरपर धारण कर, बार-बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उन्हें उठा लिया और अपने करकमल से उनका सिर स्पर्श कर उन्हें बैठाया।

सीय असीस दीन्हि मनमाहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता ॥

अर्थ—सीताजी ने उन्हें मन ही मन आशीर्वाद दिया। उस समय वे प्रेम में इतने निमग्न हैं कि शरीर की सुधि नहीं है। सीताजी को सब तरह से प्रसन्न देखकर, भरतजी चिन्ता-रहित हो गये और हृदय से मिथ्या डर जाता रहा।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूंछा ॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥

अर्थ—उस समय न कोई किसी से कुछ कहता है और न कोई कुछ पूछता है। सबका मन प्रेम से परिपूर्ण है, इसलिए वह गति से खाली है अर्थात् उसमें

विचारने की शक्ति नहीं है । उस समय केवट ने धीरज धारणकर, प्रणाम करके हाथ जोड़ प्रार्थना की—

दो०—नाथ साथ मुनि नाथ के मातु सकल पुर लोग ।
सेवक सेनप सचिव सब आये बिकल बियोग ॥२४२॥

अर्थ—हे नाथ ! मुनिनाथ वशिष्ठजी के साथ सब माताएँ, अयोध्यावासी दास, सेनापति और मन्त्री सब के सब आपके वियोग में व्याकुल होकर आये हैं

सील सिंधु सुनि गुर आगवनू । सिय समीप राखे रिपुदवनू ॥
चले सबेग राम तेहि काला । धीर धरम धुर दीनदयाला ॥

अर्थ—शील के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी गुरु का आगमन सुनते ही शत्रुघ्न को सीताजी के पास रख, उसी क्षण शीघ्रता से चल पड़े ।

गुरुहि देखि सानुज अनुरागे । दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥

अर्थ—गुरुजी को देखते ही, लक्ष्मणजी के सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रेम पुलकित हो, दण्ड-प्रणाम करने लगे । वशिष्ठजी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम से उमंगकर दोनों भाइयों से मिले ।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूर तें दंड प्रनामू ॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥

शब्दार्थ—लुठत=लोटते हुए । समेटा=बटोर लिया ।

अर्थ—निषाद ने, प्रेम से पुलकायमान होकर और अपना नाम कहकर, दूर से ही प्रणाम किया । तब ऋषि वशिष्ठजी ने राम मित्र निषाद को जबरदस्ती गले लगा लिया । मानो पृथ्वी पर लोटते हुए प्रेम को लपेट लिया ।

रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहिं सुर बरसहिं फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति सुन्दर मंगल की जड़ है; यह कहकर देवता प्रशंसा करने तथा आकाश से फूल बरसाने लगे। (और कहने लगे कि) इस (निषाद) के समान अत्यन्त नीच कोई नहीं है और संसार में वशिष्ठजी के समान कोई बड़ा नहीं ।

दो०-जेहि लखि लषनहुं ते अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीता पति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ ॥२४३॥

अर्थ-जिसको देखकर मुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मणजी भी अधिक प्रेमभाव से मिले। यह सब श्रीरामचन्द्रजी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।२४३।

आरत लोग राम सब जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाखी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥

अर्थ-दया के धाम, चतुर, भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने सबको दुःखी जाना। इसलिए जो जिस भाव से अभिलाषी था, उन्होंने उसी भांति उसकी रुचि रखी।

सानुज मिलि पल महुं सब काहू। कीन्ह दूर दुख दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं॥

अर्थ-भाई लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी क्षणभर में सबसे मिलकर, सबके कठिन दुःख और ज्वाला को दूर कर दिया। श्रीरामचन्द्रजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे एक ही सूर्य की छाया करोड़ों घड़ों में एक ही बार जा पड़ती है।

मिलि केवटहिं उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी॥

शब्दार्थ-सुबेलि=सुन्दर लता। अवली=समूह।

अर्थ-सभी अयोध्यावासी बड़े उमंग और प्रेम के साथ निषाद से मिलकर, उसके भाग्य की सराहना करने लगे। श्रीरामचन्द्रजी ने माताओं को दुखी देखा। मानो सुन्दर लता समूह को पाला मार गया हो।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

शब्दार्थ-भेई=भिगो दिया, तर कर दिया। खोरी=दोष।

अर्थ-श्रीरामचन्द्रजी सबसे पहले कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव और भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिरकर और सब दोष समय, कर्म और विधाता के सिर मँढ़कर उसे धीरज बंधाया।

दो०-भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइय दोषु॥२४४॥

अर्थ—तब श्रीरामचन्द्रजी सब माताओं से मिले और यह कहकर, कि हे माता ! यह संसार ईश्वर के आधीन है, इसलिए किसी को दोष नहीं देना चाहिए, सबको धीरज बँधाया और सन्तुष्ट किया ॥२४४॥

गुरु तिय पद बंदेहु दोउ भाई । सहित बिप्रतिय जे संग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानी । देंहि असीस मुदित मृदुबानी ॥

अर्थ—फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मण-स्त्रियों के साथ, जो संग में आई हुई थीं, गुरु-पत्नी अरुन्धतीजी के चरणों की वन्दना की। गंगाजी और पार्वतीजी के समान उनका सम्मान किया । वे प्रसन्न हो कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका । जनु भेंटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता । परे प्रेम ब्याकुल सब गाता ॥

अर्थ—फिर दोनों भाई सुमित्रा के चरण पकड़ उनकी छाती से जा लिपटे। मानो बड़े दरिद्र को धन मिल गया हो । फिर वे माता कौशल्या के चरणों में जा गिरे । प्रेम से उनका सारा शरीर व्याकुल है ।

अति अनुराग अंब उर लाये । नयन सनेह सलिल अन्हवाये ॥
तेहि अवसर कर हरष बिषादू । किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥

अर्थ—माताने बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों के प्रेमाश्रु से उन्हें नहलाया । उस समय के हर्ष और विषाद का वर्णन कोई कवि कैसे कर सकता है ? जैसे गूंगा स्वाद को नहीं कह सकता ।

मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ । गुरु सन कहेउ कि धारिय पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू । जल थल तकि तकि उतरे लोगू ॥

शब्दार्थ—धारिय पाऊ=पधारिये, चलिये । नियोगू=आज्ञा ।

अर्थ—भाई सहित श्रीरामचन्द्रजी माता से मिलकर, गुरु से बोले-हे महाराज ! आश्रम पर चलिये । तब मुनिराज की आज्ञा पाकर सभी पुरवासी जल और स्थान का सुभीता देख-देखकर उतर गये ।

दो०—महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिये साथ ।
पावन आस्रम गवनु किय भरत लषन रघुनाथ ॥२४५॥

अर्थ—तब श्रीरामचन्द्रजी भरतजी, लक्ष्मणजी तथा ब्राह्मण, मन्त्री, माताएं और गुरु आदि कुछ चुने हुए मनुष्यों को साथ लिए पवित्र आश्रम की ओर चले।

सीय आइ मुनिबर, पग लागी। उचित असीस लही मनमांगी ॥
गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली प्रेम कहि जाइ न जेता ॥

अर्थ–सीताजी ने आकर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी को प्रणाम किया और मनमांगा चित आशीर्वाद पाया। फिर वे गुरु-पत्नियों और मुनि-पत्नियों के साथ इतने म से मिलीं, जो कहा नहीं जाता।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारीं। मूंदे नैन सहमि सुकुमारीं ॥

अर्थ–सीताजी ने सभी के चरणों में वन्दना करके जी को प्रिय लगने वाले शीर्वाद पाये। फिर जब सभी सासुओं की ओर देखा, तब सुकुमारी सीताजी ने म कर आंखें बन्द कर लीं।

परीं बधिक बस मनहुं मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा ॥

अर्थ–मानो हंसिनी वधिक के वश में पड़ गयी हो। दुष्ट चाल वाले ब्रह्मा ने क्या कर दिया! वे भी सीताजी को देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं। जो कुछ विधाता सहावे, वह सहना ही पड़ता है।

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई ॥

शब्दार्थ–नलिन=कमल। लोयन=लोचन, नेत्र।

अर्थ–तब जानकीजी हृदय में धीरज धारणकर और नील कमल के समान नेत्रों में आंसू भर, जाकर सब सासुओं से मिलीं। उस समय पृथ्वी पर सर्वत्र करुणा छा गयी।

दो०–लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेम बस रहिहहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ–सीताजी सब के पैर लग-लग कर उन्हें बड़े प्रेम से भेंटती हैं। वे लोग उन्हें प्रेमवश आशीर्वाद देती हैं कि तुम्हारा सौभाग्य सदा भरा रहे ॥२४६॥

बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुर ग्यानी ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाया। कहे कछुक परमारथ गाथा ॥

अर्थ–सीताजी तथा सब रानियां स्नेह के वश व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने

उन्हें बैठ जाने को कहा। मुनिनाथ वशिष्ठ जी ने फिर संसार की गति को मायिक अर्थात् माया का और अनित्य बताकर कुछ तत्व की कथाएँ कहीं।

नृप कर सुर पुर गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥
मरन हेतु निज नेह बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥

अर्थ—उसके बाद वशिष्ठ जी ने राजा का स्वर्गवास सुनाया। सुनकर श्रीरामजी को असह्य दुःख हुआ। धैर्य की धुरी को धारण करने वाले श्रीरामजी, राजा की मृत्यु का कारण उनका अपने ऊपर अधिक स्नेह विचारकर, अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लषन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहु राजु अकाजेउ आजू॥

अर्थ—वज्र के समान कड़ी और कड़वी वाणी सुनते ही लक्ष्मणजी, सीताजी तथा सब रानियां विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो उठा। मानो राजा की मृत्यु आज ही हुई है।

मुनिबर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहुं कहे जल काहु न लीन्हा॥

शब्दार्थ—निरंबु=निर्जल।

अर्थ—श्रेष्ठ मुनि ने फिर रामचन्द्रजी को समझाया। तब उन्होंने समाज के साथ सुन्दर नदी मन्दाकिनी में स्नान किया। उस दिन प्रभु श्रीरामजी ने निर्जल व्रत किया। मुनि के कहने पर भी और लोगों ने भी जल ग्रहण नहीं किया।

दो०—भोर भये रघुनंदनहिं जो मुनि आयसु दीन्ह।
स्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह॥२४७॥

अर्थ—सवेरा होनेपर मुनि ने श्रीरामचन्द्रजी को जो-जो आज्ञाएँ दीं उनको प्रभु श्रीरामजी ने श्रद्धा, भक्ति और आदर पूर्वक किया॥२४७॥

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥

शब्दार्थ—अघतूला=पाप रूपी रुई।

अर्थ—वेदों में जैसा कहा गया है, उसके अनुकूल पिता की क्रिया करके, पाप अन्धकार के लिये सूर्य के समान श्रीरामचन्द्रजी पवित्र हुए। जिसका नाम

पाप रूपी रुई के लिये अग्नि के समान है, जिसका स्मरण मात्र समस्त सुन्दर मंगलों की जड़ है—

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भये दुइ वासर बीते। बोले गुरु सन राम पिरीते ॥

शब्दार्थ—अवाहन=मंत्र द्वारा (देवता को) बुलाना।

अर्थ—वे श्रीरामचन्द्रजी शुद्ध हुए। साधुओं की ऐसी राय है कि उनका शुद्ध होना वैसा ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गंगाजी शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध हुए दो दिन वीत गये। तब श्रीरामचन्द्रजी गुरु से प्रेम पूर्वक बोले—

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥

अर्थ—हे नाथ! यहां सब लोग अत्यन्त दुःखी हैं। कन्द, मूल फल और जल ही तो भोजन है। शत्रुघ्न के साथ भरत को, मन्त्रियों तथा सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल युग के समान वीत रहा है।

सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु इहां अमरावति राऊ ॥
वहुत कहेऊं सब कियउं ढिठाई। उचित होइ तस करिय गोसाईं ॥

अर्थ—इसलिए आप सबको लेकर अयोध्या को पधारिये। आप यहां हैं और राजा स्वर्ग में हैं (अयोध्या सूनी है)। मैंने वहुत कुछ कहा, यह मेरी ढिठाई है। अव आप जैसा उचित हो वैसा करें।

दो०—धर्म सेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुं विश्राम ॥२४८॥

अर्थ—वशिष्ठ जी वोले—हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, फिर ऐसा क्यों न कहो? लोग दुःखी हैं, दो दिन तुम्हारा दर्शन पाकर आराम ले लें।

राम वचन सुनि सभय समाजू। जनु जल निधि महं विकल जहाजू ॥
सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहु मारुत अनुकूला ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो उठा था, जैसे समुद्र में तूफान के कारण जहाज व्याकुल हो जायें। किन्तु गुरु की सुन्दर मंगल की जड़ वाणी को सुनकर वैसे प्रसन्न हो उठे जैसे फिर हवा के अनुकूल होने से जहाज।

पावन पय तिहुं काल नहाहीं । जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं ॥
मंगल मूरति लोचन भरि भरि । निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥

अर्थ–जिस पवित्र जल के दर्शन करते ही पापों का समूह नष्ट हो जाता है उसमें वे तीनों समय (सुबह, दोपहर, शाम) स्नान करते हैं और मंगल की मू श्रीरामचन्द्रजी का नेत्र भर दर्शन और उन्हें दण्डवत् करके प्रसन्न होते हैं।

राम सैल बन देखन जाहीं । जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी । त्रिबिध ताप हर त्रिबिध बयारी ॥

अर्थ–वे श्रीरामजी के पर्वत और वन को देखने जाते हैं, जहां सब सुख है सुख है, दुःख कुछ भी नहीं । अमृत के समान जल झरते हैं । तीनों प्रकार की (शीतल मन्द, सुगन्ध) हवा तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) कष्टों को हर लेती है।

बिटप बेल तृन अगनित जाती । फल प्रसून पल्लव बहु भांती ॥
सुन्दर सिला सुखद तरु छाहीं । जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं ॥

अर्थ–अनेक जाति के वृक्ष, लताएँ और घास हैं । बहुत प्रकार के फल, फू और पत्ते हैं । सुन्दर शिलाएँ हैं । वृक्षों की सुख देनेवाली छाया है । वन की शो किससे कही जा सकती है ?

दो०–सरनि सरोरुह जल बिहंग कूजत गुंजत भृंग ।
बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग ॥२४९॥

अर्थ–तालाबों में कमल खिले हैं, जल-पक्षी कूजते और भौंरे गुंजार कर हैं । वन में रंग-बिरंगे पशु पक्षी आपस के शत्रु-भाव को छोड़कर घूम रहे हैं।२४

कोल किरात भिल्ल बनबासी । मधु सुचि सुन्दर स्वाद सुधा सी ॥
भरि भरि परनपुटी रचि रूरी । कंद मूल फल अंकुर जूरी ॥

शब्दार्थ–परनपुटी=पत्ते का दोना । जूरी=समूह ।

अर्थ–वन के रहने वाले कोल, किरात और भील मीठे, पवित्र, सुन्दर औ अमृत के समान स्वादिष्ट कंद, मूल, फल और अंकुरों की जूरी को पत्तों के दो में सुन्दरता के साथ सजाकर–

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा । कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा ॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं । फेरत राम दोहाई देहीं ॥

अर्थ–सबको विनय के साथ प्रणाम करके, उन वस्तुओं के स्वाद, भेद (जाति),

गुण और नाम बताकर, देते हैं। लोग उनके लिये बहुत दाम देते हैं, परन्तु वे लेते नहीं और लौटा देने पर श्रीरामजी की दुहाई देते हैं।

कहहिं सनेह मगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा ॥

अर्थ—वे प्रेम में मग्न होकर कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु पुरुष तो प्रेम पहचान कर सम्मान करते हैं। आपलोग पुण्यात्मा हैं और हम नीच निषाद। श्रीरामजी की कृपा से हमें आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं।

हमहि अगम अति दरस तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा ॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिय जस राजा ॥

शब्दार्थ—देवधुनि=गंगाजी। नेवाजा=कृपा की।

अर्थ—हमें तो आपके दर्शन ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि में गंगाजी की धारा। दयालु श्रीरामजी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसा राजा हो, उसके कुटुम्बियों और प्रजा को भी वैसा ही होना चाहिए।

दो०—यह जियं जानि संकोचु तजि करिय छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु ॥२५०॥

अर्थ—इसलिए अपने हृदय में ऐसा जानकर और संकोच छोड़, हमारे प्रेम को देख कृपा कीजिये और हमें कृतार्थ करने के लिए, ये फल, तृण और अंकुर लीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देब काह हम तुम्हहिं गोसाईं। ईधनु पात किरात मिताई ॥

अर्थ—आप प्यारे पाहुने वन में पधारे हैं। हमारे भाग्य आपकी सेवा योग्य नहीं हैं। हे स्वामी ! हम आपको क्या देंगे ? किरातों की मित्रता तो ईधन और पत्तों की है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई ॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥

शब्दार्थ—घाती=मारने वाले। बासन=बर्तन।

अर्थ—हमारी तो यही बड़ी सेवा है, कि हम आपके वस्त्र और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम जड़ जीव जीवों को मारने वाले, दुष्ट, कुचाल, दुर्बुद्धि और नीच जाति के हैं।

पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटिनहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुं धरमबुद्धि कस काऊ । यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥

अर्थ—पाप करते तो हमारे दिन-रात बीतते हैं । तो भी कमर में (पहनने को) न वस्त्र है और न पेट ही भरते हैं । हममें धर्मबुद्धि कभी कैसे हो ? यह तो श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन का प्रभाव है ।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्हके भाग सराहन लागे ॥

अर्थ—जबसे हमने प्रभु श्रीरामजी के चरण कमल देखे हैं, तब से हमारे कठि दुःख और दोष मिट गये हैं । उनकी बातें सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम से भर गं और उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे ।

छंद—लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं ।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं ॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

अर्थ—सब लोग उनके भाग्य की बड़ाई करने और प्रेम भरे वचन सुनाने लगे उनका बोलना, मिलना और श्रीसीता-रामजी के चरणों में प्रेम (सब लोग देखकर सुखी होते हैं । अयोध्या के स्त्री-पुरुष कोल और भीलों की वाणी सुनक अपने स्नेह की निन्दा करते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंश-शिरोमा श्रीरामचन्द्रजी की ही कृपा है कि (किरात रूपी) लोहा (अयोध्या के नर-नार रूपी) नौका को लेकर तैर गया ।

सो०—बिहरहिं बन चहुं ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब ।
जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

शब्दार्थ—पावस=वर्षा ऋतु ।

अर्थ—सब लोग प्रसन्न होकर प्रतिदिन वन में चारों ओर घूमते-फिरते हैं जैसे वर्षा ऋतु के पहले जल से मोर और मेढ़क मोटे हो जाते हैं ॥२५१॥

पुर जन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेष वनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥

अर्थ—अयोध्या के सभी स्त्री-पुरुष प्रेम में अत्यन्त मग्न हैं । उनके दिन पल

अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥

अर्थ—गुरु की आज्ञा मानकर श्रीरामजी अवश्य लौट चलेंगे। किन्तु फिर गुरुजी भी तो श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा जानकर ही तो कुछ कहेंगे। माता कौशल्याजी के कहने से भी श्रीरामजी लौट सकते हैं; किन्तु श्रीरामचन्द्रजी की माता इसके लिए क्या कभी हठ करेंगी ?

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥

शब्दार्थ—गुरु=भारी। हरगिरि=कैलाश पर्वत।

अर्थ—और मुझ दास की तो बात ही कितनी है ? उस पर मेरा बुरा समय आया है और विधाता विपरीत है। यदि मैं हठ करूँ तो बिलकुल अधर्म होगा; क्योंकि सेवक का धर्म तो कैलाश से भी भारी है।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैन बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहिं सिर नाई। बैठत पठए रिषयं बोलाई॥

शब्दार्थ—सिरानी=बीत गयी।

अर्थ—एक भी उपाय भरतजी के मन में नहीं ठहरी और सोचते-सोचते सारी रात बीत गयी। प्रातः काल स्नानकर, प्रभु श्रीरामजी को सिर नवा, भरतजी बैठते ही थे कि ऋषि वष्शिठजी ने उन्हें बुला भेजा।

दो०—गुरु पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥२५३॥

अर्थ—भरतजी गुरुजी के चरण-कमलों में प्रणामकर, आज्ञा पाकर बैठ गये। फिर ब्राह्मण, महाजन और मन्त्री सभी सभासद आ जुटे॥२५३॥

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धरम धुरीन भानु कुलभानू। राजा राम स्वबस भगवानू॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयानुकूल वचन बोले,—हे चतुर भरतजी तथा सभासद गण ! सुनो, सूर्यवंश के सूर्य राजा रामचन्द्रजी धर्म की धुरी को धारण ।ले स्वतन्त्र भगवान हैं।

अर्थ—वे सत्य प्रतिज्ञ और वेद की मर्यादा के पालक हैं। श्रीरामजी का जन्म संसार के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता की आज्ञानुसार चलने वाले तथा दुष्टों के नाशक और देवताओं के हितैषी हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सन जान जथारथु ॥
बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला ॥

अर्थ—नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ को श्रीरामचन्द्रजी के समान ठीक-ठीक कोई भी नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, दिग्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल—

अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि बिचार जियं देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही कें ॥

अर्थ—शेषजी और राजा आदि जहां तक (ब्रह्मा की सृष्टि) प्रभुता है और योग की सिद्धियां जो वेद और शास्त्रों में कही गयी हैं, अपने हृदय में अच्छी तरह विचारकर देखो, इन सबको श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य है।

दो०—राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ ॥२५४॥

अर्थ—इसलिए श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा और इच्छा रखने में ही हम सबका भला होगा। ऐसा समझकर, तुम सब चतुर लोग मिलकर अब वही करो जैसी सबकी राय हो ॥२५४॥

सब कहुं सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी का राजतिलक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनन्द का मूल यही एक मार्ग है। किन्तु श्रीरामचन्द्र किस प्रकार अयोध्या चलेंगे, सोच-समझ कर कहो, वही उपाय किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥

अर्थ—मुनिवर वशिष्ठजी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ में सनी हुई बात

सबने आदर पूर्वक सुनी। किन्तु किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार-रहित) हो गये। तब भरतजी हाथ जोड़, सिर नवाकर बोले–

भानुबंश भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहं पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता॥

अर्थ–सूर्यवंश में अनेक राजा हो गये हैं, जो एक से एक बढ़कर हुए हैं। सभी के जन्म के कारण माता-पिता हैं और शुभ और अशुभ कर्मों का फल विधाता देता है

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जगु जाना॥
सोइ गोसांईं बिधि गति जेंहि छेंकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

शब्दार्थ–छेकी=रोक दिया।

अर्थ–किन्तु दुःख का नाश कर सभी कल्याण को सजने वाला आपका आशीर्वाद है, यह सारा संसार जानता है। हे स्वामी! आप वही हैं, जिन्होंने ब्रह्मा की गति को भी रोक दिया। आपने जो टेक (निश्चय) टेक दिया उसे कौन टाल सकता है?

दो०–बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुरु उर उमगा अनुरागु॥२५५॥

अर्थ–वही आप अब मुझसे उपाय पूछ रहे हैं। यह सब मेरा दुर्भाग्य है। भरत जी की प्रेममय वाणी सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया॥२५५॥

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुं नाहीं॥
सकुचउं तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥

अर्थ–हे तात! बात सत्य है; किन्तु यह सब श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से ही है। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी से विमुख को स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! एक बात कहते सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाते हुए देखकर आधा छोड़ देते हैं।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अर्थ–अतएव तुम दोनों भाई वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता तथा श्रीरामचन्द्रजी को लौटा दिया जाये। इस सुन्दर वचन को सुनकर दोनों भाई प्रसन्न हो उठे और उनके शरीर आनन्द से परिपूर्ण हो गये।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा । जनु जिय राउ रामु भए राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥

अर्थ–उनके मन प्रसन्न हो गये । शरीर पर तेज विराजने लगा । मानो राजा जी उठे हों और श्रीरामजी राजा हो गये हों । लोगों को लाभ तो अधिक और हानि कम मालूम हुई; किन्तु रानियों को दुःख और सुख समान रहे (दो पुत्र वन में रहेंगे ही) । अतः वे रोने लगीं ।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे । फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू । एहि तें अधिक न मोर सुपासू ॥

अर्थ–भरतजी ने कहा कि मुनिजी के कहने के अनुसार करने से सांसारिक जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा । चौदह वर्ष क्या, मैं जन्म भर वनवास करूँगा । इससे बढ़कर मेरे लिए और कोई सुख नहीं है ।

दो०–अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरवग्य सुजान ।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान ॥२५६॥

अर्थ–सीताजी और श्रीरामजी हृदय की जानने वाले और आप सर्वज्ञ और सुजान हैं । यदि आप सत्य कह रहे हों, तो हे नाथ ! आप अपने वचनों को प्रमाणित (पूरा) कीजिये ॥२५६॥

भरत बचन सुनि देखि सनेहू । सभा सहित मुनि भये बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥

अर्थ–भरतजी के वचनों को सुन और उनके प्रेम को देखकर, समस्त सभा के साथ वशिष्ठजी को भी अपनी देह की सुधि नहीं रही । भरतजी की महान् महिमा समुद्र के समान है, मुनि की वुद्धि अबला स्त्री के समान उसके तट पर खड़ी है ।

गा चह पार जतनु हियं हेरा । पावति नाव न बोहितु बेरा ॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई । सरसी सीपि कि सिंधु समाई ॥

शब्दार्थ–हेरा=ढूंढ़ा । वोहित=जहाज । वेरा=वेड़ा ।

अर्थ–वह पार जाना चाहती है, और इसके लिए मन में उपाय ढूंढ़ रही है । किन्तु नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती । भरतजी की अधिक बड़ाई कोई कैसे करे ? क्या तलैया की सीपी में समुद्र समा सकता है ?

भरत मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥

अर्थ—मुनि बशिष्ठजी के मन में भरतजी बहुत अच्छे लगे। वे समाज के साथ श्रीरामजी के पास आये। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने प्रणामकर सुन्दर आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गये।

बोले मुनिवरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥

अर्थ—तब श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी देश, काल और समय के अनुसार विचार कर वचन बोले—हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार श्रीरामचन्द्रजी! सुनिये—

दो०—सबके उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥२५७॥

अर्थ—आप सबके हृदय में रहते हैं और सबके भले-बुरे भावों को जानते हैं। अयोध्यावासियों, माताओं और भरत का जिसमें हित हो, वही उपाय बतलाइये।

आरत कहहिं बिचारि न का काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥

अर्थ—दुखी लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआड़ी को अपना ही दाव सूझता है। मुनिजी के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा, कि हे नाथ! उपाय तो आपके ही हाथ है।

सबकर हित रुख राउरि राखें। आयसु किये मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुं होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥

अर्थ—आपका रुख रखने में ही सबका हित है। आपकी आज्ञा पालन करने में और आपके सत्य भाषण से सभी प्रसन्न होंगे। सबसे पहले मुझे जो आज्ञा और जो शिक्षा, हो उन्हें मैं सिरपर रखकर करूं।

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भांति घटेहि सेवकाईं॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाषा। भरत सनेह बिचारु न राखा॥

अर्थ—फिर हे स्वामी! आप जिसको जैसा कहेंगे, वह सब तरह से सेवा में

ग जायगा। वशिष्ठजी कहने लगे—हे रामजी ! आपने सत्य कहा; किन्तु भरत जी के स्नेह ने मेरे विचार को नहीं रहने दिया।

तेहि तें कहउं बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचिराखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

अर्थ— इसी से बार-बार कह रहा हूँ, कि मेरी बुद्धि भरतजी की भक्ति के अधीन हो गई है। मेरी समझ में तो भरतजी की रुचि रखकर जो कुछ किया जायगा, सब शुभ होगा। इसके साक्षी शिवजी हैं।

दो०--भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचारु बहोरि।
करब साधु मत लोक मत नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

शब्दार्थ—निगम=वेद। निचोरि=सार निकालकर ।

अर्थ—भरतजी की विनती आदर सहित सुनिये और उसपर विचार कीजिये। फिर साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेद के सार को निकालकर वैसा कीजियेगा।

गुरु अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनन्द बिसेषी ॥
भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥

अर्थ—भरतजी पर गुरुजी का प्रेम देखकर, श्रीरामचन्द्रजी के हृदय में अपार आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरंधर और वचन से अपना दास जानकर—

बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी गुरु की आज्ञा के अनुसार सुन्दर, कोमल और मंगलमय वचन बोले—हे नाथ ! आपकी सौगन्ध और पिताजी के चरणों की दुहाई कर कहता हूँ कि संसार में भरत के समान भाई नहीं हुआ।

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुं बेदहुं बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥

अर्थ—जो गुरु के चरण कमलों के प्रेमी हैं, वे लोक और वेद दोनों में ही अत्यन्त भाग्यवान हैं। जिसपर आप (गुरु) का ऐसा प्रेम है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है ?

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
भरतु कहहिं सोइ किएं भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई ॥

अर्थ—छोटे भाई भरत को देखकर, उनके मुंह पर उनकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। इसलिए भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो रहे।

दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब संकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात ॥२५९॥

अर्थ—तब बशिष्ठजी भरतजी से बोले—हे तात! सब संकोच छोड़कर, कृपा के सिन्धु प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो ॥२५९॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू॥

शब्दार्थ—साहिब=स्वामी, श्रीरामचन्द्रजी। छरु भारु=काम की जिम्मेदारी

अर्थ—बशिष्ठजी के वचन सुन और श्रीरामचन्द्रजी की मर्जी पाकर, गुरु और स्वामी को अपने पर अत्यन्त प्रसन्न जान तथा सारी जिम्मेदारी को अपने ही सिर देखकर, भरतजी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे।

पुलकि शरीर सभा भये ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥

अर्थ—पुलकित शरीर हो, भरतजी सभा में खड़े हुए। उनके कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आये। (उन्होंने कहा कि) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निबाह दिया। अब इससे और अधिक मैं क्या कहूँ ?

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मोपर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूं देखी॥

अर्थ—अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझपर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनका क्रोध नहीं देखा।

सिसुपन तें परिहरेउं संगू। कबहूं न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियं जोही। हारेउ खेल जितावहिं मोहीं॥

अर्थ—बचपन से ही मैंने आपका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने कभी मेरा मन नहीं तोड़ा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति अपने हृदय में अच्छी तरह देख ली है। खेल में हारने पर भी मुझे ही जिता देते थे।

दो०—महूं सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन ।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पियासे नैन ॥२६०॥

अर्थ—मैंने भी स्नेह और संकोच वश आपके सामने कभी मुंह नहीं खोला। प्रेम-प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए ॥२६०॥

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीचु जननी मिस पारा ॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा । अपनी समुझि साधु सुचि को भा ॥

शब्दार्थ—बीच=भेद, अन्तर । पारा=डाल दिया ।

अर्थ—ब्रह्मा भी मेरे दुलार को सह न सका । उस नीच ने माता के बहाने भेद डाल दिया । यह कहना भी मुझे आज शोभा नहीं देता । अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है ?

मातु मंदि मैं साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली ॥

शब्दार्थ—कोदव=एक प्रकार का अन्न । प्रसव=उत्पन्न करना । संबुक=घोंघी ।

अर्थ—माता नीच है और मैं सच्चरित्र और साधु हूँ, ऐसा मन में लाना भी करोड़ों दुराचारों के समान है । क्या कोदों की बाली सुन्दर धान फल सकती है ? क्या तलैया की घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है ?

सपनेहुं दोष कलेस न काहू । मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिन समुझे निज अघ परिपाकू । जारिउं जाय जननि कहि काकू ॥

शब्दार्थ—अवगाहू=अथाह । परिपाकू=फल, परिणाम । जारिउँ=जलाया । काकू=व्यंग, कुवचन । जाय=व्यर्थ ।

अर्थ—स्वप्न में भी किसी का दोष या क्लेश नहीं है । मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है । अपने पापों का फल बिना समझे, मैंने व्यर्थ ही माता को दुर्वचन कहकर जलाया ।

हृदय हेरि हारेउं सब ओरा । एकहि भांति भलेंहि भल मोरा ॥
गुरु गोसांइ साहिब सियरामू । लागत मोहि नीक परिनामू ॥

अर्थ—मैं अपने हृदय में सब ओर खोजकर हार गया । केवल एक ही प्रकार है, जिससे भले ही मेरी भलाई हो जाये । (सब प्रकार समर्थ) आप गुरु हैं और स्वामी श्री सीता-रामजी हैं । इससे परिणाम मुझे अच्छा मालूम होता है ।

दो०—साधु सभा गुरु प्रभु निकट कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१॥

अर्थ—साधुओं की सभा, गुरु और स्वामी के समीप, इस पवित्र स्थान में मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। यह प्रेम है या ढोंग अथवा झूठ है या सत्य, यह सब वशिष्ठ जी और श्रीरामचन्द्रजी जानते हैं ॥२६१॥

भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥
देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥

अर्थ—प्रेम के प्रण को रखकर महाराज का मरना और मेरी माता की दुर्बुद्धि, इन दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जाती और अयोध्यापुरी के स्त्री-पुरुष कठिन दुःसह ज्वाला (कष्ट) से जल रहे हैं।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउं सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥

अर्थ—इन सारे अनर्थों की जड़ मैं ही हूँ। यह सुनकर और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। यह सुनकर, कि श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीताजी के साथ, मुनि का वेश बनाकर वन को गये —

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पायें। संकरु साखि रहेउं एहि घायें॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू॥

शब्दार्थ—पानहिन्ह=जूते। घायें=चोट, घाव। बेहू=छेद।

अर्थ—और विना जूते के पैदल ही। इस चोट से भी मैं जीता रहा, इसके शंकर जी साक्षी हैं। फिर निषाद का प्रेम देखकर, इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (फटा नहीं)।

अब सब आंखिन्ह देखेउं आई। जियत जीव जड़ सबइ सहाई॥
जिन्हहिं निरखि मग सांपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी॥

शब्दार्थ—तामस=क्रोध। तीछी=तीक्ष्ण, भयानक।

अर्थ—अब यहां आकर सब आंखों देख लिया। यह जड़ प्रांण जीता रहकर सब सहायेगा। जिनको देखकर रास्ते की सांपिनी और बीछी अपने भयानक और क्रोध को छोड़ देती हैं —

दो०–तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ–वे ही श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजी जिसको शत्रु जान पड़े, उसके पुत्र को छोड़ दैव और किसे असह्य दुःख सहावेगा ? ॥२६२॥

सुनि अति विकल भरत बर बानी। आरति प्रीति विनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभां खभारू। मनहुं कमल बन परेउ तुषारू ॥

शब्दार्थ–खभारू=दुःख, विषाद ।

अर्थ–अत्यन्त व्याकुल भरतजी की दुःख , प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई वाणी को सुनकर सब लोग शोक मग्न हो गये और सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन में पाला पड़ गया हो ।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥

अर्थ–तब ज्ञानी मुनि बशिष्ठजी ने अनेक प्रकार की प्राचीन (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजी को धैर्य दिया। फिर सूर्यवंश रूपी कुमुद वन के लिए चन्द्रमा के समान श्रीरामचन्द्रजी उचित वचन बोले–

तात जायं जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी ॥
तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे। पुन्यसलोक तात तर तोरे ॥

शब्दार्थ–पुन्यसलोक (पुण्यश्लोक)=पुण्यात्मा । तर=नीचे, तले ।

अर्थ–हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वराधीन समझो। मेरी राय में तो तीनों कालों और तीनों लोकों के सभी धर्मात्मा तुम्हारे नीचे हैं ।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई ॥
दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई ॥

अर्थ–हृदय में भी तुम्हारे सम्बन्ध में जो कुटिलता लायेगा उसके लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जायेंगे। वे ही मूर्ख (तुम्हारी) माता को दोष देंगे, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है ।

दो०–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोकु सुजसु परलोक सुख सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ—हे भरत ! तुम्हारा ! नाम स्मरण करते ही समस्त पाप और प्रपंच और सभी अशुभ-समूह नष्ट हो जायँगे तथा लोक में सुन्दर यश और परलोक में सुख मिलेगा ॥२६३॥

कहउं सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाये । बैर प्रेमु नहिं दुरइ दुराए ॥

अर्थ—हे भरत ! शंकरजी साक्षी हैं, मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ—य पृथ्वी तुम्हारे ही रखने से रही हुई है । हे तात ! अपने मन में व्यर्थ ही कुतर्क म करो । वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते ।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पशु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ॥

अर्थ—मुनियों के पास पशु-पक्षी जाते हैं और वे ही हिंसा करने वाले वधि को देखकर भाग जाते हैं । मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी जानते हैं। फिर मनु का शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार है ।

तात तुम्हहि मैं जानउं नीके । करउं काह असमंजस जीकें ॥
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ॥

अर्थ—हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ । क्या करूँ ? जी में ब असमंजस है । राजा ने मुझे छोड़कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए श छोड़ा ।

तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू ॥
तापर गुरु मोंहि आयसु दीन्हा । अवसु जो कहहु चहउं सोइ कीन्हां ॥

अर्थ—उनके वचन को टालते मन में सोच हो रहा है और उससे भी अ तुम्हारा संकोच है । उसपर भी गुरुजी ने भी मुझे आज्ञा दी है । अतः जो तुम क वही मैं अवश्य करना चाहता हूँ ।

दो०—मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहउ करउं सोइ आजु ।
सत्यसंघ रघुवर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥२६४॥

अर्थ—संकोच छोड़कर प्रसन्न मन से तुम जो कहो वही मैं आज करूँ । श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया ॥२६४॥

सुर गन सहित सभय सुरराजू । सोचहिं चाहत होन अकाजू ॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं । राम सरन सब गे मन माहीं ॥

अर्थ—उधर इन्द्र देवताओं के सहित भयभीत हो सोचने लगे कि अब काम बिगड़ना चाहता है । कोई उपाय करते नहीं बनता । तब वे मन-ही-मन श्रीरामचन्द्रजी के शरण में गये ।

बहुरि बिचारि परस्पर करहीं । रघुपति भगत भगति बस अहहीं ॥
सुधि करि अंबरीष दुरवासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥

अर्थ—फिर विचारकर आपस में कहने लगे—श्रीरामचन्द्रजी तो भक्तों की भक्ति के वश हैं । अंबरीष और दुर्वासा की घटना स्मरण कर देवता और इन्द्र बिल्कुल निराश हो गये ।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा । नरहरि किये प्रगट प्रहलादा ॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुर काज भरत के हाथा ॥

अर्थ—देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे; तब प्रहलाद ने नृसिंह भगवान् को प्रकट किया । सब देवता एक दूसरे के कान लग-लग कर और सिर धुनकर कहने लगे कि देवताओं का काम अब भरतजी के ही हाथ है ।

आन उपाउ न देखिअ देवा । मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं । निज गुन सील राम बस करतहि ॥

अर्थ—हे देवताओ ! अब और कोई उपाय दिखाई नहीं देती । श्रीरामचन्द्रजी उत्तम सेवक की सेवा मानते हैं (प्रसन्न रहते हैं) । इसलिए अपने गुण और शील से श्रीरामजी को वश में करने वाले भरतजी का ही सब लोग प्रेम पूर्वक हृदय में स्मरण करो ।

दो०—सुनि सुरमत सुर गुरु कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु ।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थ— देवताओं के विचार सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा—यह अच्छा है । तुम्हारे भाग्य बड़े हैं । भरतजी के चरणों में प्रेम ही संसार में समस्त सुमंगलों का मूल है ॥२६५॥

सीता पति सेवक सेवकाई । काम धेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई । तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥

अर्थ—सीतापति श्री रामचन्द्रजी के दास की दासता सैकड़ों कामधेनु के समान सुन्दर है। जब तुम्हारे मन में भरतजी की भक्ति आ गयी, तब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभाय बिबस रघुराऊ॥
मन थिर कर देव डर नाहीं। भरतहिं जानि राम परिछाहीं॥

अर्थ—हे इन्द्र! भरतजी के प्रभाव को देखो। श्री रामचन्द्रजी सहज ही स्वाभाविक रूप से उनके वश हो रहे हैं। हे देवताओ! अब डर नहीं है। भरतजी को श्रीरामजीकी परछाईं जानकर मन स्थिर करो।

सुनि सुरगुरु सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं संकोचू॥
निज सिर भारु भरत जियं जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥

अर्थ—देवगुरु और देवताओं के सम्मत और सोच की बात सुनकर, अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको संकोच हुआ। (इधर) भरतजी अपने मन में सारा भार अपने ही सिर जानकर, हृदय में करोड़ों प्रकार के अनुमान करने लगे।

करि बिचारु मन दीन्हीं ठीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥

अर्थ—सोच विचारकर भरतजी ने मन में यही निश्चय किया, कि श्रीरामजी की आज्ञा मानने में ही अपना कल्याण है। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी ने अपना प्रण छोड़ मेरे प्रण को रखा। उनकी यह कृपा और स्नेह कम नहीं है।

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥२६६॥

अर्थ—सीतापति श्रीरामजी ने मुझपर सब तरह से अपार कृपा की है। तब कमल के समान दोनों हाथ जोड़ और प्रणाम कर भरतजी बोलें—॥२६६॥

कहउं कहावउं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला॥

अर्थ—हे स्वामी! अब मैं अधिक क्या कहूँ और क्या कहलाऊँ। आप कृपा के समुद्र और हृदय की बात जाननेवाले हैं। गुरुजी को प्रसन्न और स्वामी को ...ल जानकर, मेरे कुटिल मन की कल्पित पीड़ा मिट गयी।

अपडर डरेउं न सोच समूलें। रबिहि न दोषु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥

शब्दार्थ—अपडर=शंका, सन्देह, झूठा डर।

अर्थ—मैं झूठे डर से डर गया था। मेरा सोच निर्मूल था। हे देव ! दिशा भूल जाने पर सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की चाल और काल की कठोरता—

पांउ रोपि सव मिलि मोहिं घाला। प्रनतपाल प्रन आपन पाला ॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुं बेद बिदित नहिं गोई ॥

शब्दार्थ—पाउँरोपि=दृढ़ता पूर्वक। घाला=नष्ट किया।

अर्थ—इन सबने पावँ रोपकर (दृढ़ होकर) मुझे नष्टकर दिया था। किन्तु हे शरण में आये हुओं का पालन करने वाले ! आपने अपने प्रण का पालन किया। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेद दोनों में प्रकट है, छिपी नहीं है।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई ॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥

अर्थ—हे स्वामी ! संसार बुरा है, भले तो एक आप ही हैं। फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है ? हे देव ! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है। वह कभी किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल।

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु छांह समनि सब सोच।
मांगत अभिमत पाव जनग राउ रंकु भल पोच, ॥२६७॥

शब्दार्थ—समनि=नाश करनेवाला।

अर्थ—उस वृक्ष को पहचानकर यदि कोई उसके पास जाय, तो उसकी छाया सब सोच को नष्ट करनेवाली है। राजा रंक, भले-बुरे, सारा संसार ही उससे मांगने पर मनचाही वस्तु पा जाता है ॥२६७॥

लखि सब बिधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई ॥

अर्थ—गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर, मेरा दुःख मिट गया

और मन में कोई सन्देह नहीं रहा । हे दया की खान ! अब आप वही कीजिये जिससे दास का हित हो और आपको कोई क्षोभ न हो ।

जो सेवकु साहिबहि संकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥

अर्थ—जो सेवक स्वामी को संकोच में डाल अपना भला कराना चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है । दास का भला तो सब सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा करने में ही है ।

स्वारथ् नाथ फिरें सबही का । किये रजाइ कोट बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू । सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥

अर्थ—हे नाथ ! आपके लौट चलने में सभी का स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा का पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है । स्वार्थ और परमार्थ का यही सार है और यही सब पुण्यों का फल और शुभ गति का श्रृगांर है ।

देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ॥
तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना ॥

अर्थ—हे देव ! आप मेरी एक प्रार्थना सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा करें । राजतिलक का सब सामान सजाकर लाया गया है । हे प्रभु ! यदि आपके मन को अच्छा लगे, तो उसे सफल कीजिये ।

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहिं सनाथ ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ ॥२६८॥

अर्थ—भाई शत्रुन्घ के साथ मुझे वन भेजिये और सब को सुखी कीजिये । नहीं तो दोनों भाई शत्रुन्घ और लक्ष्मण को लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूं ।

नतरु जाहिं बन तिनिउ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना सागर कीजिअ सोई ॥

अर्थ—अथवा हम तीनों भाई वन जायें और हे रघुनाथजी ! आप सीताजी सहित अयोध्या लौट जाइये । हे करुणासागर प्रभु ! जिस तरह से आपका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये ।

देव दीन्ह सबु मोहिं अभारू । मोरें नीति न धरम बिचारू ॥
कहउं बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ॥

अर्थ—हे देव ! आपने सारा भार मेरे सिरपर दे दिया और मुझे न नीति और र धर्म का ज्ञान है । मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ । दुखी मनुष्य के चित्त में तो ज्ञान रहता नहीं ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू । स्वामि सनेह सराहत साधू ॥

अर्थ—स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी शर्माती है । मैं तो अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ और हे स्वामी ! आप स्नेह वश मुझे साधु कहकर सराहते हैं ।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥

अर्थ—हे कृपालु ! अब तो मुझे वही विचार अच्छा लगता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे । प्रभु के चरणों की शपथ करके सच्चे भाव से कहता हूँ, कि जगत् के कल्याण के लिए एक यही उपाय है ।

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुचि तजि जो जेहि आयसु देव ।
सो सिर धरि धरि करिहि सब मिटिहि अनट अवरेव ॥२६९॥

शब्दार्थ—अनट=अनाचार, उपद्रव । अवरेव=उलझन, झगड़ा ।

अर्थ—संकोच छोड़कर, प्रसन्न मन से प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, वह उसे सिरपर रखकर करेगा और साते उपद्रव और उलझनें मिट जायंगी ॥२६९॥

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध निवासी । प्रमुदित मन तापस बनबासी ॥

शब्दार्थ—सुचि=पवित्र, श्रेष्ठ । साधु=धन्य ।

अर्थ—भरतजी के श्रेष्ठ वचन सुनकर देवता प्रसन्न हुए और धन्य-धन्य कहते हुए प्रशंसा करने और फूल बरसाने लगे । अयोध्या के रहने वाले दुविधा में पड़ गये और वनवासी तपस्वी लोग मन में परम प्रसन्न हुए ।

चुपहि रहे रघुनाथ संकोची । प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥

अर्थ—संकोची श्रीरामचन्द्रजी चुप ही रहे । प्रभु की यह हालत देख सारी

और मन में कोई सन्देह नहीं रहा। हे दया की खान! अब आप वही कीजिये जिससे दास का हित हो और आपको कोई क्षोभ न हो।

जो सेवकु साहिबहि संकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

अर्थ—जो सेवक स्वामी को संकोच में डाल अपना भला कराना चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। दास का भला तो सब सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा करने में ही है।

स्वारथ नाथ फिरें सबही का। किये रजाइ कोट बिधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥

अर्थ—हे नाथ! आपके लौट चलने में सभी का स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा का पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। स्वार्थ और परमार्थ का यह सार है और यही सब पुण्यों का फल और शुभ गति का श्रृंगार है।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

अर्थ—हे देव! आप मेरी एक प्रार्थना सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा करें। राजतिलक का सब सामान सजाकर लाया गया है। हे प्रभु! यदि आपके मन को अच्छा लगे, तो उसे सफल कीजिये।

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥२६८॥

अर्थ—भाई शत्रुन्घ के साथ मुझे वन भेजिये और सब को सुखी कीजिये। या तो दोनों भाई शत्रुन्घ और लक्ष्मण को लौटा दीजिये और मैं आपके साथ च[illegible]

नतरु जाहिं बन तिनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

अर्थ—अथवा हम तीनों भाई वन जायें और हे रघुनाथजी! आप सीता सहित अयोध्या लौट जाइये। हे करुणासागर प्रभु! जिस तरह से आपका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये।

दीन्ह सबु मोहिं अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू।
बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥

अर्थ—हे देव ! आपने सारा भार मेरे सिरपर दे दिया और मुझे न नीति और धर्म का ज्ञान है । मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ । दुखी मनुष्य के चित्त में तो ज्ञान रहता नहीं ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ॥
अस मैं अवगुन उदधि अगाधू । स्वामि सनेह सराहत साधू ॥

अर्थ—स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी शर्माती है । मैं तो अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ और हे स्वामी ! आप स्नेह वश मुझे साधु कहकर सराहते हैं ।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाहि न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ । जग मंगल हित एक उपाऊ ॥

अर्थ—हे कृपालु ! अब तो मुझे वही विचार अच्छा लगता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे । प्रभु के चरणों की शपथ करके सच्चे भाव से कहता हूँ, कि जगत् के कल्याण के लिए एक यही उपाय है ।

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुचि तजि जो जेहि आयसु देव ।
सो सिर धरि धरि करिहि सब मिटिहि अनट अवरेब ॥२६९॥

शब्दार्थ—अनट=अनाचार, उपद्रव । अवरेब=उलझन, झगड़ा ।

अर्थ—संकोच छोड़कर, प्रसन्न मन से प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, वह उसे सिरपर रखकर करेगा और साते उपद्रव और उलझनें मिट जायंगी ॥२६९॥

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध निवासी । प्रमुदित मन तापस बनवासी ॥

शब्दार्थ—सुचि=पवित्र, श्रेष्ठ । साधु=धन्य ।

अर्थ—भरतजी के श्रेष्ठ वचन सुनकर देवता प्रसन्न हुए और धन्य-धन्य कहते हुए प्रशंसा करने और फूल बरसाने लगे । अयोध्या के रहने वाले दुविधा में पड़ गये और वनवासी तपस्वी लोग मन में परम प्रसन्न हुए ।

चुपहि रहे रघुनाथ संकोची । प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥

अर्थ—संकोची श्रीरामचन्द्रजी चुप ही रहे । प्रभु की यह हालत देख सारी

दुघरी साधि चले तत्काला। किय बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥

अर्थ—वे दुघड़िया मूहूर्त साधकर उसी समय चल दिये। राजा ने रास्ते में कहीं भी विश्राम नहीं किया। आज ही सवेरे प्रयाग में स्नानकर चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी के पार उतरने लगे—

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा॥
साथ किरात छसातक दीन्हें। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हें॥

अर्थ—तब हे नाथ! महाराज जनकजी ने आप लोगों की खबर लेने के लिए हमें भेजा। ऐसा कहकर उन्होंने पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिवर बशिष्ठजी ने कोई छ-सात भीलों को साथ में देकर, दूतों को उसी क्षण विदा किया।

दो०—सुनत जनक आगवनु सब हरषेउ अवध समाजु।
रघुनन्दनहिं संकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥२७२॥

अर्थ—जनकजी का आना सुनते ही सभी अयोध्यावासी प्रसन्न हो उठे। श्रीरामचन्द्रजी को संकोच हुआ और इन्द्र बहुत बड़े सोच से व्याकुल हो उठे।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

अर्थ—कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। वह किससे कहे और किसको दोष दे। और सब स्त्री-पुरुष मन में यह सोचकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन और रहना होगा।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥

अर्थ—इस प्रकार वह दिन बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग स्नान करने लगे। स्नान करके सब स्त्री-पुरुष गणेशजी, पार्वतीजी, शंकरजी और सूर्य की पूजा करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥

शब्दार्थ—रमारमन (रमा-लक्ष्मी, रमन=पति) लक्ष्मी-पति, विष्णु।

अर्थ—फिर लक्ष्मीपति श्रीविष्णुजी के चरणों की वन्दनाकर, हाथ जोड़

और आंचल पसारकर प्रार्थना करते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी राजा हों, जानकीजी रानी और राजधानी अयोध्या आनन्द की सीमा होकर—

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा । भरतहि रामु करहुँ जुबराजा ॥
एहि सुख सुधां सींचि सब काहू । देव देहु जग जीवन लाहू ॥

अर्थ—फिर समाज के साथ सुन्दर तरह से बस जाय और श्रीरामजी भरतजी को युवराज बनावें । हे देव ! इस सुख रूपी अमृत मे सींचकर सब किसी को मंसार में जीने का लाभ दीजिए ।

दो०—गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ ।
अछत राम राजा अवध मरिअ मांग सबु कोउ ॥२७३॥

अर्थ—गुरु, समाज और भाइयों के साथ अयोध्या में श्रीरामचन्द्रजी का राज्य हो और श्रीरामचन्द्रजी के राजा रहते ही हमलोग अयोध्या में मरें । यही सब लोग मांगते हैं ॥२७३॥

सुनि सनेहमय पुरजन बानी । निदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन । रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥

अर्थ—अयोध्यावासियों की इस प्रकार स्नेहभरी बातें सुनकर, ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं । अयोध्या के लोग इस प्रकार नित्यकर्म करके फिर प्रसन्न मन से श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करते हैं ।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी । लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥
सावधान सबही सनमानहिं । सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥

अर्थ—ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन पाते हैं । श्रीरामजी सावधानी के साथ सबको आदर देते हैं और सभी कृपानिधान श्रीरामजी की बड़ाई करते हैं ।

लरिकाइहि तें रघुबर बानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील संकोचु सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥

शब्दार्थ—बानी=बान, स्वभाव, आदत ।

अर्थ—लड़कपन से ही रामचन्द्रजी का यह स्वभाव है कि वे प्रेम को पहचान कर नीति का पालन करते हैं । श्रीरामचन्द्रजी शील और संकोच के समुद्र हैं ।

दुघरी साधि चले ततकाला। किय बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥

अर्थ—वे दुघड़िया मूहूर्त्त साधकर उसी समय चल दिये। राजा ने रास्ते में कहीं भी विश्राम नहीं किया। आज ही सवेरे प्रयाग में स्नानकर चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी के पार उतरने लगे—

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायउ माथा ॥
साथ किरात छसातक दीन्हें। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हें ॥

अर्थ—तब हे नाथ ! महाराज जनकजी ने आप लोगों की खबर लेने के लिए हमें भेजा। ऐसा कहकर उन्होंने पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिवर वशिष्ठजी ने कोई छ-सात भीलों को साथ में देकर, दूतों को उसी क्षण विदा किया।

दो०—सुनत जनक आगवनु सब हरषेउ अवध समाजु।
रघुनन्दनहिं संकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ—जनकजी का आना सुनते ही सभी अयोध्यावासी प्रसन्न हो उठे। श्रीरामचन्द्रजी को संकोच हुआ और इन्द्र बहुत बड़े सोच से व्याकुल हो उठे।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नरनारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥

अर्थ—कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। वह किससे कहे और किसको दोष दे। और सब स्त्री-पुरुष मन में यह सोचकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन और रहना होगा।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी ॥

अर्थ—इस प्रकार वह दिन वीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग स्नान करने लगे। स्नान करके सब स्त्री-पुरुष गणेशजी, पार्वतीजी, शंकरजी और सूर्य की पूजा करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। विनवहिं अंजुलि अंचल जोरी ॥
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी ॥

शब्दार्थ—रमारमन (रमा=लक्ष्मी, रमन=पति) लक्ष्मी-पति, विष्णु।

अर्थ—फिर लक्ष्मीपति श्रीविष्णुजी के चरणों की वन्दनाकर, हाथ जोड़

और आंचल पसारकर प्रार्थना करते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी राजा हों, जानकीजी रानी और राजधानी अयोध्या आनन्द की सीमा होकर–

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहिं रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधां सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥

अर्थ–फिर समाज के साथ सुन्दर तरह से बस जाय और श्रीरामजी भरतजी को युवराज बनावें। हे देव! इस सुख रूपी अमृत मे सींचकर सब किसी को संसार में जीने का लाभ दीजिए।

दो०–गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ मांग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ–गुरु, समाज और भाइयों के साथ अयोध्या में श्रीरामचन्द्रजी का राज्य हो और श्रीरामचन्द्रजी के राजा रहते ही हमलोग अयोध्या में मरें। यही सब लोग मांगते हैं॥२७३॥

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥
एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥

अर्थ–अयोध्यावासियों की इस प्रकार स्नेहभरी बातें सुनकर, ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। अयोध्या के लोग इस प्रकार नित्यकर्म करके फिर प्रसन्न मन से श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥
सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥

अर्थ–ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन पाते हैं। श्रीरामजी सावधानी के साथ सबको आदर देते हैं और सभी कृपानिधान श्रीरामजी की बड़ाई करते हैं।

लरिकाइहिं तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥
सील संकोचु सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥

शब्दार्थ–बानी=बान, स्वभाव, आदत।

अर्थ–लड़कपन से ही रामचन्द्रजी का यह स्वभाव है कि वे प्रेम को पहचान कर नीति का पालन करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी शील और संकोच के समुद्र हैं।

वे सुन्दर मुखवाले अर्थात् सबके अनुकूल रहनेवाले, सुन्दर नेत्रवाले अर्थात् सब पर कृपा दृष्टि रखनेवाले और सरल स्वभाव के हैं।

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥

अर्थ—श्रीरामजी के गुणसमूह कहते-कहते सभी प्रेम में मग्न हो गये और अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे, कि हमारे समान संसार में पुण्यवान बहुत कम हैं, जिन्हें श्रीरामचन्द्रजी अपना करके जानते हैं।

दो०—प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥२७४॥

शब्दार्थ—संभ्रम=उतावली से, झटपट।

अर्थ—उस समय जनकजी का आगमन सुनकर सभी लोग प्रेम में मग्न हो गये। सूर्यवंशरूपी कमल के सूर्य श्रीरामचन्द्रजी सभासहित झटपट उठ खड़े हुए।२७४।

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥

अर्थ—भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियों के साथ श्रीरामचन्द्रजी आगे आगे चले। जनकजी ने ज्योंही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्योंही प्रणाम करके रथ छोड़ दिया।

राम दरस लालसा उछाहू। पथ स्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहं जहं रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन की प्रबल इच्छा और उत्साह से, किसी को भी रास्ते की थकावट और क्लेश नहीं है। उनका मन तो वहां है, जहां श्रीराम और जानकीजी हैं। बिना मन के शरीर के सुख-दुःख की खबर किसको हो?

आवत जनकु चले एहि भांती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥

अर्थ—जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज (दल) के साथ उनकी बुद्धि मतवाली हो रही है। पास आये देखकर दोनों समाज प्रेम में भर उठा और वे आपस में एक दूसरे से मिलने लगे।

लगे जनक मुनि जन पद बंदन । रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन ।।
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहिं । चले लेवाइ समेत समाजहि ।।

अर्थ–जनकजी वशिष्ठ आदि मुनियों के चरणों की वन्दना करने लगे और श्रीरामचन्द्रजी ने जनकपुरवासी (शतानन्द आदि) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर श्रीरामजी भाइयों के साथ राजा जनकजी से मिलकर, समाजसहित उन्हें अपने आश्रम को लिवा चले।

दो०–आस्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुं करुना सरित लिए जाहिं रघुनाथ ।।२७५।।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी का आश्रम शान्तरसरूपी पवित्र जल से भरा हुआ समुद्र है; राजा जनकजी की सेना (समाज) मानों करुणा की नदी है, जिसे उस आश्रम रूपी समुद्र में मिलाने के लिये श्रीरामचन्द्रजी लिये जा रहे हैं ।।२७५।।

बोरति ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ।।
सोच उसास समीर तरंगा । धीरज तट तरुवर कर भंगा ।।

शब्दार्थ–करारे=किनारों। उसास=लम्बी सांस, आह।

अर्थ–वह करुणा की नदी ज्ञान और वैराग्यरूपी किनारों को डुबाती जाती है शोक भरे वचनरूपी नद और नाले उसमें आकर मिलते हैं। चिन्ता की लम्बी सांसें हवा के झकोर से उठनेवाली तरंगें हैं, जो धैर्यरूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं।

विषम बिषाद तोरावति धारा । भय भ्रम भवंर अवर्त अपारा ।।
केवट बुध बिद्या बड़ि नावा । सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा ।।

शब्दार्थ–तोरावति=तेज, वेगवाली। अवर्त=चक्र।

अर्थ–भयानक विषाद ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम (सन्देह) उसके असंख्य भवंर और चक्र हैं। (वशिष्ठादि) बुद्धिमान मल्लाह हैं और विद्या बड़ी नाव है। किन्तु वे खे नहीं सकते क्योंकि किसी को भी खेना नहीं आता।

बनचर कोल किरात बेचारे । थके बिलोकि पथिक हिय हारे ।।
आश्रम उदधि मिली जब जाई । मनहुं उठेउ अंबुधि अकुलाई ।।

शब्दार्थ–थके=शिथिल हो गये। अंबुधि=समुद्र।

अर्थ–वनवासी वेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उसे देख हृदय में हार

मानकर शिथिल हो गये। वह नदी जब आश्रमरूपी समुद्र में आ मिली तब वह समुद्र मानो घबरा उठा, अशान्त हो गया।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ॥

अर्थ—दोनों राज-समाज शोक से व्याकुल हो गये। किसी को भी धैर्य, ज्ञान और लज्जा न रही। राजा दशरथजी के रूप, गुण और शील की बड़ाई करते हुए सभी शोक के समुद्र में गोता लगाने लगे।

छंद—अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हों कहा ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥

अर्थ—शोक-सागर में डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष अत्यन्त व्याकुल हो सोच कर रहे हैं। सभी विधाता को दोष देकर क्रोधयुक्त हो कह रहे हैं, कि विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी तथा मुनियों में ऐसा कोई भी समर्थ नहीं है, जो उस समय जनकजी की दशा देखकर स्नेह की नदी को पार कर सके।

सो०—किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।
धीरजु धरिअ नरेस कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

अर्थ—श्रेष्ठ मुनियों ने जहां-तहां लोगों को अनेक उपदेश दिये और वशिष्ठजी ने जनकजी से कहा कि हे राजन्! धैर्य धारण कीजिये ॥२७६॥

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
तेहिकि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई ॥

अर्थ—जिन राजा जनक के ज्ञानरूपी सूर्य से संसार (आवागमन) रूपी रात्रि का नाश होता है, जिनके वचनरूपी किरणें मुनिरूपी कमलों को विकसित करने वाली हैं, उनके निकट क्या मोह और ममता कभी जा सकती है? यह तो श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी के स्नेह की बड़ाई है (जो उनपर भी अपना प्रभाव दिखाये न बिना रही)।

बिषई साधक सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू । साधु सभां बड़ आदर तासू ॥

अर्थ–विषयी (सांसारिक भोग-विलास में लिप्त), साधना करनेवाले और चतुर (ज्ञानी) सिद्ध–संसार में ये तीन प्रकार के जीव वेदों ने कहे हैं । इनमें जिसका मन श्रीरामचन्द्रजी के स्नेह के रस में पग जाता है, उसका साधु-सभा में बड़ा आदर होता है ।

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू । करनधार बिनु जिमि जलजानू ॥
मुनि बहु बिधि बिदेहु समुझाए । राम घाट सब लोग नहाए ॥

शब्दार्थ–करनधार (कर्णधार)=मल्लाह, पतवार ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे मल्लाह के बिना जहाज । वशिष्ठ मुनि ने जनकजी को अनेक प्रकार से समझाया । तदनन्तर सब लोगों ने रामघाट पर स्नान किया ।

सकल सोक संकुल नर नारी । सो बासरु बितेउ बिनु बारी ॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन कर कौन बिचारू ॥

शब्दार्थ–संकुल=पूर्ण, भरे हुए ।

अर्थ–सभी स्त्री-पुरुष शोक से पूर्ण थे । वह दिन बिना जलके ही बीता । पशु-पक्षी और हिरणों तक ने कुछ भोजन नहीं किया, फिर प्यारे कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या है ?

दो०–दोउ समाज निमिराजु रघुराज नहाने प्रात ।
बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात ॥२७७॥

अर्थ–निमिराज जनकजी और रघुराज श्रीरामचन्द्रजी तथा दोनों ओर के समाज प्रातःकाल स्नान कर वट वृक्ष के नीचे बैठ गये । सबका मन उदास तथा शरीर दुर्बल है ॥२७७॥

जे महिसुर दसरथ पुर बासी । जे मिथिलापति नगर निवासी ॥
हंस बंस गुरु जनक पुरोधा । जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥

शब्दार्थ–पुरोधा=पुरोहित । हंसवंस=सूर्यवंश ।

अर्थ–जो महाराज दशरथजी की पुरी अयोध्या के रहनेवाले और जो मिथिला-पति जनकजी के नगर जनकपुर के रहनेवाले ब्राह्मण थे तथा सूर्यवंश के गुरु

वशिष्ठजी और जनकजी के पुरोहित शतानन्दजी, जिन्होंने संसार में परमार्थ का मार्ग अच्छी तरह खोज लिया है–

लगे कहन उपदेस अनेका । सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी ॥

अर्थ–वे धर्म, नीति, वैराग्य और ज्ञान के अनेक उपदेश देने लगे । विश्वामित्र-जी ने ऐतिहासिक कथाएँ सुन्दर वाणी से कह-कह कर सारी सभा को समझाया ।

तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गयेउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥

अर्थ–तब श्रीरामचन्द्रजी ने विश्वामित्रजी से कहा–हे नाथ ! कल सब लोग बिना जल पिये ही रह गये । मुनि विश्वामित्र ने कहा कि श्रीरामचन्द्रजी उचित कह रहे हैं । आज भी ढाई पहर दिन बीत गया ।

रिषि रुख लखि कहि तिरहुतिराजू । इहां उचित नहिं असन अनाजू ॥
कहा भूप भल सबहिं सुहाना । पाइ रजायसु चले नहाना ॥

अर्थ–मुनि का रुख देखकर जनकजी ने कहा–यहां अन्न खाना उचित नहीं है । राजा का यह सुन्दर कथन सबको अच्छा लगा । आज्ञा पाकर सब लोग नहाने चले ।

दो०– तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार ।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि कांवरि भार ॥२७८॥

अर्थ–उसी समय वन के रहनेवाले कोल-किरात अनेक प्रकार के फल, फूल, पत्ते और मूल कांवरों और बोझों में भर-भरकर ले आये ॥२७८॥

कामद भे गिरि राम प्रसादा । अवलोकत अपहरत बिषादा ॥
सर सरिता वन भूमि बिभागा । जनु उमगत आनंद अनुरागा ॥

शब्दार्थ–कामद=चाही वस्तु देनेवाला । प्रसादा=कृपा ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी की कृपासे पर्वत समस्त कामनाओं को देनेवाला हो गया । वह देखने मात्र से ही दुःखों को हर लेता है । वहां के तालावों, नदियों, वन और भूमि के सब भागों में मानो आनन्द और प्रेम उमड़ रहा है ।

वेलि विटप सब सफल सफूला । बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर वन अधिक उछाहू । त्रिविध समीर सुखद सब काहू ॥

अर्थ–लताएँ और वृक्ष सभी फल-फूल से युक्त हो गये। पक्षी, हिरन और भौंरे प्रसन्न हो बोलने लगे। उस समय वन में बड़ा ही उत्साह था। सब किसी को सुख देनेवाली तीनों प्रकार की हवा बह रही थी।

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥

अर्थ–वहां की मन को हरनेवाली सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो पृथ्वी जनकजी की पहुनाई कर रही है। तब सब लोग नहा-नहाकर श्रीरामचन्द्रजी, जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर–

देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥
दल मूल फल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥

अर्थ–सुन्दर वृक्षों को देख-देख जहां तहां उतरने लगे। पवित्र, सुन्दर और अमृत के समान स्वादिष्ट अनेक प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कन्द–।

दो०–सादर सब कहँ राम गुरु पठये भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु लगे करन फरहार॥२७९॥

अर्थ–बोझों में भर-भरकर, श्रीरामचन्द्रजी के गुरु वशिष्ठजी ने आदर-पूर्वक सबके पास भेजे। वे पितर, देवता, अतिथि और गुरु की पूजाकर फलाहार करने लगे॥२७९॥

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥

अर्थ–इस प्रकार चार दिन बीत गये। श्रीरामचन्द्रजी को देखकर सभी स्त्री-पुरुष सुखी हैं। दोनों समाज के लोगों के मन में ऐसी इच्छा है, कि बिना श्रीसीता और श्रीरामजी को साथ लिए लौटना अच्छा नहीं है।

सीता राम संग बनवासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥
परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥

अर्थ–श्रीसीतारामजी के साथ वन में रहना करोड़ों स्वर्ग के समान सुखदायक है। लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी को छोड़कर जिसे घर अच्छा लगे उसके विधाता ही प्रतिकूल हैं।

दाहिन दइउ होहि जब सबही । राम समीप बसिय बन तबही ॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला । राम दरसु मुद मंगल माला ॥

अर्थ–जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्रीरामचन्द्रजी के पास वन में निवास हो सकता है । तीनों समय मन्दाकिनी का स्नान और आनन्द तथा मंगल का समूह श्रीरामजी का दर्शन–

अटनु राम गिरि बन तापस थल । असनु अमिय सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

शब्दार्थ–अटन=घूमना । संवत=वर्ष ।

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी के वन-पर्वत और तपस्वियों के स्थानों में घूमना, अमृत के समान कन्द, मूल, फल खाना । चौदह वर्ष तो सुख के साथ पल के समान हो जायेंगे, इन्हें बीतते मालूम नहीं होगा ।

दो०–एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहा अस भागु ।
सहज सुभायं समाज दुइ राम चरन अनुरागु ॥२८०॥

अर्थ–सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं । हमारे ऐसे भाग्य कहां ? दोनों समाज का श्रीरामजी के चरणों में सहज स्वभाव से प्रेम है ।२८०।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समय पठाई । दासी देखि सुवसरु आई ॥

अर्थ–इस प्रकार सभी मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेममय वचन सुनते ही मन को हर लेते हैं । उसी समय सीताजी की माता सुनयनाजी की भेजी हुई दासी (मिलने का) सुन्दर अवसर देखकर लौट आयी ।

सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनक राज रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिये समय सम आनी ॥

अर्थ–(दासी से) यह सुनकर कि सीताजी की सब सासुएँ फुरसत में हैं, जनक-राज का रनवास मिलने आया । कौशल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयानुसार लाकर आसन दिये ।

सील सनेहु सकल दुहुं ओरा । द्रवहिं देखि [illegible] ेरा ॥
पुलक सिथिल तन वारि बिलोचन । महि नख [illegible] ोचन ॥

अर्थ–दोनों ओर के सबके शील और स्नेह को [illegible] कठोर

भी पिघल जाते हैं। सबका शरीर पुलकायमान और शिथिल है, नेत्रों में आंसू है। सब अपने पैर के नख से पृथ्वी कुरेदने और सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति। जनु करुना बहु वेष बिसूरति।।
सीय मातु कह बिधि बुधि बांकी। जो पय फेनु फोर पबि टांकी।।

शब्दार्थ–कि=के। सि=सदृश। बिसूरति=शोक (चिन्ता) कर रही हो। पयफेनु=दूध का झाग। पवि=वज्र। टांकी=छेनी, पत्थर तोड़ने का औजार।

अर्थ–सभी श्रीसीतारामजी की प्रेम की मूर्ति जैसी हैं। मानो करुणा अनेक वेष धारणकर शोक कर रही हो। सीताजी की माता (सुनयनाजी) ने कहा–ब्रह्मा की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन को वज्र की छेनी से फोड़ रहा है।

दो०–सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहं तहं काक उलूक बक मानस सकृत मराल।।२८१।।

अर्थ–अमृत तो केवल सुनने में ही आता है और विष प्रत्यक्ष देखने में आता है। ब्रह्मा की सब करतूतें भयंकर हैं। कौए, उल्लू और बगले तो हर जगह पाये जाते हैं, किन्तु हंस एक मानसरोवर में ही रहते हैं।।२८१।।

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।।
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी।।

अर्थ–यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकसहित कहती हैं कि ब्रह्मा की चाल बड़ी विपरीत और विचित्र है; जो सृष्टि को रचकर पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। ब्रह्मा की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू।।
कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता।।

अर्थ–कौशल्याजी ने कहा–इसमें किसी का दोष नहीं। सुख, दुःख, हानि, लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन है; उसे केवल विधाता ही जानता है, जो शुभाशुभ सभी फलों का देनेवाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें।।
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी।।

शब्दार्थ–उतपति=उत्पत्ति। थिति=स्थिति, पालन। लय=नाश। बादी=व्यर्थ।

अर्थ–ईश्वर की आज्ञा सबके सिरपर है। उत्पत्ति, पालन, नाश और विष

दाहिन दइउ होहि जब सबही । राम समीप बसिय बन तबही ॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला । राम दरसु मुद मंगल माला ॥

अर्थ—जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्रीरामचन्द्रजी के पास वन में निवास हो सकता है । तीनों समय मन्दाकिनी का स्नान और आनन्द तथा मंगल का समूह श्रीरामजी का दर्शन—

अटनु राम गिरि बन तापस थल । असनु अमिय सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

शब्दार्थ—अटन=घूमना । संवत=वर्ष ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के वन-पर्वत और तपस्वियों के स्थानों में घूमना, अमृत के समान कन्द, मूल, फल खाना । चौदह वर्ष तो सुख के साथ पल के समान हो जायेंगे. इन्हें बीतते मालूम नहीं होगा ।

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहा अस भागु ।
सहज सुभायं समाज दुइ राम चरन अनुरागु ॥२८०॥

अर्थ—सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं । हमारे ऐसे भाग्य कहां ? दोनों समाज का श्रीरामजी के चरणों में सहज स्वभाव से प्रेम है ।२८०।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समय पठाई । दासी देखि सुवसरु आई ॥

अर्थ—इस प्रकार सभी मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेममय वचन सुनते ही मन को हर लेते हैं । उसी समय सीताजी की माता सुनयनाजी की भेजी हुई दासी (मिलने का) सुन्दर अवसर देखकर लौट आयी ।

सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनक राज रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिये समय सम आनी ॥

अर्थ—(दासी से) यह सुनकर कि सीताजी की सब सासुएँ फुरसत में हैं, जनक-राज का रनवास मिलने आया । कौशल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयानुसार लाकर आसन दिये ।

सीलु सनेहु सकल दुहुं ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥

अर्थ—दोनों ओर के सबके शील और स्नेह को देख और सुनकर कठोर वज्र

भी पिघल जाते हैं। सबका शरीर पुलकायमान और शिथिल है, नेत्रों में आंसू हैं। सब अपने पैर के नख से पृथ्वी कुरेदने और सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बांकी। जो पय फेनु फोर पबि टांकी॥

शब्दार्थ—कि =के। सि=सदृश। बिसूरति=शोक (चिन्ता) कर रही हो। पयफेनु=दूध का झाग। पवि=वज्र। टांकी=छेनी, पत्थर तोड़ने का औजार।

अर्थ—सभी श्रीसीतारामजी की प्रेम की मूर्ति जैसी हैं। मानो करुणा अनेक वेष धारणकर शोक कर रही हो। सीताजी की माता (सुनयनाजी) ने कहा—ब्रह्मा की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन को वज्र की छेनी से फोड़ रहा है।

दो०—सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहं तहं काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥२८१॥

अर्थ—अमृत तो केवल सुनने में ही आता है और विष प्रत्यक्ष देखने में आता है। ब्रह्मा की सब करतूतें भयंकर हैं। कौए, उल्लू और बगले तो हर जगह पाये जाते हैं, किन्तु हंस एक मानसरोवर में ही रहते हैं॥२८१॥

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥

अर्थ—यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकसहित कहती हैं कि ब्रह्मा की चाल बड़ी विपरीत और विचित्र है; जो सृष्टि को रचकर पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। ब्रह्मा की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

अर्थ—कौशल्याजी ने कहा—इसमें किसी का दोष नहीं। सुख, दुःख, हानि, लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन है; उसे केवल विधाता ही जानता है, जो शुभाशुभ सभी फलों का देनेवाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देवि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

शब्दार्थ—उतपति=उत्पत्ति। थिति=स्थिति, पालन। लय=नाश। बादी=व्यर्थ।

अर्थ—ईश्वर की आज्ञा सबके सिरपर है। उत्पत्ति, पालन, नाश और विष

दाहिन दइउ होहि जब सबही । राम समीप बसिय बन तबही ॥
मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला । राम दरसु मुद मंगल माला ॥

अर्थ—जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्रीरामचन्द्रजी के पास वन में निवास हो सकता है । तीनों समय मन्दाकिनी का स्नान और आनन्द तथा मंगल का समूह श्रीरामजी का दर्शन—

अटनु राम गिरि बन तापस थल । असनु अमिय सम कंद मूल फल ॥
सुख समेत संबत दुइ साता । पल सम होहिं न जनिअहिं जाता ॥

शब्दार्थ—अटन=घूमना । संवत=वर्ष ।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी के वन-पर्वत और तपस्वियों के स्थानों में घूमना, अमृत के समान कन्द, मूल, फल खाना । चौदह वर्ष तो सुख के साथ पल के समान हो जायेंगे, इन्हें बीतते मालूम नहीं होगा ।

दो०—एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहा अस भागु ।
सहज सुभायं समाज दुइ राम चरन अनुरागु ॥२८०॥

अर्थ—सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं । हमारे ऐसे भाग्य कहां ? दोनों समाज का श्रीरामजी के चरणों में सहज स्वभाव से प्रेम है ।२८०।

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
सीय मातु तेहि समय पठाईं । दासी देखि सुअवसरु आईं ॥

अर्थ—इस प्रकार सभी मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेममय वचन सुनते ही मन को हर लेते हैं । उसी समय सीताजी की माता सुनयनाजी की भेजी हुई दासी (मिलने का) सुन्दर अवसर देखकर लौट आयी ।

सावकास सुनि सब सिय सासू । आयउ जनक राज रनिवासू ॥
कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिये समय सम आनी ॥

अर्थ—(दासी से) यह सुनकर कि सीताजी की सब सासुएँ फुरसत में हैं, जनक-राज का रनवास मिलने आया । कौशल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयानुसार लाकर आसन दिये ।

सील सनेहु सकल दुहुं ओरा । द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन ॥

अर्थ—दोनों ओर के सबके शील और स्नेह को देख और सुनकर कठोर वज्र

भी पिघल जाते हैं। सबका शरीर पुलकायमान और शिथिल है, नेत्रों में आंसू है। सब अपने पैर के नख से पृथ्वी कुरेदने और सोचने लगीं।

सब सिय राम प्रीति कि सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥
सीय मातु कह बिधि बुधि बांकी। जो पय फेनु फोर पवि टांकी॥

शब्दार्थ–कि=के। सि=सदृश। बिसूरति=शोक (चिन्ता) कर रही हो। पयफेनु=दूध का झाग। पवि=वज्र। टांकी=छेनी, पत्थर तोड़ने का औजार।

अर्थ–सभी श्रीसीतारामजी की प्रेम की मूर्ति जैसी हैं। मानो करुणा अनेक वेष धारणकर शोक कर रही हो। सीताजी की माता (सुनयनाजी) ने कहा–ब्रह्मा की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन को वज्र की छेनी से फोड़ रहा है।

दो०–सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहं तहं काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥२८१॥

अर्थ–अमृत तो केवल सुनने में ही आता है और विष प्रत्यक्ष देखने में आता है। ब्रह्मा की सब करतूतें भयंकर हैं। कौए, उल्लू और बगले तो हर जगह पाये जाते हैं, किन्तु हंस एक मानसरोवर में ही रहते हैं॥२८१॥

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥

अर्थ–यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकसहित कहती हैं कि ब्रह्मा की चाल बड़ी विपरीत और विचित्र है; जो सृष्टि को रचकर पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। ब्रह्मा की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली है।

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

अर्थ–कौशल्याजी ने कहा–इसमें किसी का दोष नहीं। सुख, दुःख, हानि, लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन है; उसे केवल विधाता ही जानता है, जो शुभाशुभ सभी फलों का देनेवाला है।

ईस रजाइ सीस सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥

शब्दार्थ–उतपति=उत्पत्ति। थिति=स्थिति, पालन। लय=नाश। बादी=व्यर्थ।

अर्थ–ईश्वर की आज्ञा सबके सिरपर है। उत्पत्ति, पालन, नाश और विष

तथा अमृत ये सब भी उसी के आज्ञाधीन हैं। हे देवि ! मोह वश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का ऐसा प्रपंच अचल और अनादि है।

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥

अर्थ—महाराज के जीने और मरने की बात हृदय में लाकर हम जो सोच करती हैं, वह हे सखि ! अपने हित की हानि देखकर करती हैं। सीताजी की माता ने कहा—आपकी सुन्दर बात बिलकुल सत्य है। पुण्यात्माओं की सीमारूप अवधेश महाराज की ही तो आप रानी हैं।

दो०—लखनु रामु सिय जाहुं बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियं कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥२८२॥

शब्दार्थ—पोचु=बुरा, दुष्ट। गहबरि=व्याकुल।

अर्थ—व्याकुल हृदय से कौशल्याजी ने कहा—लक्ष्मण, राम और सीता वन को जायें, इसका परिणाम अच्छा ही होगा; बुरा नहीं। किन्तु मुझे तो भरतजी के लिए चिन्ता है॥२८२॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि कहउं सखी सति भाऊ॥

अर्थ—ईश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद से मेरे सभी पुत्र और पुत्रवधूएँ गंगाजी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी ! मैंने आजतक कभी श्रीरामचन्द्रजी की सौगन्ध नहीं की; किन्तु आज मैं वह सौगन्ध करके सच्चे भाव से कहती हूँ—

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥

शब्दार्थ—हीचे=हिचकती है, सकुचाती है। उलीचे=खाली किया जाना।

अर्थ—भरत के शील, गुण नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसा और भलाई का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है। सीप से कहीं समुद्र खाली किया जा सकता है ?

जानउं सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परखियहि समय सुभायें॥

अर्थ—महाराज भी मुझसे बार-बार यही कहते थे, कि भरत को मैं अपने वंश

का दीपक समझता हूँ। सोना की कसौटी पर कसे जाने पर और मणि की सच्चे पारखी के मिलने पर परीक्षा होती है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने और उसके स्वभाव (चरित्र) से होती है।

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥

अर्थ–किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है; क्योंकि शोक और स्नेह में मनुष्य का ज्ञान कम हो जाता है। गंगाजी के समान पवित्र वाणी को सुनकर सब रानियां स्नेह से व्याकुल हो गयीं।

दो०–कौसल्या कहि धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥२८३॥

अर्थ–फिर कौशल्याजी ने धैर्य धारणकर कहा–हे मिथिलेश की महारानी सुनिये, आप ज्ञान के समुद्र महाराज जनकजी की पत्नी हैं, आपको कौन उपदेश दे सकता है॥२८३॥

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भांति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥

अर्थ–हे महारानी! मौका पाकर आप अपनी ओर से समझाकर महाराज से यह कहियेगा, कि वे लक्ष्मण को घर रख लें और भरत को राम के साथ वन भेज दें, यह राय यदि राजा के मन को अच्छी लगे–

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥

अर्थ–तो वे अच्छी तरह विचारकर इसके लिए पूरा यत्न करें। मुझे भरत का बड़ा सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है। उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं मालूम होती।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि॥

अर्थ–कौशल्याजी के स्वभाव को देखकर और उनकी सुन्दर सीधी बात सुनकर सब रानियां करुण रस में डूब गयीं। आकाश से फूल झड़ने और धन्य-धन्य की आवाज होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह मे शिथिल हो गये।

सबु रनिवासु बिथिकि लखि रहेऊ । तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥
देबि दंड जुग जामिनि बीती । राम मातु सुनि उठी सप्रीती ॥

अर्थ—यह देख सारा निवास शिथिल हो गया । तब सुमित्राजी ने धैर्य धारण कर कहा—हे देवि ! दो घड़ी रात बीत गयी । यह सुनकर श्रीरामजी की माता कौशल्याजी प्रेमसहित उठीं ।

दो०—बेगि पाउं धारिअ थलहिं कह सनेहँ सतिभाय ।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय ॥२८४॥

अर्थ—और सद्भाव तथा स्नेह सहित बोलीं—अब आप शीघ्र डेरे को पधारिये । हमारे तो ईश्वर ही अवलम्ब हैं अथवा मिथिलेश जनकजी सहायक हैं ॥२८४॥

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता । जनक प्रिया गह पाय पुनीता ॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी । दसरथ घरिनि राम महतारी ॥

अर्थ—कौशल्याजी के प्रेम को देख और नम्र वचनों को सुनकर, जनकजी की प्रिय पत्नी सुनयना उनके चरणों को पकड़कर बोलीं,—हे देवि ! आप में ऐसी नम्रता का होना उचित ही है, क्योंकि आप महाराज दशरथजी की पत्नी और श्रीरामचन्द्रजी की माता हैं ।

प्रभु अपने नीचहुं आदरहीं । अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
सेवकु राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ॥

अर्थ—प्रभु अपने नीच जनों को भी आदर (सम्मान) देते हैं । अग्नि धुएँ को और पर्वत तृण को अपने सिर पर धारण करते हैं । हमारे राजा तो मन, कर्म और वचन से आपके सेवक हैं और शिव-पार्वतीजी आपके सदा सहायक हैं ही ।

रउरे अंग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
रामु जाइ बन करि सुर काजू । अचल अवधपुर करिहहिं राजू ॥

अर्थ—आपका सहायक होने योग्य संसार में कौन है ? दीपक की सहायता से क्या सूर्य शोभा पाता है ? श्रीरामचन्द्रजी वन में जा देवताओं का कार्य पूरा करके अयोध्या में अचल राज्य करेंगे ।

अमर नाग नर राम बाहु बल । सुख बसिहहिं अपने अपने थल ॥
यह सब जागबलिक कहि राखा । देबि न होइ मुधा मुनि भाषा ॥

शब्दार्थ—मुधा=झूठा । भाषा=कथन, वाणी ।

अर्थ—देवता, नाग (शेष) और मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के बाहुबल पर अपने अपने स्थानों में सुखपूर्वक रहेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले से ही कह रखा है। हे देवि! मुनि का कथन झूठा नहीं होगा।

दो०—अस कहि पग परि पेम अति सिय हित विनय सुनाइ।
सिय समेत सिय मातु तब चलीं सुआयसु पाइ॥२८५॥

अर्थ—ऐसा कहकर और अत्यन्त प्रेमपूर्वक पैर पड़कर, सीताजी को साथ ले जाने के लिए प्रार्थना सुनाकर और सुन्दर आज्ञा पाकर सीताजी की माता सुनयना पुत्री सीताजी को साथ लेकर चलीं॥२८५॥

प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भांति तेहि तेही॥
तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल विषाद विसेषी॥

अर्थ—सीताजी अपने प्यारे परिवारवालों के साथ, जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। सीताजी को तपस्विनी के वेष में देखकर, सब लोग अत्यन्त विषाद से व्याकुल हो उठे।

जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन पेम प्रान की॥

अर्थ—जनकजी श्रीरामचन्द्रजी के गुरु वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर अपने स्थान को चले और वहाँ आकर उन्होंने सीताजी को देखा। जनकजी ने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा लिया।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मन मनहुं पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा। तापर राम पेम सिसु सोहा॥

शब्दार्थ—बटु=अक्षयवट। जोहा=देखा।

अर्थ—उनके हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ आया। उस समय राजा का मन मानो प्रयाग हो गया। उस समुद्र के अन्दर उन्होंने (आदि शक्ति) सीताजी का स्नेह रूपी अक्षयवट बढ़ते देखा। उसपर श्रीरामचन्द्रजी का प्रेम रूपी बालक सुशोभित हो रहा है।

टिप्पणी—प्रलयकाल में जड़-चेतन का नाश होकर केवल जल ही जल चारों ओर दिखाई देता है किन्तु प्रयाग का नाश नहीं होता। उसी प्रकार राजा का मन प्रेम-सागर में डूबने पर भी अचल है। प्रलय का जल बढ़ने से अक्षयवट उनके ऊपर

ही रहता है और उसके पत्ते पर वाल-रूप में भगवान विराजते हैं। उसी भांति सीताजी के स्नेह रूपी वट वृक्ष पर श्रीराम-प्रेम रूपी वालक विराज रहा है।

चिरजीवी [1]मुनि ग्यान बिकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

अर्थ—जनकजी का ज्ञान रूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि डूबते-डूबते व्याकुल होकर मानो श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम रूपी वालक का सहारा पाकर बच गया। वास्तव में ज्ञान शिरोमणि जनकजी की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है। यह तो श्रीसीतारामजी के प्रेम की महिमा है (जिसने जनकजी जैसे महाज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)।

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी संभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥२८६॥

शब्दार्थ—धरनि-सुता=पृथ्वी की कन्या सीताजी।

अर्थ—माता-पिता के स्नेह के वश होकर सीताजी भी व्याकुल हो अपने को सम्हाल न सकीं। किन्तु पृथ्वी की कन्या सीताजी ने समय और सुन्दरधर्म का विचार करके धैर्य धारण किया॥२८६॥

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोष बिसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

अर्थ—सीताजी को तपस्विनी-वेष में देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और

१—मार्कण्डेयजी ने तप कर भगवान से यह वर मांगा कि मैं प्रलय-काल का कौतुक देखूं। भगवान ने 'तथास्तु' कहा। अनन्तर एक दिन मार्कण्डेय मुनि तपस्या करने बैठे थे कि इतने में उन्होंने देखा कि चारों ओर समुद्र सा उमड़ा चला आ रहा है। सर्वत्र जल ही जल हो गया। उसमें वे तैरने लगे। तव अक्षयवट को देख उसपर चढ़ गये। वहां एक दोने में एक वालक देखा। वालक ने एक लम्बी सांस ली और मार्कण्डेय जी उस सांस के जरिये उसके पेट में प्रविष्ट हो गये। वहां भी उन्होंने एक जगत और आश्रम देखा। कुछ दिन वहां रहने पर वे फिर श्वास के साथ वाहर निकल आये और अपने को नदी तट पर खड़ा पाया तो दो घड़ी की माया ज्ञात हुई।

अर्थ–सोने में सुगन्ध और सुधा में चन्द्रमा का सार अमृत के समान भरतजी के व्यवहार को सुनकर राजा जनकजी ने प्रेमाश्रु भरे नेत्रों को मूंद लिया। शरीर पुलकायमान हो गया और प्रसन्न मन से भरतजी के सुन्दर यश की प्रशंसा करने लगे।

सावधान सुनि सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥
धरमराजनय ब्रह्म बिचारू। इहां जथामति मोर प्रचारू॥

अर्थ–हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान (ध्यानपूर्वक) होकर सुनो– भरतजी की कथा संसार के वन्धन को छुड़ानेवाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञान इन तीनों में मेरी बुद्धि की पहुँच भी कुछ-कुछ है।

सो मति मोर भरत महिं माहीं। कहइ काह छलि छुअत न छाहीं॥
बिधि गनपति अहिपिति सिव सारद। कबि कोविद बुध बुद्धि बिसारद॥

अर्थ–वह मेरी बुद्धि भरतजी की महिमा का वर्णन तो क्या करे, छल करके उसकी छायातक भी छू नहीं पाती। ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, शिवजी, सरस्वतीजी, कवि, पण्डित तथा विशेष बुद्धिमान–

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥

शब्दार्थ–रुचि=स्वाद। निदर=तिरस्कार करना।

अर्थ–सब किसी को भरतजी के चरित्र, यश, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देनेवाले हैं। वे गंगाजी के समान पवित्र और स्वाद में अमृत का भी तिरस्कार करनेवाले हैं।

दो०–निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु की सेर सम कबि कुल मति सकुचानि॥२८८॥

शब्दार्थ–निरवधि=असीम। निरुपम=उपमारहित।

अर्थ–भरतजी असीम गुणवाले उपमा रहित पुरुष हैं। भरतजी को वस भरतजी के ही समान जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के वरावर कह सकते हैं? सलिए उनका वर्णन करने में कवियों की वुद्धि भी सकुचा गयी ॥२८८॥

अगम सबहिं बरनत बर बरनी। जिमि जल हीन मीन मगु धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

शब्दार्थ–वरवरनी=सुन्दर वर्ण (रूप) वाली।

अर्थ–हे सुन्दर वर्णवाली ! भरतजी की महिमा का वर्णन करना सबके लिए वैसा ही अगम है, जैसे बिना जल की पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी ! सुनो, भरतजी की अपार महिमा को केवल श्रीरामचन्द्र जी जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥
बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सबके मन माहीं॥

शब्दार्थ–अनुभाऊ=महिमा, प्रभाव। बहुरहिं=लौट जायँ।

अर्थ–इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजी की महिमा का वर्णन करके, स्त्री के मन की रुचि देखकर राजा ने कहा–लक्ष्मणजी लौट जायँ और भरतजी वन को जायँ, इसमें सबका भला है और यही सबके मन में है।

देवि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। यद्यपि राम सींव समता की॥

शब्दार्थ–तरकी=तर्की, विचार किया जाना, अनुमान करना। सीवँ=सीमा।

अर्थ–परन्तु हे देवि ! भरतजी और श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम और आपस के विश्वास का अनुमान नहीं किया जा सकता। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समता की सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममता की सीमा हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहुं निहारे॥
साधन सिद्ध राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

अर्थ–परमार्थ और स्वार्थ के समस्त सुखों की ओर भरतजी ने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा। श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम ही समस्त साधनों की सिद्धि है, भरतजी का यही एक मात्र सिद्धान्त मुझे दिखाई दे रहा है।

दो०–भोरेहुं भरत न पेलिहहिं मनसहुं राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥२८९॥

शब्दार्थ–भोरहुँ=भूलकर भी। पेलिहहिं=टालेंगे।

अर्थ–राजा ने प्रेम से गदगद होकर कहा–भरतजी भूलकर भी श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा मनसे भी नहीं टालेंगे। इसलिए स्नेह वश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिए॥२८९॥

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दम्पतिहिं पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥

शब्दार्थ—गनत=गिनते, कहते-सुनते। दंपति=पति-पत्नी, राजा-रानी।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी तथा भरतजी के गुणों को प्रेमपूर्वक कहते-सुनते पति-पत्नी को रात पलक के समान बीत गयी। प्रातःकाल दोनों राज समाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे।

गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजी के निकट गये और चरणों में वन्दना कर, रुख पा बोले—हे नाथ! भरत, पुरवासी तथा सभी माताएँ शोक से व्याकुल और वनवास से दुःखी हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहित कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरें हाथा॥

अर्थ—मिथिलेश राजा जनकजी को भी समाज के साथ कष्ट सहते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो आप वह करें। सबका हित आपके ही हाथ में है।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥

अर्थ—ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सकुचा गये। उनके शील और स्वभाव को देख वशिष्ठ मुनि (प्रेम और आनन्द से) पुलकित हो उठे। वे बोले-हे रामजी! तुम्हारे बिना सभी सुख के समान दोनों समाजों के लिए नरक के समान हैं।

दो०—प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सुहात गृह जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि बाम॥२९०॥

अर्थ—हे राम! तुम प्राणों के प्राण, आत्मा की भी आत्मा और सुख के सुख हो। हे तात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर अच्छा लगता है, उनपर विधाता विपरीत है॥२९०॥

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहं न राम पद पंकजभाऊ ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू ॥

अर्थ—जहां श्रीरामजी के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, वह धर्म और वह कर्म जल जाये। जहां श्री राम-प्रेम की प्रधानता नहीं वह योग कुयोग और वह ज्ञान अज्ञान है।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं ॥
राउर आयसु सिर सबही कें। बिदित कृपालहि गति सब नीकें ॥

अर्थ—तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और तुम्ही से सब सुखी हैं। जिस किसी के मन में जो कुछ है तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सभी को शिरोधार्य है। हे कृपालु ! सबकी दशा आपको अच्छी तरह मालूम है।

आपु आश्रमहि धारिय पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाये। रिषि धरि धीर जनक पहिं आये ॥

अर्थ—आप अपने आश्रम को चलें। यह कहकर मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गये। तब श्रीरामजी ने प्रणाम करके वहां से प्रस्थान किया और ऋषि वशिष्ठ जी धैर्य धारण कर जनकजी के पास आये।

राम बचन गुरु नृपहिं सुनाये। सील सनेह सुभायं सुहाये ॥
महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धरम सहित हित होई ॥

अर्थ—गुरु ने श्रीरामचन्द्रजी के शील, स्नेह और स्वभाव से ही सुन्दर वचन राजा जनकजी को सुनाये और कहा—हे महराज ! अब आप वही करें जिससे धर्म सहित सबका भला हो।

दो०—ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीरनर पाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल ॥२९१॥

शब्दार्थ—समन=दूर करने वाला, हटाने वाला।

अर्थ—हे राजन् ! तुम ज्ञान के भाण्डार, चतुर, पवित्र और धर्म में धीर हो। तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में समर्थ इस समय दूसरा कौन है।२९१।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मनमाहीं। आए इहां कीन्ह भल नाहीं ॥

अर्थ—मुनि के वचन सुनकर जनकजी प्रेम से विह्वल हो गये। उनकी दशा

देख ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया अर्थात् लुप्त हो गये वे स्नेह से शिथिल होकर मन में विचार करते हैं कि हम यहां आये, यह अच्छा नहीं किया।

रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब बनतें बनहिं पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई ॥

शब्दार्थ—प्रवाना (प्रमाणा) कीन्ह=प्रमाणित किया, सच्चा कर दिखाया।

अर्थ—महाराज दशरथजी ने श्रीरामजी को वन जाने को कहा और आप प्रिय के प्रेम को प्रमाणित किया। और अब हम इनको इस वन से और घने वन में भेजकर अपने ज्ञान को बढ़ाकर प्रसन्न हो घर लौटेंगे।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेम बस बिकल बिसेखी ॥
समउ समुंझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा ॥

अर्थ—तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब देख-सुनकर, प्रेम वश अत्यन्त व्याकुल हो उठे। फिर राजा जनकजी ने समय का विचारकर धैर्य धारण किया और समाज के साथ भरतजी के पास चले।

भरत आइ आगे भइ लीन्हें। अवसर सरिस सुआसनु दीन्हें ॥
तात भरत कह तिरहुतिराऊ। तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥

अर्थ—भरतजी ने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की और समय के अनुसार बैठने को सुन्दर आसन दिया। तब जनकजी ने कहा—हे तात भरत! तुम्हें श्रीरामचन्द्रजी का स्वभाव मालूम है।

दो०—राम सत्य व्रत धरम रत सबकर सीलु सनेहु।
संकट सहत संकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं तथा उन्हें सब का शील और स्नेह है। वे संकोच के कारण कष्ट सह रहे हैं। इसलिए अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाय ॥२९२॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि बारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुल गुरु समहित मायन बापू ॥

अर्थ—यह सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो उठा, वे नेत्रों में जल भरकर

और अत्यन्त धैर्य धारण कर बोले—हे प्रभो ! आप स्वयं मेरे प्रिय पूज्य पिता के समान हैं और कुलगुरु वशिष्ठजी के समान हितकारी माता-पिता भी नहीं है।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुन आजू॥
सिसु सेवक आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥

शब्दार्थ—अंबुनिधि=समुद्र। अनुगामी=अनुसार (पीछे) चलनेवाला।

अर्थ—विश्वामित्रजी इत्यादि मुनि तथा मन्त्रियों का समाज है और साक्षात् ज्ञान के समुद्र आप भी आज यहां हैं। हे स्वामी ! आप मुझे बच्चा, सेवक तथा आज्ञानुसार चलनेवाला जानकर शिक्षा दीजिये।

यही समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर॥
छोटे बदन कहउं बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥

शब्दार्थ—बाउर=पागलपन। बदन=मुंह।

अर्थ—ऐसे समाज और स्थान में आपका पूछना ! इस पर यदि मैं चुप रह जाता हूँ, तो मलिन समझा जाऊँगा और यदि नहीं बोलता हूँ तो वह मेरा पागलपन होगा। तो भी छोटे मुंह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात ! विधाता को प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजियेगा।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥

शब्दार्थ—प्रबोधू=ज्ञान। स्वामि-धरम=स्वामी के प्रति कर्त्तव्य का पालन। विरोध=शत्रुता

अर्थ—वेद, शास्त्र तथा पुराणों में प्रसिद्ध है और सारा संसार भी जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है। स्वामी के प्रति कर्त्तव्य का पालन तथा स्वार्थ में विरोध है। वैर (शत्रुता) अन्धा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता। अर्थात् मैं स्वार्थ वश कहूँ या प्रेम-वश दोनों में ही भूल होने का भय है।

दो०—राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सबकें संमत सर्बहित करिअ पेमु पहिचानि॥२९३॥

अर्थ—इसलिए मुझे पराधीन जानकर श्रीरामचन्द्रजी की इच्छा, धर्म और व्रत को रखकर, सबकी सम्मति और जो बात सबकी भलाई की हो, वह सबका प्रेम पहचान कर आप करें॥२९३॥

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ॥

शब्दार्थ–अमित=अपार । आखर=अक्षर ।

अर्थ–भरतजी के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर राजा जनकजी समाज सहित उनकी प्रशंसा करने लगे । भरतजी के वचन सुगम, अगम, सुन्दर, कोमल और कठोर हैं । उनमें अक्षर तो थोड़े हैं, किन्तु अर्थ अपार भरा हुआ है ।

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी । गहि न जाइ अस अद्भुत बानी ॥
भूप भरतु मुनि सहित समाजू । गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ॥

शब्दार्थ–बिबुध=देवता । कुमुद=सफेद कमल, कोईं । द्विजराजू=चन्द्रमा ।

अर्थ–जिस तरह मुंह का प्रतिबिम्ब दर्पण में है और दर्पण हाथ में है तो भी वह प्रतिबिम्ब पकड़ा नहीं जाता, उसी भांति भरतजी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती अर्थात् शब्दों से उसका अर्थ समझ में नहीं आता । (अन्त में) राजा जनकजी, भरतजी, मुनि, साधु तथा सभी समाज वहां गये जहां देवता रूपी कुमुद को खिलानेवाले चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजी थे ।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा । मनहुँ मीन गन नव जल जोगा ॥
देव प्रथम कुल-गुरु-गति देखी । निरखि बिदेह सनेह बिसेखी ॥

अर्थ–यह खबर सुनकर सब लोग चिन्ता से व्याकुल हो उठे; मानो मछलियों को नये (पहली वर्षा के) जल का संयोग हो गया हो । देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ठजी की (प्रेम-विह्वल) दशा देखी; फिर जनकजी को विशेष स्नेह के वश देखा ।

राम भगति मय भरतु निहारे । सुर स्वारथी हहरि हियं हारे ॥
सब कोउ राम पेममय पेखा । भये अलेख सोच बस लेखा ॥

शब्दार्थ–हहरि=डरकर, कांपकर । अलेख=बेहिसाब । लेखा=देवता ।

अर्थ–और भरतजी को श्रीराम-भक्ति में सराबोर देख स्वार्थी देवता लोग डरकर हृदय में हार गये–उनका दिल छोटा हो गया । सब किसी को श्रीरामजी के प्रेम से युक्त देख देवता बेहिसाब शोच के वश हो गये ।

दो०–राम सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु ।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहित भयेउ अकाजु ॥२९४॥

शब्दार्थ—प्रपंच=माया, जाल, ढोंग। पंच=सबलोग।

अर्थ—इन्द्र चिन्तावश होकर कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी भी स्नेह और संकोच के वश हो रहे हैं; इसलिए सब लोग मिलकर कोई माया रचो, नहीं तो काम बिगड़ना ही चाहता है ॥२९४॥

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥

अर्थ—देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी प्रशंसा (स्तुति) की और कहा—हे देवि ! हम शरण में आये हुए देवताओं की तुम रक्षा करो। अपनी माया से भरतजी की बुद्धि बदल कर, (किसी भी) छल-कपट से देवताओं का पालन करो।

बिबुध विनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू ॥

अर्थ—देवताओं की विनती सुन, चतुर सरस्वती देवी, देवताओं को स्वार्थ के वश मूर्ख जानकर बोलीं—तुम मुझसे कहते हो, कि भरतजी की बुद्धि को बदल दो ! हजार नेत्र होने पर भी तुम्हें सुमेरु पर्वत सूझ नहीं पड़ता।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ॥

अर्थ—ब्रह्माजी, विष्णुजी तथा शंकरजी की माया बहुत बड़ी है, वह भी भरतजी की बुद्धि की ओर आंख नहीं उठा सकती। उसी बुद्धि को मुझे कहते हो कि भुलावे में डाल दो। भला कहीं चांदनी चन्द्रमा की चोरी कर सकती है ?

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहं कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गई बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुं कोका ॥

शब्दार्थ—तरनि=सूर्य। बिधिलोक=ब्रह्मा लोक। कोका=चकवा।

अर्थ—भरतजी के हृदय में श्रीसीता-रामजी का वास है। जहां सूर्य का प्रकाश है वहां कभी अन्धकार रह सकता है। ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गयीं और देवता लोग वैसे व्याकुल हुए जैसे रात में चकवा।

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ॥२९५॥

शब्दार्थ—कुमंत्र=बुरी सलाह। कुठाटु=बुरा सामान। अरति=अप्रेम।

अर्थ—बुरे विचारवाले स्वार्थी देवताओं ने बुरी सलाह और बुरा सामा
रचा। प्रबल माया जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रेम और उच्चाटन फैला दिया

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काजु अकाजू॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥

अर्थ—इन्द्र कुचाल करके सोचते हैं कि काम का बनाना-बिगाड़ना सब कुछ भरतजी के हाथ में है। (इधर) जनकजी (सबके साथ) श्रीरामचन्द्रजी के पास गये। सूर्यवंश के दीपक श्रीरामजी ने सबका आदर किया।

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥

शब्दार्थ—अविरोधा=अनुकूल। पुरोधा=पुरोहित। कहाउति=बातें, कथन।

अर्थ—तब रघुवंश के पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्मानुकूल बोले पहले उन्होंने जनकजी और भरतजी के संवाद को कह सुनाया। फिर भरतजी की कही हुई सुन्दर बातें कहीं।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करै मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥

अर्थ—(फिर बोले) हे तात राम! मेरी तो यही राय है कि तुम जैसी आज्ञा दो, सब लोग वही करें। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी दोनों हाथ जोड़, सत्य, सरल और मीठी वाणी बोले—

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भांति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥

शब्दार्थ—भदेसू=भद्दा, कुरूप। सही=ठीक निश्चय।

अर्थ—आपके और राजा जनकजी के रहते मेरा कुछ कहना सब तरह से भद्दा होगा। आपकी और राजा की जो आज्ञा होगी, आपकी सौगन्ध करके कहता हूँ कि वही ठीक और मुझे शिरोधार्य होगी।

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख बनइ न ऊतरु देत॥२९६॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की सौगन्ध सुनकर वशिष्ठजी और जनकजी सभा

हियं सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

शब्दार्थ—साली=युक्त। भारती=वाणी। मराली=हंसिनी।

अर्थ—तदनन्तर भरतजी ने हृदय में सुन्दर सरस्वती का स्मरण किया। वे उनके मन रूपी मानसरोवर से मुख रूपी कमल पर आ विराजीं। निर्मल ज्ञान, धर्म और नीति से युक्त भरतजी की वाणी (गुण-दोष का विचार करनेवाली) सुन्दर हंसिनी है।

दो०—निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

अर्थ—ज्ञान रूपी नेत्रों से सारी सभा को स्नेह से शिथिल देख, सबको प्रणाम कर और श्रीसीता और रामचन्द्रजी को स्मरण कर भरतजी बोले॥२९७॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिब सील निधानू। प्रनत पाल सर्बग्य सुजानू॥

अर्थ—हे प्रभो! आप पिता, माता, मित्र, गुरु, स्वामी, पूज्य, अत्यन्त हितकारी अन्तर्यामी, सरल हृदय, अच्छे मालिक, शील के भण्डार, शरणागत का पालन करने वाले, सब कुछ जाननेवाले, चतुर—

समरथ सरनागत हितकारी। गुन गाहक अवगुन अघ हारी॥
स्वामि गोसाईंहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं सांइ दोहाईं॥

शब्दार्थ—साईं=स्वामी। दोहाई=द्रोह (वैर) करनेवालों।

अर्थ—सब तरह से समर्थ, शरण में आये हुओं का हित करने वाले, गुणग्राही, अवगुणों और पापों को हरनेवाले हैं। हे स्वामी! आपके समान स्वामी आप ही हैं और स्वामी से द्रोह करनेवालों में मेरे समान मैं ही हूँ।

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आएउँ इहां समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊंच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू॥

शब्दार्थ—पेली=टालकर, उल्लंघन कर। सकेली=इकट्ठा कर। पोच=बुरा। अमरपद=देवताओं का पद। माहुर=विष। मीचू=मृत्यु।

अर्थ—मैं मोहवश प्रभु (आप) के और पिताजी के वचनों को टालकर और

दल इकट्ठा कर यहां आया हूँ। संसार में भला-बुरा, ऊँच-नीच, अमृत, देव-पद, विष और मृत्यु सभी हैं।

राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुं कोउ नाहीं॥
सो मैं सब विधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

अर्थ—किसी को भी ऐसा कहीं नहीं देखा और सुना जो श्रीरामजी की आज्ञा का उल्लंघन मन से भी किया हो। मैंने सब प्रकार से वही ढिठाई की है। परन्तु हे प्रभो! आपने उसे स्नेह और सेवा मान लिया।

दो०—कृपां भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुं ओर॥२९८॥

अर्थ—हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दोष भूषण के समान हो गये और मेरा सुन्दर यश चारों ओर फैल गया।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल लख कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥

शब्दार्थ—निरीस (निः+ईश)=निरीश्वरवादी, नास्तिक। निसंकी=निडर। सुबानि=सुन्दर स्वभाव (आदत)।

अर्थ—हे नाथ! आपकी रीति और सुन्दर स्वभाव की बड़ाई संसार में प्रसिद्ध है और वेद तथा शास्त्रों ने भी गाया है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, दुर्बुद्धि, कलंकी, नीच, शीलरहित (उद्दण्ड), नास्तिक और निडर हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुं न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

शब्दार्थ—सामुहें=सामने। सकृत=एक बार।

भी सारा साज-सामान सज दे और स्वप्न में भी अपनी करनी न समझे वरन् सर्वदा अपने हृदय में सेवक के संकोच की ही चिन्ता रखे।

सो गोसांइ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाई कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥

शब्दार्थ—कोपी=(कः+अपि) कोई भी। पन रोपी=जोर देकर।

अर्थ—मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर कहता हूँ कि ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई भी नहीं है। पशु नाचते और तोते पाठ में चतुर हो जाते हैं। किन्तु तोते का पाठ पढ़ने का गुण और पशु के नाचने की गति पढ़ानेवाले और नचानेवाले के अधीन है।

दो०—यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै बिरदावलि बरजोर॥२९९॥

शब्दार्थ—सिरमोर=शिरोमणि, श्रेष्ठ। बिरदावलि=यशसमूह।

अर्थ—इस तरह अपने सेवकों की बिगड़ी को सुधार और उन्हें सम्मान देकर उनको आपने साधुओं का शिरोमणि बना दिया। कृपालु (आप) के सिवा अपने यश का जबर्दस्ती दूसरा कौन पालन करेगा॥२९९॥

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउं लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुं कृपालु हेरि निज ओरा। सबहि भांति भल मानेउ मोरा॥

अर्थ—मैं शोक से, स्नेह से या बाल स्वभाव वश आपकी आज्ञा टालकर यहां आया, तो भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर (अपने स्वभावानुकूल) सब प्रकार से मेरा भला माना अर्थात् मेरे इस अनुचित कार्य को उचित ही समझा।

देखेउं पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़ें समाज बिलोकेउं भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥

अर्थ—मैंने सुन्दर मंगलों के मूल आपके चरणों को देखा और यह जान लिया कि स्वामी मुझ पर स्वाभाविक प्रसन्न हैं। इस बड़े समाज में अपने भाग्य को देखा कि इतनी बड़ी भूल करने पर भी स्वामी का मुझ पर प्रेम है।

कृपा अनुग्रहु अंगु अघाई। कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गोसांईं। अपने सील सुभायं भलाईं॥

अर्थ–हे नाथ ! आपकी कृपा और अनुग्रह से मेरा शरीर तृप्त हो गया। हे कृपानिधि। आपने सब अधिक किया है। हे गोसाईं ! अपने शील, स्वभाव और भलाई से आपने मुझे प्यार किया है।

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥
अविनय विनय जथा रुचि बानी। छमिहि देव अति आरति जानी ॥

अर्थ–हे नाथ ! मैंने स्वामी और समाज के संकोच को छोड़कर, अविनय अथवा विनय से भरी मनमानी बातें कहकर बड़ी ढिठाई की है। हे देव ! मुझे अत्यन्त आर्त (व्याकुल) समझ कर क्षमा करेंगे।

दो०–सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥३००॥

अर्थ–मित्र, चतुर श्रेष्ठ स्वामी से बहुत कहना बड़े दोष की बात है। इसलिए हे देव ! अब आप आज्ञा दीजिये और सब कुछ सुधारिये ॥३००॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सींवं सुहाई ॥
सो करि कहउं हिये अपने की। रुचि जगत सोवत सपने की ॥

अर्थ–हे प्रभु ! आपके चरण-कमल के पराग की, जो सत्य, पुण्य और सुख की श्रेष्ठ सीमा है, दुहाई देकर, अपने हृदय की अभिलाषा को, जो जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहती है, कहता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्यासम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जनु पावइ देवा ॥

अर्थ–(वह है) स्वार्थ, छल और चारों फलों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम-पूर्वक स्वामी की सेवा करना। श्रेष्ठ स्वामी की आज्ञा पालन के समान दूसरी कोई सेवा नहीं है। इसलिए हे देव ! वही आज्ञा रूपी प्रसाद इस दास को मिले।

अस कहि प्रेम बिबस भये भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥

अर्थ–ऐसा कहकर भरतजी प्रेम से अत्यन्त विवश हो गये। सारा शरीर पुलकायमान हो गया और नेत्रों में आंसू भर आये। उन्होंने प्रभु श्री [illegible] के चरण कमल घबड़ाकर पकड़ लिया। उस समय के स्नेह का वर्णन नहीं हो [illegible]

कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाये समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥

अर्थ—कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्रजी ने सुन्दर वाणी से भरतजी का सम्मान करके, उनका हाथ पकड़ अपने पास बैठा लिया । भरतजी की विनती और स्वभाव को सुन-देखकर सारी सभा और श्रीरामचन्द्रजी स्नेह से शिथिल हो गये ।

छंद—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिला धनी ।
मन महुं सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी ॥
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी, साधु समाज, मुनि वशिष्ठजी तथा मिथिलापति जनकजी सभी स्नेह से शिथिल हो गये और मन-ही-मन भरतजी के भाईपन और भक्ति की अत्यन्त महिमा की सराहना करने लगे । देवता लोग भी मलिन मन से भरतजी की प्रशंसा करने और फूल बरसाने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं सब लोग भरतजी की बातें सुनकर, व्याकुल हो ऐसे सकुचा गये जैसे रात्रि के आने से कमल ।

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुँ समाज नर नारि सब ।
मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत ॥३०१॥

अर्थ—दोनों समाजों के स्त्री-पुरुष को दुखी और दीन देखकर महा-मलिन-मन इन्द्र मरे हुओं को भी मारकर अपना मंगल चाहता है ॥३०१॥

कपट कुचालि सींव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काक समान पाक रिपु रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥

शब्दार्थ—पाकरिपु=इन्द्र ।

अर्थ—इन्द्र कपट और कुचालि की सीमा है । दूसरे की बुराई और अपनी भलाई ही उसे प्रिय है । इन्द्र की रीति कौए के समान है । वह छली और नीच है, उसका कहीं किसी पर भी विश्वास नहीं है ।

प्रथम कुमत करि कपट सँकेला । सो उचाटु सब कें सिर मेला ॥
सुर मायां सब लोग बिमोहे । राम प्रेम अतिसय न बिछोहे ॥

शब्दार्थ—संकेला=इकट्ठा किया । अतिसय=अत्यन्त, बहुत ।

अर्थ—पहले तो बुरा विचार करके उसने कपट को इकट्ठा किया जिसने सबके सिरपर उचाट डाल दिया। देवमाया से सब लोग विमोहित हो गये। किन्तु फिर भी श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम की अधिकता के कारण उतना विछोह व्याप्त नहीं हुआ।

भय उचाट बस मन थिर नाहीं। छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं॥
दुबिध मनोगत प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥

अर्थ—उच्चाटन के वश होने से किसी का भी मन स्थिर न रहा। क्षण में वन में रहने की इच्छा होती है और क्षण में उन्हें घर जाना अच्छा लगता है। मन की गति दो प्रकार की होने से प्रजा दुखी है, जैसे नदी और समुद्र के संगम का जल स्थिर नहीं रहता।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं। एक एक सन मरमु न कहहीं॥
लखि हियँ हँसि कह कृपा निधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू॥

शब्दार्थ—दुचित=दुविधा, चिन्ता। स्वान=कुत्ता। मघवान=इन्द्र।

अर्थ—दुविधा में पड़ने से उन्हें कहीं सन्तोष नहीं मिलता और कोई किसी से अपना भेद (मन की वह अवस्था) कहता भी नहीं। सब की यह हालत देखकर श्रीरामचन्द्रजी हँसकर मन ही में कहते हैं कि कुत्ता, इन्द्र और नवयुवक एक समान होते हैं अर्थात् पाणिनी व्याकरण के अनुसार श्वान, मघवन् और युवन् शब्द के रूप एक ही समान होते हैं।

दो०—भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।
लागि देव माया सबहि जथा जोगु जनु पाइ॥३०२॥

शब्दार्थ—सचेत=ज्ञानी।

अर्थ—भरतजी, जनकजी, मुनि लोग, मंत्री और ज्ञानी साधुओं को छोड़कर जिस मनुष्य को जिस योग्य पाया देवमाया सब पर लग गयी॥३०२॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुर पति छल भारे॥
सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सबकै मति जंत्री॥

अर्थ—कृपाके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी ने अपने स्नेह और इन्द्र के भारी छल के कारण सब लोगों को दुखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण लोग और मंत्री सबकी बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड़ दिया।

रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥

शब्दार्थ—से=समान। नति=नम्रता।

अर्थ—सबलोग चित्र में खिंचे हुए (चित्र) के समान देख रहे हैं और सकुचाये तथा सिखलाये हुए ऐसे वचन बोलते हैं। भरतजी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुखदायी है परन्तु वर्णन करने में बड़ी ही कठिन है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी॥

शब्दार्थ—लवलेसू=थोड़ा। किमि=कैसे। हुलसी=उमड़ रही है।

अर्थ—जिनकी भक्ति का थोड़ा सा अंश देखकर मुनि लोग तथा मिथिलेश जनक जी प्रेम में मग्न हो गये, उन भरतजी की महिमा तुलसी दास कैसे कहें? (तथापि) भक्ति और सुन्दर भाव से हृदय में सुबुद्धि उमड़ रही है।

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबि कुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥

अर्थ—परन्तु वह अपने को छोटी और भरतजी की महिमा को बड़ी जान कवि वंश की मर्यादा को मानकर सकुचा गयी (उसका वर्णन न कर सकी)। गुणों में रुचि तो उसकी बहुत है, परन्तु कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के वचन की तरह हो गयी जैसे बालक कुछ कहना चाहता है पर कह नहीं सकता।

दो०—भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥३०३॥

अर्थ—भरतजी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और कवि की सुन्दर बुद्धि चकोरी है। वह भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में उसको उगा हुआ देख एक टक निहार रही है॥३०३॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूं। लघु मति चापलता कबि छमहूं॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

अर्थ—भरतजी के स्वभाव का वर्णन करना वेद के लिए भी सहज नहीं है। मेरी तुच्छ बुद्धि की चंचलता को कवि क्षमा करेंगे। भरतजी के सद्भाव को कहने-सुनने से कौन मनुष्य श्रीसीता-रामजी के चरणों में लीन नहीं हो जायगा।

सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को । जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयालु दसा सबही की । राम सुजानु जानि जन जी की ॥

अर्थ—भरतजी का स्मरण करते ही जिसको श्रीरामचन्द्रजी का प्रेम सुलभ नहीं हुआ, उसके समान कुटिल (अभागा) और कौन होगा ? सुजान दयालु श्री-रामजी ने सबकी दशा देखकर और भक्त भरतजी के हृदय की बात जान कर—

धरम धुरीन धीर नय नागर । सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू । नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥

अर्थ—धर्मधुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र; नीति और प्रेम के पालन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी देश, काल, अवसर और समाज को देखकर—

बोले बचन बानि सरबसु से । हित परिनाम सुनत ससि रसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ॥

अर्थ—ऐसे वचन बोले मानो सरस्वती (वाणी) के सर्वस्व हों; जो परिणाम में हितकारी और सुनने में अमृत के समान हों । कहा—हे भाई भरत ! तुम धर्म की धुरी को धारण करनेवाले, लोक और वेद के जानने वाले तथा प्रेम में प्रवीण हो ।

दो०—करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥३०४॥

अर्थ—हे भाई ! मन, वचन और कर्म से पवित्र तुम्हारे समान स्वयं तुम्हीं हो । गुरुजनों के समाज में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण कैसे कहे जा सकते हैं ?

जानहु तात तरनि कुल रीती । सत्य संध पितु कीरति प्रीती ॥
समउ समाजु लाजु गुरुजन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥

अर्थ—हे तात ! तुम सूर्यवंश की रीति को, सत्य प्रतिज्ञ पिताजी के यश और प्रेम को समय, समाज और गुरुजनों की लज्जा को तथा शत्रु, मित्र और उदासीन सबके मन की बात जानते हो ।

तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू । आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भांति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउं अवसर अनुसारा ॥

अर्थ—तुमको सभी के कर्म तथा अपना और मेरा परम हितकर धर्म भी मालूम है । यद्यपि सब प्रकार मुझे तुम्हारा ही भरोसा है, तो भी समयानुकूल कुछ कहता हूँ ।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरु कुल कृपां संभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सब होत खुआरू ॥

अर्थ—हे तात ! पिताजी के न रहने पर हमारी सब बातें केवल गुरु-वंश की कृपा ने ही सम्हाल रखी है। नहीं तो प्रजा, पुरवासी और सारा कुटुम्ब हमारे साथ सभी बरबाद हो जाते।

जो बिनु अवसर अथवं दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥

अर्थ—सूर्य यदि असमय में ही डूब जायें, तो संसार में कहो किसको क्लेश नहीं होगा ? हे तात ! विधाता ने हमारे साथ वैसा ही उत्पात किया था, किन्तु वशिष्ठजी ने और मिथिलेश जनकजी ने सबको बचा लिया।

दो०—राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

अर्थ—राज्य के सभी कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन और घर सबका पालन गुरुजी का प्रभाव करेगा और परिणाम (अन्त) अच्छा होगा ॥३०५॥

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ॥
मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू ॥

अर्थ—गुरुजी की कृपा, सारे समाज सहित तुम्हारा और हमारा, घर में और वन में रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन समस्त धर्म रूपी पृथ्वी को धारण करने में शेषजी के समान है।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥

अर्थ—उसे ही तुम करो और मुझ से भी कराओ। हे तात ! तुम सूर्यवंश के रक्षक बनो। साधकों के लिए सब सिद्धियों को देनेवाली यही एक (आज्ञा-पालन रूपी साधना) यश, सद्गति और वैभव से युक्त त्रिवेणी है।

सो बिचार सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बांटी बिपति सबहि मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥

अर्थ—ऐसा विचार कर और भारी संकट सहकर प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई विपत्ति तो सब पर आ पड़ी है और वही मुझ पर भी है, परन्तु तुमको तो अवधि भर (१४ वर्ष तक) बड़ी ही कठिनाई है।

जानि तुम्हहिं मृदु कहहुँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठांय सुबंधु सहाये। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घायें॥

अर्थ—तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोग की वात) वचन कह रहा हूँ। हे भाई! समय बुरा है, मेरा ऐसा कहना कोई अनुचित नहीं। क्योंकि बुरे समय में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं, जैसे वज्र के चोट हाथ से ही रोके जाते हैं।

दो०—सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ॥३०६॥

अर्थ—सेवक हाथ, पैर और आंखों के समान और मालिक मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक और स्वामी की प्रीति की यह रीति सुनकर अच्छे कवि लोग उसकी प्रशंसा करते हैं॥३०६॥

सभा सकल सुनि रघुवर वानी। प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी॥
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की वाणी सुनकर, जो मानो प्रेम रूपी समुद्र मे निकले हुए अमृत में सनी हो; सारी सभा शिथिल हो गयी और सबको प्रेम की समाधि लग गयी। यह दशा देखकर सरस्वती ने मौन साध लिया।

भरतहिं भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूंगेहि गिरा प्रसादू॥

अर्थ—भरतजी को अत्यन्त सन्तोष हुआ। स्वामी के सम्मुख (प्रसन्न) होने से सभी दुःख और दोष जाते रहे। मुख प्रसन्न हो उठा और मन से विषाद दूर हो गया, मानो गूंगे पर सरस्वतीजी की कृपा हो गयी हो।

कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गये को। लहेउं लाहु जग जनमु भये को॥

अर्थ—उन्होंने फिर प्रणाम किया और करकमलों को जोड़कर बोले—हे नाथ! आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और संसार में जन्म लेने का लाभ मैं पा गया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥

अर्थ—हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, वही सिर पर रखकर मैं करूं। हे देव!

पावन पाथ पुन्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥

अर्थ—उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थान में रख दिया। तब अत्रि मुनि ने प्रेम से विह्वल हो ऐसा कहा—हे तात ! यह सिद्ध स्थान अनादि है। कालक्रम से यह लोप हो गया था, इसलिए किसी को इसका पता नहीं था।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा ॥
बिधि बस भयेउ बिस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥

अर्थ—जब हमारे सेवकों ने इस सुन्दर स्थान को देखा, तब सुन्दर जल के लिए इस कुएँ को विशेष प्रकार से ठीक कर दिया। संयोग से संसार भर का उपकार हो गया। धर्म का विचार जो अत्यन्त अगम है, वह (इस कुएँ के प्रभाव से) सुगम हो गया।

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावनतीरथ जल जोगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ॥

अर्थ—अब लोग इसको भरतकूप कहेंगे। तीर्थों के जल के संयोग से यह अत्यन्त पवित्र हो गया। जो प्राणी नियम से प्रेमपूर्वक इसमें स्नान करेंगे, वे मन, वचन और कर्म से पवित्र हो जायेंगे।

दो०—कहत कूप महिमा सकल गये जहां रघुराउ ।
अत्रि सुनायेउ रघुबरहिं तीरथ पुन्य प्रभाउ ॥३१०॥

अर्थ—कुएँ की महिमा कहते हुए सबलोग वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे। अत्रिजी ने श्रीरामचन्द्रजी को उस तीर्थ का पुण्य-प्रभाव कह सुनाया ॥३१०॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयेउ भोरु निसि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई । राम अत्रि गुर आयसु पाई ॥

अर्थ—प्रेमपूर्वक धर्म का इतिहास कहते सवेरा हो गया और वह रात सुख से बीत गयी। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्य क्रिया करके, श्रीरामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर—

सहित समाज साज सब सादें । चले राम बन अटन पयादें ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ॥

अर्थ—सब समाज के साथ सादे सामान से श्रीराम वन को घूमने के लिए पैदल

थे। उनके चरण कोमल हैं और वे बिना जूते के जा रहे हैं। यह देखकर पृथ्वी मन-ही-मन सकुचा कर कोमल हो गयी।

कुस कंटक कांकरी कुराई। कटुक कठोर कुबस्तु दुराई॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हें। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हें॥

अर्थ—कुश, कांटे, कंकड़ी, गड़हे, कड़वी, कड़ी और बुरी वस्तुओं को छिपाकर, पृथ्वी ने रास्ते को सुन्दर कोमल कर दिया। सुख देने वाली शीतल, मन्द और सुगन्ध हवा चलने लगी।

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥

अर्थ—देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, घास अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सभी भरतजी को श्रीरामजी के प्यारे जान, उनकी सेवा करने लगे।

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।
राम प्रान प्रिय भरत कहुं यह न होइ बड़ि बात॥३११॥

अर्थ—जब साधारण मनुष्यों को भी जम्हाई लेते समय 'राम' कहने से सारी सिद्धियां सुलभ हो जाती हैं, तब श्रीरामजी के प्राण प्रिय भरतजी के लिए (ऐसा होना) यह कोई बड़ी बात नहीं है॥३११॥

एहि बिधि फिरत भरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥

अर्थ—इस प्रकार भरतजी वन में घूमते हैं। उनके नियम और प्रेम देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के स्थान, पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग, पशु, पक्षी, पेड़, घास, पर्वत, वन और बगीचे—

चारु बिचित्र पवित्र बिसेषी। बूझत भरत दिब्य सब देखी॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥

अर्थ—सबको विशेष रूप से सुन्दर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिमुनि प्रसन्न मन से उनके होने का कारण, नाम, गुण और पुण्य-प्रभाव कहते हैं।

कतहुं निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुं बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुं बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥

अर्थ–भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं अत्रिमुनि की आज्ञा पा, सीताजी के सहित दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बन देवा॥
फिरहिं गयें दिन पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥

अर्थ–भरतजी के स्वभाव, प्रेम और सुन्दर सेवा-भाव को देखकर वनदेवता प्रसन्न हो आशीर्वाद देते हैं। ढाई पहर दिन बीतने पर वे लौटते हैं और आकर श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों का दर्शन करते हैं।

दो०–देखे थल तीरथ सकल भरत पांच दिन माझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयेउ दिवसु भइ सांझ॥३१२॥

अर्थ–भरतजी ने इस प्रकार पांच दिन में समस्त तीर्थस्थानों को देख डाला। पांचवां दिन भी भगवान् विष्णु और शंकरजी का सुन्दर यश कहते-सुनते बीत गया और सन्ध्या हो गयी॥३१२॥

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मनमाहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं॥

अर्थ–प्रातःकाल स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण लोग, जनकजी तथा सारा समाज आ जुटा। सबको विदा करने के लिए आज बड़ा अच्छा दिन है, मन में ऐसा जानकर भी दयालु श्रीरामचन्द्रजी कहते हुए संकोच करते हैं।

गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुं न राम सम स्वामि सँकोची॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठजी, राजा जनकजी, भरतजी तथा समस्त सभा की ओर देखा। फिर सकुचाकर पृथ्वी की ओर देखने लगे। श्रीरामजी के शील की सराहना करके सब सभा सोचने लगी कि श्रीरामचन्द्रजी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥

अर्थ–सुजान भरतजी ने श्रीरामचन्द्रजी का रुख देखकर, प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष धैर्य धारण कर, दण्डवत करके, हाथ जोड़ कहने लगे–हे नाथ, आपने मेरी सभी इच्छाएँ पूरी कीं!

मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू । बहुत भाँति दुख पावा आपू ॥
अब गोसाइं मोहि देहु रजाई । सेवउं अवध अवधि भरि जाई ॥

अर्थ—मेरे लिए सब लोगों ने कष्ट सहा और आपने तो सब प्रकार से दुःख पाया। हे स्वामी ! अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं जाकर अवधि भर (१४वर्ष) अयोध्या की सेवा करूँ।

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जनु देखे दीनदयाल ।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसल पाल कृपालु ॥३१३॥

अर्थ—हे दीनदयालु ! जिस उपाय से यह दास आपके चरणों का फिर दर्शन करे हे अवधपति ! हे कृपालु ! अवधि भर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिये।३१३।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं । सब सुचि सरस सनेह सगाईं ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू । प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥

अर्थ—हे स्वामी ! अयोध्यावासी, कुटुम्बी तथा प्रजा सभी आपके प्रेम और सम्बन्ध से पवित्र और रस (आनन्द) युक्त हैं। आपका कहलाकर संसार के दुःख (जन्म-मरण) की ज्वाला में जलते रहना भी अच्छा है और आपके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी व्यर्थ है।

स्वामि सुजानु जानि सबही की । रुचि लालसा रहनि जन जी की ॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू । देव दुहूँ दिसि ओर निबाहू ॥

अर्थ—हे स्वामी ! आप सुजान हैं। आप सबके तथा मुझ सेवक के भी मन की रुचि, लालसा और प्रीति को जानते हैं। आप दीनों के पालक होकर भी सबका पालन करते हैं। हे देव ! मेरा निर्वाह तो दोनों ही ओर से होगा।

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । किए बिचारु न सोचु खरोसो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू । दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥

अर्थ—सब प्रकार से मुझे ऐसा ही भारी भरोसा है। विचार करने से मुझे जरा भी सोच नहीं रह जाता। मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबरदस्ती ढीठ बना दिया है।

यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी । खीर नीर बिबरन गति हंसी ॥

अर्थ—हे स्वामी ! इस बड़े दोष को दूर करके, संकोच छोड़ मुझ दास को शिक्षा दीजिये। दूध और जल को अलग करने में हंसिनी जैसी गति वाली भरतजी की विनती को सुनकर सभी ने प्रशंसा की।

दो०—दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रवीन ॥३१४॥

अर्थ—दीनवन्धु और परम चतुर श्रीरामचन्द्रजी भाई भरतजी के दीन और कपटरहित वचन सुनकर देश, काल और समयानुसार वचन बोले ॥३१४॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुं न कलेसू॥

अर्थ—हे तात ! तुम्हारी, हमारी, परिवार और घर-वन सबकी चिन्ता गुरुजी तथा महाराज जनक को है। हमलोगों के रक्षक गुरु वशिष्ठ मुनि तथा मिथिलेश जनकजी हैं। हमको और तुमको स्वप्न में भी कोई कष्ट न होगा।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥

अर्थ—मेरा और तुम्हारा तो यही परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ है कि हम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (यश की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है।

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहु कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

अर्थ—गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग में भी चलने से पैर नीचे नहीं पड़ते (पतन नहीं होता)। ऐसा विचारकर सब चिन्ता छोड़, जाकर अवधि भर अयोध्या का पालन करो।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

अर्थ—देश, कोश, नगर निवासी तथा परिवार की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणों की धूल पर है। तुम तो वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्री की शिक्षा मानकर, पृथ्वी, प्रजा और राजधानी की रक्षा करना।

दो०—मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—(कि श्रीरामजी ने कहा) कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक है, परन्तु विवेक के साथ सब अंगों का पालन-पोषण करता है ॥३१५॥

राज धरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भांती। बिनु अधार मन तोषु न सांती ॥

अर्थ—राजा के धर्म का सार भी यही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्रीरामचन्द्रजी ने भाई को अनेक प्रकार से समझाया। किन्तु कोई अवलम्ब पाये बिना उनके मन को न सन्तोष हुआ न शान्ति।

भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिवस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी भरतजी के शील (प्रेम) और गुरु, मन्त्रियों और समाज के संकोच और स्नेह के कारण विवश हो गये। तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने कृपाकर अपनी खड़ाऊँ दे दी और भरतजी ने आदर पूर्वक उन्हें सिरपर रख लिया।

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥

अर्थ—करुणा के भाण्डार श्रीरामचन्द्रजी की दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानों दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेम रूपी रत्न के लिए दो डिब्बे और जीव के उद्धार के लिए मानों दो अक्षर ('र' कार और 'म' कार) हैं।

कुल कपाट कर कुसल राम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहें तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें ॥

अर्थ—रघुकुल की रक्षा करने के लिए दो किवाड़, श्रेष्ठ कर्म करने के लिए दो हाथ और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म को सुझाने के लिए दो निर्मल नेत्र हैं। इस अवलम्ब को पा जाने से भरतजी को अपार आनन्द हुआ। वैसा सुख हुआ जैसा श्रीसीतारामजी के होने से होता।

दो०—मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

अर्थ—तब भरतजी ने प्रणाम करके बिदा मांगी इसपर श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इसी समय कुटिल इन्द्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया ॥३१६॥

सो कुचालि सब कहं भइ नीकी। अवधि आस सम जिवनी जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥

अर्थ—इन्द्र की वह कुचाल भी सब के लिए अच्छी हो गयी। अवधि की आशा

दो०–दीनबंधु सुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन ॥३१४॥

अर्थ–दीनबन्धु और परम चतुर श्रीरामचन्द्रजी भाई भरतजी के दीन और कपटरहित वचन सुनकर देश, काल और समयानुसार वचन बोले ॥३१४॥

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहुं न कलेसू॥

अर्थ–हे तात ! तुम्हारी, हमारी, परिवार और घर-वन सबकी चिन्ता गुरुजी तथा महाराज जनक को है। हमलोगों के रक्षक गुरु वशिष्ठ मुनि तथा मिथिलेश जनकजी हैं। हमको और तुमको स्वप्न में भी कोई कष्ट न होगा।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥

अर्थ–मेरा और तुम्हारा तो यही परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ है कि हम दोनों भाई पिता की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (यश की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है।

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहु कुमग पग परहिं न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥

अर्थ–गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग में भी चलने से पैर नीचे नहीं पड़ते (पतन नहीं होता)। ऐसा विचारकर सब चिन्ता छोड़, जाकर अवधि भर अयोध्या का पालन करो।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

अर्थ–देश, कोश, नगर निवासी तथा परिवार की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणों की धूल पर है। तुम तो वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्री की शिक्षा मानकर, पृथ्वी, प्रजा और राजधानी की रक्षा करना।

दो०–मुखिआ मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

अर्थ–तुलसीदासजी कहते हैं–(कि श्रीरामजी ने कहा) कि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक है, परन्तु विवेक के साथ सब अंगों का पालन-पोषण करता है ॥३१५॥

राज धरम सरबसु एतनोई । जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भांती । बिनु अधार मन तोषु न सांती ॥

अर्थ–राजा के धर्म का सार भी यही है । जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है । श्रीरामचन्द्रजी ने भाई को अनेक प्रकार से समझाया । किन्तु कोई अवलम्ब प्राये विना उनके मन को न सन्तोष हुआ न शान्ति ।

भरत सील गुरु सचिव समाजू । सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥

अर्थ–श्रीरामचन्द्रजी भरतजी के शील (प्रेम) और गुरु, मन्त्रियों और समाज के संकोच और स्नेह के कारण विवश हो गये । तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने कृपाकर अपनी खड़ाऊँ दे दी और भरतजी ने आदर पूर्वक उन्हें सिरपर रख लिया ।

चरनपीठ करुनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जतन के ॥

अर्थ–करुणा के भाण्डार श्रीरामचन्द्रजी की दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानों दो पहरेदार हैं । भरतजी के प्रेम रूपी रत्न के लिए दो डिब्बे और जीव के उद्धार के लिए मानों दो अक्षर ('र' कार और 'म' कार) हैं ।

कुल कपाट कर कुसल राम के । बिमल नयन सेवा सुधरम के ॥
भरत मुदित अवलंब लहें तें । अस सुख जस सिय रामु रहे तें ॥

अर्थ–रघुकुल की रक्षा करने के लिए दो किवाड़, श्रेष्ठ कर्म करने के लिए दो हाथ और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म को सुझाने के लिए दो निर्मल नेत्र हैं । इस अवलम्व को पा जाने से भरतजी को अपार आनन्द हुआ । वैसा सुख हुआ जैसा श्रीसीतारामजी के होने से होता ।

दो०–मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१६॥

अर्थ–तब भरतजी ने प्रणाम करके विदा मांगी इसपर श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया । इसी समय कुटिल इन्द्र ने वुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया ॥३१६॥

सो कुचालि सब कहं भइ नीकी । अवधि आस सम जिवनी जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा । हहरि मरत सबु लोग कुरोगा ॥

अर्थ–इन्द्र की वह कुचाल भी सव के लिए अच्छी हो गयी । अवधि की आशा

के समान ही सब के जीवन के लिए संजीवनी हो गयी। नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के वियोग रूपी दुष्ट रोग से सभी लोग तड़त-तड़प कर मर जाते।

राम कृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु कहि न परत सो॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी की कृपा ने उस उलझन को भी सुधार लिया। देवताओं की सेना जो विघ्न डालने आयी थी वह गुणद और हितकर (सहायक) हो गयी। श्रीरामजी भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिलते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम का वह रस (आनन्द) कहते नहीं बनता।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥

अर्थ—शरीर, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा। धीर धुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी ने भी धैर्य छोड़ दिया। कमल के समान नेत्रों से आंसू बहने लगा। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा दुखी हो गयी।

मुनिगन गुर जन धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाये। पदुम पत्र जिमि ज़ग जल जाये॥

अर्थ—मुनि लोग, गुरु वशिष्ठजी और राजा जनक जैसे धीर धुरन्धर, जिन्होंने अपने मन को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान तपा डाला था। जिनको ब्रह्मा ने निर्लेप पैदा किया और जो संसार रूपी जल में कमल के पत्ते के समान उत्पन्न हुए—

दो०—तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।
भये मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥३१७॥

अर्थ—वे भी श्रीरामचन्द्रजी और भरतजी के अलौकिक अपार प्रेम को देखकर, ज्ञान और वैराग्य सहित तन-मन-वचन से मग्न हो गये॥३१७॥

जहां जनक गुर गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥

अर्थ—जहां जनकजी और गुरु वशिष्ठजी की दशा और बुद्धि काम नहीं करती, उस दिव्य प्रेम को लौकिक कहने में बड़ा दोष है। श्रीरामचन्द्रजी और भरतजी के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग उस कवि को कठोर हृदय समझेंगे।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाये। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाये॥

अर्थ—वह संकोच का रस सुन्दर वाणी के लिए अकथनीय है। उस समय के प्रेम का स्मरण कर वह सकुचा गयी है। श्रीरामचन्द्रजी ने भरतजी से मिलकर उन्हे समझाया। फिर प्रसन्नता पूर्वक शत्रुघ्नजी को हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥

अर्थ—भरतजी का रुख पाकर सेवक और मन्त्री सभी अपने-अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाज में दारुण दुःख छा गया। सभी चलने का सामान सजने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

अर्थ—दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों की वन्दना कर और उनकी आज्ञा सिर पर रख चले। मुनि, तपस्वी तथा वन के देवताओं की विनती और सबका बारम्बार सम्मान कर—

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनाम करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥३१८॥

अर्थ—फिर लक्ष्मणजी से मिलकर और उन्हें प्रणाम कर तथा श्रीजानकी जी के चरणों की धूलि सिर पर धारण कर, समस्त सुन्दर मंगलों की जड़ आशीर्वाद को सुनकर प्रेम के साथ चले॥३१८॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुख पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ॥

अर्थ—छोटे भाई लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी राजा जनक जी को सिर नवाकर अनेक प्रकार से उनकी विनती और बड़ाई की। (और कहा—) हे देव! दया के वश हो बहुत दुःख पाया, जो समाज के साथ वन को आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥

अर्थ—अब आप आशीर्वाद देकर नगर को पधारिये। राजा जनकजी ने धैर्य धारण कर गमन किया। श्रीरामजी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं का विष्णुजी और शिवजी के समान जानकर सम्मान करके विदा किया।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥

अर्थ—तब दोनों भाई श्रीरामजी और लक्ष्मणजी सास के पास गये। उनके चरणों में प्रणाम कर, आशीर्वाद पाकर लौटे। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, कुटुम्बियों, नगर-वासियों तथा शुभ आचरण वाले मंत्रियों को—

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

अर्थ—भाई लक्ष्मण के सहित श्रीरामचन्द्रजी ने सबको यथायोग्य विनय और प्रणाम करके विदा किया। कृपा के भांडार श्रीरामचन्द्रजी ने अपने से छोटे, मझले और बड़े सभी स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उन्हें लौटाया।

दो०—भरत मातुपद बंदि प्रभु सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेंटि॥३१९॥

अर्थ—भरतजी की माता कैकेयी के चरणों की वन्दना की और पवित्र प्रेम सहित भेंट-मिलकर तथा उनके संकोच और सोच को मिटाकर, पालकी सजाकर श्रीरामचन्द्रजी ने उनको विदा किया॥३१९॥

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रान प्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनाम भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियं न हुलासू॥

अर्थ—प्राणप्रिय श्रीरामचन्द्रजी में पवित्र प्रेम रखनेवाली श्रीसीताजी अपने कुटुम्बियों और माता-पिता से मिलकर लौटीं। फिर प्रणाम करके सब सासुओं से मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के हृदय में उत्साह नहीं होता।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहुं प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मंगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाई॥

अर्थ—उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी दोनों ओर (सासुओं तथा माता-पिता) के प्रेम में निमग्न रहीं। श्रीरामचन्द्रजी ने सुन्दर पालकियां मँगवायीं और धैर्य देकर सब माताओं को उनमें चढ़ाया।

बार बार हिलि मिलि दुहुं भाई। सम सनेह जननी पहुंचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥

अर्थ—दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिलकर उन्हे पहुँचाया। राजा जनकजी और भरतजी के दलों ने घोड़े, हाथी और नाना प्रकार की सवारियां सजाकर प्रस्थान किया।

हृदय रामु सिय लखन समेता । चले जाहिं सब लोग अचेता ॥
बसह बाजि गज पशु हियं हारें । चले जाहिं परबस मन मारें ॥

अर्थ—सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े और हाथी आदि पशु-हृदय में शिथिलता लाये दूसरे के वश मनमारे चले जाते हैं।

दो०—गुरु गुरुतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत ।
फिरे हरष बिसमय सहित आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ—गुरु वशिष्ठजी और गुरु-पत्नी अरुन्धतीजी के चरणों की वन्दना करके सीताजी और लक्ष्मणजी सहित हर्ष और विषाद के साथ श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटी पर आये ॥३२०॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥

अर्थ—फिर श्रीरामजी ने निषाद को आदरपूर्वक विदा किया। वह हृदय में बड़ा ही दुःखी होकर लौटा। फिर कोल, किरात और भील आदि वनवासियों को लौटाया। वे बार-बार प्रणाम करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठ बटि छाहीं । प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेहु सुभाव सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥

अर्थ—प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन और कुटुम्बियों के वियोग में दुःखी हो रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी सीताजी तथा लक्ष्मणजी से भरतजी के स्वभाव-स्नेह और सुन्दर वाणी की प्रशंसा कर रहे हैं।

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । श्री मुख राम प्रेम बस बरनी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने प्रेमवश हो भरतजी के मन-वचन और कर्म के प्रेम और विश्वास का श्री मुख से वर्णन किया। उस समय पशु-पक्षी, जल की मछलियां तथा चित्रकूट के सभी जड़-चेतन जीव उदास हो गये।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की । बरषि सुमन कहि गति घर घर की ॥
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो ॥

अर्थ—देवताओं ने श्रीरामचन्द्रजी की दशा देखकर उनपर पुष्प-वृष्टि की

और अपने-अपने घरों की हालत (दुखड़ा) उनसे कही। तब श्रीरामजी ने उन्हें प्रणाम करके उन्हें भरोसा दिया। वे मन में जरा भी डर नहीं रखकर प्रसन्न हो चले।

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यान बैराग जनु सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ—भाई लक्ष्मण और सीताजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं, मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण कर शोभा दे रहे हैं।

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरह सब साजु बिहालू ॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुप चाप चले मग जाहीं ॥

अर्थ—मुनि, ब्राह्मण, गुरु, भरतजी और राजा जनकजी-सारा समाज ही श्रीरामजी के विरह में विकल है। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के गुण समूहों को मन में स्मरण करते हुए सब लोग रास्ते में चुपचाप चले जा रहे हैं।

जमुना उतरि पार सब भयेऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम सखा सब कीन्ह सुपासू ॥

अर्थ—पहले दिन जमुना जी उतर कर सब लोग पार हुए। वह दिन बिना भोजन के ही बीत गया। दूसरे दिन गंगा के पार पड़ाव पड़ा। जहां श्रीरामजी के सखा गुह निषाद ने सब प्रबन्ध कर दिया।

सई उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए ॥
जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज संभारी ॥

अर्थ—फिर सई नदी पारकर गोमती में स्नान किया और चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। राजा जनक चार दिन अयोध्या में रहे और राज-काज तथा और सब साज-सामान को सँभालकर—

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तिरहुत चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी ॥

अर्थ—और मन्त्री, गुरुजी तथा भरतजी को राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठीककर जनकपुर को चले। नगर के स्त्री-पुरुष गुरु की शिक्षा मानकर सुखपूर्वक अयोध्या में रहने लगे।

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सब जियत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ—सब लोग श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और उपवास करते हुए समस्त भूषणों तथा सुख-भोग को छोड़कर १४ वर्षों की अवधि की आशा पर जी रहे हैं ॥३२२॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥

अर्थ—भरतजी ने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकों को शिक्षा दी और वे सीख पाकर अपने-अपने कामों में लग गये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्न को बुलाकर शिक्षा दी और उनको सब माताओं की सेवा का कार्य सौंपा।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम वय विनय निहोरे ॥
ऊंच नीच कारज भल पोचू । आयसु देव न करब संकोचू ॥

अर्थ—ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़ प्रणाम कर उत्तम विनय पूर्वक निहोरा किया कि आप लोग जो कुछ भी छोटा-बड़ा, भला-बुरा कार्य हो, उसके लिए आज्ञा देंगे। संकोच नहीं करेंगे।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए । समाधान करि सुबस बसाए ॥
सानुज गे गुर गेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥

अर्थ—फिर भरतजी ने परिवार, नगर-निवासी तथा अन्य प्रजा वर्ग को बुलाकर उन्हें धैर्य दे सुन्दर रीति से बसाया। तदनन्तर छोटे भाई शत्रुघ्नजी के साथ गुरु जी के घर गये और दंडवत कर, हाथ जोड़ बोले—

आयसु होइ त रहउं सनेमा । बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा ॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरम सारु जग होइहि सोई ॥

अर्थ—आज्ञा हो तो मैं नियम पूर्वक रहूँ। यह सुनकर वशिष्ठजी पुलकित शरीर हो प्रेम सहित बोले—हे भरत ! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे संसार में वही धर्म का सार होगा।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिन साधि ।
सिंहासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

अर्थः—भरतजी ने वशिष्ठजी की शिक्षा ग्रहण की और उनके बड़े आशीर्वाद को पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और शुभ दिन (अच्छा मुहूर्त) निकलवा कर प्रभु राम की पादुका को पूर्ण सादगी से सिंहासन पर रखा ॥३२३॥

राम मातु गुरु पद सिरु नाई । प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नंदि गांव करि परन कुटीरा । कीन्ह निवास धरम धुर धीरा ॥

अर्थः—फिर माता कौशल्या और गुरु वशिष्ठ के चरणों में सिर नवाकर प्रभु की चरण पादुकाओं की अनुमति लेकर धर्म की धुरी धारण करने वाले भरतजी नन्दिग्राम में पर्णकुटी (घास की झोपड़ी) बनाकर रहने लगे।

जटा जूट सिर मुनि पट धारी । महि खनि कुस साथरी सवांरी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥

अर्थ—भरतजी के सिर पर जटायें थीं और उन्होंने मुनियों का सा वस्त्र धारण कर रखा था । उन्होंने पृथ्वी खोदकर उसके अन्दर कुश की आसनी बिछायी । भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम-सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे ।

भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राज सुर राज सिहाई । दसरथ धन सुनि[1] धनद लजाई ॥

अर्थ—भरत जी ने गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के सुखों को मन, शरीर और बचन से छोड़ दिया । जिस अवध के राज्य को देख देवराज इन्द्र के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती थी और दशरथजी की अपार सम्पति की चर्चा सुनकर धन के स्वामी कुबेर भी शरमा जाते थे ।

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़ भागी ॥

अर्थ—उसी अवधपुर में भरतजी अनासक्त होकर निवास कर रहे हैं। तुलसीदासजी उनकी तुलना उस भौंरे से करते हैं जो चम्पा के बाग में रहता हैं, फूलों से घिरा रहने पर भी अनासक्त रहता हैं । श्रीराम का प्रेमी बड़भागी मनुष्य लक्ष्मी के भोगैश्वर्य को (विलास) वमन की भाति घृणा पूर्वक त्याग देता है ।

दो०—राम प्रेम भाजन भरत बड़े न एहि करतूति ।
चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥३२४॥

अर्थ—भरतजी तो श्रीराम के प्रेम के पात्र हैं । उन पर रामचन्द्रजी का अखण्ड प्रेम है । वे इस सन्यासोचित कार्यों से बड़े नहीं हुए। यह त्याग उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं । उनकी सराहना तो राम के प्रति उनके प्रेम से ही की जा सकती है । चातक की सराहना 'पृथ्वी पर का पानी न पीने' की टेक से, और हंस की दूध और पानी को अलग कर देने वाली शक्ति के ही कारण होती है ॥३२४॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । घटइ तेजु बल मुखछबि सोई ॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना । बढ़त धरमु दलु मन न मलीना ॥

अर्थ—भरतजी का शरीर दिनों दिन दुबला होता जाता है । शक्ति (शारीरिक) घटती जा रही है । परन्तु मुख की कान्ति वैसी ही बनी हुयी है । राम के प्रति प्रेम का प्रण नित्य नूतन और दृढ़ होता है, धर्म का दल (धार्मिक कार्य) बढ़ता है और मन उदास नहीं है ।

---

१ बहुत से रामयणों में सुनि के स्थान पर मुनि का प्रयोग किया गया है । वह कुछ अंश तक उपयुक्त भी प्रतीत होता है ।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
समदम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय विमल अकासा ॥

अर्थ—जिस तरह शरद्‌ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है किन्तु बेंत की शोभा बढ़ती है और कमल विकसित होते हैं; उसी तरह शम, दम, सयंम, नियम और उपवास आदि भरत की पार्थीव शक्ति का तो ह्रास करते हैं परन्तु उनके हृदय रूपी निर्मल आकाश की शोभा नक्षत्रों की तरह बढ़ाते हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुर बीथि बिकासी ॥
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ॥

अर्थ—भरत के हृदय रूपी आकाश में विश्वास ही ध्रुव तारा है; चौदह वर्ष की अवधि का ध्यान पूर्णिमा के सदृश्य है। भगवान राम की स्मृति राम प्रेम ही सदैव वर्तमान रहने वाला कलंक रहित चन्द्रमा है; और वह अपने नक्षत्रों वाले समाज सहित नित्य सुन्दर सुशोभित है।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

अर्थ—भरतजी के रहने का ढंग, उनकी समझ, उनके कार्य, उनकी भक्ति वैराग्य, गुण और उज्ज्वल ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी वड़े-वड़े कवि सकुचाते हैं, क्योंकि इनका वर्णन करने में उनकी तो वात ही क्या स्वयं हजार मुख वाले शेष, अद्वितीय शक्ति वाले गणेशजी और महान सरस्वती भी सफलीभूत नहीं हो सकतीं। उनकी भी वहां पहुँच नहीं हैं।

दो०—नित पूजत प्रभु पांवरी प्रीति न हृदय समाति।
मांगि मांगि आयसु करत राज काज बहुभांति ॥३२५॥

अर्थ—वे नित्य प्रति प्रभु राम की पांदुकाओं की पूजा करते हैं; राम और उनके प्रति भरतजी का प्रेम उनके हृदय में समाता नहीं। सब प्रकार के राज के कार्य भरतजी उन्हीं पादुकाओं की अनुमति से करते हैं ॥३२५॥

पुलक गात हियं सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तनुकसहीं ॥

अर्थ—राम के प्रेम में उनका शरीर पुलकित है-आनन्द से विह्वल है। हृदय में सीता और राम हैं। जीह्वा पर राम नाम का मंत्र है, नेत्रों में प्रेम के आंसू हैं। भगवान राम, लक्ष्मण और सीताजी तो वन में रहते हैं, परन्तु भरतजी घर में ही रहकर तपस्या के द्वारा अपने शरीर को पीड़ा देते हैं।

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥

अर्थ—दोनों ओर की-वन में प्रभु की और अयोध्या में भरत की—स्थिति को

देखकर लोग यही कहते हैं कि भरतजी सब प्रकार से प्रशंसा के पात्र हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज, मुनियों में श्रेष्ठ, भी शरमा जाते हैं।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसिदलन दिनेसू॥

अर्थ—भरतजी का चरित्र या स्वभाव अत्यंत पवित्र है, और मधुर, सुन्दर और आनन्दमय मंगल करनेवाला है। कलियुग के कठिन पापों और दुखों एवं कष्टों को दूर करनेवाला है। यह महामोह रूपी रात्रि को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान है। मनुष्य के अज्ञान को दूर करनेवाला है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन सब भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

अर्थ—भरतजी का यह चरित्र पापों के समूह रूपी हाथी के लिये सिंह है। यह सारे दुखों के समूह को नष्ट करनेवाला है। भक्तों को आनन्द देनेवाला और संसार के दुखों को नष्ट करनेवाला है। साथ ही श्रीरामचन्द्रजी के प्रेम रूपी चन्द्रमा का सार यानी अमृत है।

छंद--सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनिमन अगम जम नियम समदम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

अर्थ—सीता और राम के प्रेम रूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का जन्म यदि न होता तो मुनियों के मन को भी अत्यंत कठिन प्रतीत होने वाला यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों को कौन .पालता? कौन उस कठिन पथ पर चलता? दुख, सन्ताप (संसार की ज्वाला), दरिद्रता, अहंकार आदि दुर्गुणों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? साथ ही इस अन्धकारमय कलियुग में तुलसीदासजी सरीखे दुष्टों को (पापियों को) हठपूर्वक कौन भगवान राम के सम्मुख उपस्थित करता?

सो०--भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥३२६॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो लोग नियम से और आदरपूर्वक भरत जी के चरित्र को सुनेंगे, उन्हें निश्चय ही भगवान राम और देवी सीता के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय-वासना रूपी रस से वैराग्य होगा। इनसे उनका सम्बन्ध छूट जायगा और घृणा उत्पन्न होगी॥३२६॥

॥ इति शुभम् ॥